मुमुक्षु

(आध्यात्मिक उपन्यास)

जगदीशकुमार निर्मल

हरिकिशनदास अग्रवाल

प्रकाशक

हरिकिशनदास अग्रवाल
तुलसी मानस प्रकाशन
ह० अग्रवाल चैरिटेबल ट्रस्ट
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई १०

प्रथम संस्करण
१००० प्रतियाँ
अक्टूबर १९६७

मुद्रक
संकटा प्रसाद शुक्ल
शुक्ल प्रिंटर्स, डॉ. देशमुख लेन
बम्बई ४

भूमिका

आज के युग में अध्यात्म और ब्रह्मज्ञान कुछ ऐसे जटिल विषय समझे जाने लगे हैं कि जनसाधारण उन्हें अपनी पहुँच के बाहर मान कर उनमें रुचि नहीं लेते। अनेक लोगों को तो यह भ्रम ही है कि यह ज्ञान दुनिया से बाहर ले जाने वाला और सन्यास की भावना जगाने वाला है। पर सच पूछा जाय तो वेदान्त का विषय न तो कठिन ही है और न दुनिया के बाहर का ही ज्ञान है। अध्यात्म का अर्थ ही है स्वयं का अध्ययन। जीवन विविधताओं से भरा है और हम सब उससे जी रहे हैं। पर क्यों जी रहे हैं? हमारा लक्ष्य क्या है? आदि ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न हम सबके मन में कभी न कभी उठते ही हैं। अध्यात्म इन्हीं प्रश्नों पर विचार करता है। यह इसी जिज्ञासा का हल ढूँढ निकालने वाली विद्या है।

आज का मनुष्य इतनी विषम परिस्थितियों में जी रहा है कि उसे जन्म से लेकर मरण तक उलझने ही उलझने दिखलाई देती हैं, दुःख ही दुःख भासता है। इस दुःख का निवारण हम दुनिया के भौतिक-सुख-साधनों में ढूँढ़ते हैं, पर क्षणिक और तात्कालिक सुख देने वाले ये भौतिक-सुख-साधन तो अन्ततः दुःख के ही कारणभूत होते हैं। तब हमें यह संसार दुःखमय, उलझन भरा और एक प्रपंच ही भासता है। अध्यात्म ज्ञान हमें वास्तविक सुख और आनन्द की राह दिखलाता है। इस दिशा में यह

उपन्यास एक प्रयोग है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में अध्यात्म का क्या महत्व है और सत्यज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसका समाधान प्रस्तुत उपन्यास के नायक मुमुक्षुराम के जीवन - वृत द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस उपन्यास की अपनी एक कहानी है। यद्यपि इतिहास में एम० ए० करने तथा भारत की प्राचीन संस्कृति मेरा विशेष रुचि का विषय होने के कारण मुझे भारतीय दर्शन की सभी शाखाओं का अध्ययन करने का अवसर मिला था पर अध्यात्म को लेकर इस प्रकार की रचना करने की कोई कल्पना पूर्व में नहीं की थी। एक दिन माननीय सेठ श्री हरिकिशनदास जी अग्रवाल ने मुझे बुलाया और एक आध्यात्मिक उपन्यास लिखने का आग्रह किया। उनके मन में जाने कबसे इस प्रकार की कल्पना हो रही थी। इस रचना का भार मुझे सौंपते हुए उन्होंने सन्दर्भ ग्रंथ तथा सत्संगादि की सभी सुविधाएँ उपलब्ध करा दीं। बाबू श्री हरिकिशनदास जी अग्रवाल एक अति व्यस्त उद्योगपति हैं, पर अपनी उस अति व्यस्तता में भी वे भगवद् - स्मरण, आत्म-चिन्तन और सत्संग के लिए समय निकाल लेते हैं। स्वाध्याय और सत्संग में उनकी रुचि है और ५५ वर्ष की आयु में भी इतना अधिक उत्साह है कि नवयुवक भी पीछे रह जाएँ। अपनी अध्यवसायी और उदार प्रवृत्ति के कारण वे बराबर साधु - महात्माओं तथा विद्वानों को अपने साधनों द्वारा प्रोत्साहित करते रहते हैं। अन्ततः मैं कहूँ कि इस ग्रंथ - रचना का श्रेय उन्हीं को है अन्यथा न होगा।

इस उपन्यास के लेखन में मुझे अनेक विद्वान महात्माओं के सत्संग और आशिर्वाद का लाभ मिला है, विशेषकर महात्मा श्री विश्वेश्वरानन्दजी (उज्जैन), महात्मा श्री प्रज्ञानानन्द जी (मथुरा), महात्मा श्री अखण्डानन्दजी (बम्बई) तथा श्री हरि-किशनदास जी के गुरु पूज्यपाद श्री निर्मलजी महाराज (अमृतसर) जैसे महापुरुषों के प्रति मैं अपनी नम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

श्री साउण्ड स्टूडियो
दादर, बम्बई–१४
विजया दशमी, अक्टोबर १९६७.

जगदीशकुमार निर्मल



रात अंधेरी थी, पर जगतमहल असंख्य प्रकाश-मालाओं से जगमगा रहा था। भवन का एक एक कोना दिवस के समान प्रकाशवान था। बाह्य उद्यान के बृक्षों पर रंगविरंगे विद्युत–प्रकाश का जाल गुँथा हुआ था, प्रमुख द्वार पर नगर का सबसे शानदार बैण्ड बज रहा था और एक के बाद एक मेहमानों की कारों का तांता लगा हुआ था। भवन से सटाकर एक विशाल पण्डाल (मण्डप) तैयार किया गया था, जिस पर रेशम के कीमती पर्दे लगे थे, बहुमूल्य कालीन बिछे थे। चारों ओर लोगों की चहल पहल थी, भांति भांति के वस्त्रा-भूषणों से सजे हुए वे आ आकर पण्डाल में बैठ रहे थे। चारों ओर हास और उल्लास का वातावरण बिखरा पड़ता था।

•

पण्डाल के द्वार पर सेठ मुमुक्षुराम खड़े हुए अपने मित्रों और सुहृदजनों का स्वागत कर रहे थे। आज उनकी प्रसन्नता का पारावार न था। बड़ी प्रतीक्षा के पश्चात यह शुभ दिवस आया था। आज उनकी एकमात्र संतान निवृति कुमारी का विवाह संपन्न होने जा रहा था। सेठ मुमुक्षु अपने नगर के बड़े धनीमानी व्यक्ति थे।

उनका एक साइकिल का कारखाना था और जोहरी की दुकान थो । इतने संपन्न होते हुए भी वे पुत्र धन से वंचित थे। अनेक प्रकार से दान धर्म आदि प्रयत्न करने पर भी उन्हें पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई, पर ईश्वर की इतनी कृपा अवश्य हुई कि उनके घर एक कन्या का जन्म हो गया और वे निसंतान न रहे । एकमात्र सन्तान होने के कारण सेठ मुमुक्षुराम का सारा प्यार पुत्री निवृत्ति पर उँडल पड़ा । निवृत्ति बड़ी सुन्दर, भोली भाली और मधुर स्वभाव की लड़की थी। उसने अपनी वाल लीलाओं से मुमुक्षु के पुत्र विहीन परिवार को एक नए सुखी जीवन से भर दिया । मुमुक्षु का परिवार अधिक बढ़ा नहीं था, उनकी पत्नी कुलवती और छोटी बहिन श्रद्धारानी के अतिरिक्त और कोई न था। श्रद्धारानी बाल विधवा थी इसलिए मुमुक्षुराम उसे वहुत चाहते थे। इस छोटे से परिवार में निवृत्ति एक-नवीन पुष्प के समान उपजी थी, जिसकी सुगंध से परिवार का सूनापन मिट गया था । मुमुक्षुराम ने अपनी इस कन्या से पुत्र के अभाव को भर लेना चाहा था, इसलिए निवृत्ति के वयस्क होने पर उन्होंने बड़ी सावधानी से उसके लिए वर का चुनाव किया था। वैसे तो उन जैसे धन संपन्न व्यक्ति की एकमात्र कन्या से विवाह करने के लिए अनेक नवयुवक लालायित

थे पर मुमुक्षु राम अपने धन के बदले कन्या के लिए पति नहीं खरीदना चाहते थे बल्कि उसके लिए उन्हें आदर्श वर की तलाश थी। ईश्वर कृपा से उन्हें ऐसा लड़का मिल भी गया। मानवकुमार ऊँचे और संपन्न घराने का सुशोल नवयुवक था। जैसा देखने में सुन्दर वैसा आचार–व्यवहार में मधुर, धनिक होते हुए भी निराभिमानी और अध्यवसायी, इसलिए वह मुमुक्षु राम के मन को भा गया। जब बरात और लोगों ने वर को देखा तो उनके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा कि निवृत्ति बड़ी भाग्यवान लड़की है जो उसे ऐसा श्रेष्ठ वर मिला है।

पाणिग्रहण संस्कार सम्बन्धी सभी नेग व्यवहार संपन्न हो चुकने पर जब वर को भोजन कराने का अवसर आया तो नियमानुसार मानवकुमार ने भोजन करने के पूर्व अपनी मांग प्रस्तुत कर दी। मांग कोई बड़ी नहीं थी, उसने केवल हीरे के नग वाली एक अंगूठी मांगी थी मुमुक्षु राम ने तत्काल ही एक अस्सी हजार के मूल्य के नगवाली अंगूठी मंगाकर भेंट कर दी। पर जाने क्यों मुमुक्षु के मन को यह बात चुभ गई। उन्होंने अपनी एकमात्र कन्या के विवाह को अविस्मरणीय बनाने के लिए कुछ भी उठा न रखा था। करोड़ रुपये से ऊपर तो उन्होंने

दहेज में ही खर्च कर डाला था। बरात के स्वागत के लिए जो पण्डाल बना था उसी की लागत लाख डेढ़ लाख पड़ी थी। ... और जब अपनी प्राण प्रिय एकमात्र पुत्री का दान किया जा रहा है तो उसके सामने भौतिक संपत्ति का क्या मूल्य ? ... पर इतना सब कुछ मिलने पर भी मानवकुमार ने हीरे की अंगूठी की मांग की ... क्या यह तृष्णा नहीं है ? मन में छिपे हुए, कभी न मिटने वाले लालच का एक रूप नहीं है ? मुमुक्षु को अपने दामाद की इस छुद्रता पर मन ही मन दुःख हुआ। उनके मन में अनायास ही अपशकुन की भावना जागी, उन्हें शंका हुई कि कहीं इस लालची वृत्ति के मानव के साथ मेरी सीधी साधी निस्वार्थ वृत्ति वाली कन्या दुखी तो नहीं हो जाएगी ?"–पर उन्होंने इस शंका को आगे नहीं बढ़ने दिया और मानवकुमार की उस मांग को एक सामान्य रीति रिवाज मान कर भुला दिया।

× × ×

१

विवाह के पश्चात आज निवृत्ति की बिदा होने वाली थी। भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह मनुष्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कार द्वारा दो नर नारी परस्पर प्रणयसूत्र में बँधकर ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। उनके जीवन में एक नवीन रोमांचकारी सम्बन्ध का उदय होता है, यह सम्बन्ध मात्र शरीर का ही नहीं बल्कि एक गाढ़-आत्मीयता का सम्बन्ध होता है। यह ऐसा गाढ़ और अप्रमेय सम्बन्ध होता है कि इसके सामने पूर्व के सारे सम्बन्ध फीके पड़ जाते हैं। विवाह द्वारा प्रारम्भ होने वाले दाम्पत्य-जीवन का औत्सुक्य और आकर्षण वर, वधु दोनों में ही होता है पर वधु की मनोदशा कुछ और ही होती है। उसे जहां एक ओर अपना जीवन साथी मिलता है, दूसरी ओर उसका अपने माता पिता और प्रिय जनों से विछोह भी होता है। वे माता पिता जिन्होंने माली की भाँति अपने प्यार और कष्टों के जल से सींच सींच कर कन्या की जीवन बेल का पोषण किया आज अचानक दूर हो जाते हैं। एक ओर

नवीन–संयोग का मधुर आभास तो दूसरी ओर चिर वियोग की कटु वेदना।

निवृत्ति की मनोदशा ऐसी ही विचित्र हो रही थी। एक ओर उसके मन में पिया मिलन की मधुर कल्पना एक सुखद गुदगुदी उत्पन्न कर रही थी, दूसरी ओर उसे माता पिता के विछोह की वेदना सता रही थी। अपने जन्म से उसने माता .पिता के प्यार को ही जाना है और वह प्यार भी कैसा अनुपम, कितना गाढ़ ? क्या वैसा प्यार कहीं मिलेगा ? ... जाने क्यों निवृत्ति को लग रहा था जैसे वह अपने माता पिता की अपराधिन हो। उसके हृदय का सारा स्नेह, सभी श्रद्धा आदि अनायास ही उसका पति मानवकुमार चुराए लिए जा रहा था, और वह अवश थी, विवश थी ... और निवृत्ति नहीं समझ पा रही थी, कि वह रोए या हँसे।

यही स्थिति निवृत्ति की माँ और बुआ की हो रही थी। माँ तो भावावेष में बराबर पुत्री के साथ बनी हुई थीं। बेटी को बहुत सारी बातें समझाना चाहती थीं पर क्या कहें यह सूझ ही न पड़ता था। बुआ श्रद्धा किसी प्रकार धीरे धीरे कुछ नीति व्यवहार की बातें निवृत्ति को समझा रही थीं। विदा का समय पास आता जा रहा था। वधु का श्रृंगार प्रारम्भ कर दिया गया। पैरों में

महावर, आंखों में काजल, माथे पे बिन्दिया और माँग में सिन्दूर भरा, मोती की लड़ियों से केश गूँथे गए। बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिन कर जब नववधु निवृत्ति सजी तो माँ अपनी बेटो पर ही मोहित हो गई।

श्रंगार चल ही रहा था कि जहां बरात ठहराई गई थी वहाँ से एक नौकर भागता हुआ आया।

"सेठ जी! सेठ साहब!"—वह घबराया हुआ था और जोर जोर से हाँफ रहा था।

"क्या है सेवक राम? मुमुक्षुराम ने नौकर को घबराया हुआ देखकर पूछा?

"गजब हो गया सेठ जो गजब।... जमाई बाबू।— ..' नौकर का स्वॉस इतनी जोर से चल रहा था कि वह पूरी बात न कह सका।

"अरे जल्दी बोल न! जमाई बाबू क्या?"—सेठ जी ने हड़बड़ा कर पूछा।

"कुँवर साहब ने नए जूते पहिन रखे थे, सो सीढ़ियों पर से फिसल गए।"

"फिसल गए?" – सचिन्त मुमुक्षुराम ने पूछा।

"जी हाँ फिसल कर नीचे जा गिरे।"—सेवक ने भरे हुए गले से कहा।

"क्या बहुत चोट आई है ?"– सेठ जी ने पूछा। तब तक परिवार के सभी लोग वहाँ एकत्रित हो गए थे।

"जी हाँ सिर में चोट आई है, उन्हें सुदर्शन हास्पिटल ले गए हैं।"

"हे भगवान ! यह कैसा अपशकुन है ?" – सेठानी कुलवती के मुख से निश्वास निकल पड़ा।

"जा ड्रायवर से गाड़ी निकालने को कह, हम अभी अस्पताल चलते हैं।"–अपने को संभालते हुए मुमुक्षुराम ने नौकर से कहा।

सेवक बाहर दौड़ गया। मुमुक्षुराम ने अपना कोट पहिना टोपी लगाई और चलते चलते पत्नी की ओर देखा। कुलवती की आँखों में आँसू भर आए थे। मुमुक्षु ने कहा –"धैर्य रखो निवृत्ति की माँ ! ईश्वर सब ठीक करेंगे।"

"मेरा कलेजा फ़टा जा रहा है, जाने क्या होनहार है।" कुलवती सिसक कर रो पड़ी बोली– "चलिए मैं भी आपके साथ चलती हूँ।"

"अच्छा तैयार हो आओ तब तक मैं हास्पिटल फोन करके पूछता हूँ।" –मुमुक्षु जल्दी से फोन की ओर बढ़े, वे पास पहुंच कर फ़ोन उठाने ही वाले थे कि फ़ोन की

घन्टी घनघना उठी। मुमुक्षु ने धड़कते हुए हृदय से फोन उठाया और भारी आवाज में कहा –"हॅलो ! हाँ मैं मुमुक्षुराम

उत्तर में मुमुक्षु राम को जो बात सुनाई दी, उसे सुनकर उनका सारा शरीर काँप उठा। घबराकर उन्होंने कहा –"नहीं नहीं गुलाबराय जी, यह नहीं हो सकता। कह दो यह सच नहीं है ...उफ़ !......" मुमुक्षु ने कांपते हुए हाथों से फोन रख दिया और लड़खड़ाते हुए पास के सोफे पर पड़ कर, दोनों हाथों से अपना मुँह ढंक लिया ।

"क्यों" क्या हुआ ? समधी साहब ने क्या खबर दी"– कुलवती, जो अन्दर जाते जाते रुक गई थी, ने अत्यन्त आशंकित स्वर में पूछा –

सेठ मुमुक्षुराम पत्नी के आशंकित चेहरे को फटी हुई आंखों से देखते रहे, जैसे क्या हुआ यह खुद उनको समझ में भी नहीं आ रहा था।

"कहिए न, आप बोलते क्यों नहीं ?" – कुलवती व्याकुल हो गई।

"क्या बोलूं निवृत्ति की माँ !" – सेठ मुमुक्षुराम ने कठिनाई से कहा –' हमारी निवृत्ति विधवा हो गई।'

"हे राम !" कुलवती के मुख से एक चीख निकली और वह चक्कर खा कर सोफे पर गिर पड़ी।

सारे घर में कुहराम मच गया। अभी अभी जहाँ शहनाई की मधुर धुन बज रही थी, मधुहास के कहकहे गूँज रहे थे, अब वहाँ रुदन और विलाप के स्वर गूँजने लगे। नववधु निवृत्ति के लिए नवदाम्पत्य जीवन के जो आकर्षक द्वार अभी अभी खुले थे वे अकस्मात झनझना कर बन्द हो गए। अभी अभी वह जिस सुहाग की अधिकारिणा वनी थी, वह हठात उसके माथे से पुछ गया। जिन हरी सुहागिन चूड़ियों को माता ने बड़े चाव से अभी अभी अपनी प्रिय पुत्री को पहिनाया था वे तोड़ देना पड़ीं ...... और निवृत्ति, फूल सी निवृत्ति जिसने कभी दुख को जाना ही न था आज विपत्ति का इतना बड़ा वज्राघात कैसे सह पाती। खबर सुनते ही वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। ऐसे समय कौन था जिसका धीरज स्थिर रहता। माता तो सदमे से अचेत हो गई थी। बुआ श्रद्धा तो विधवा थी। उसे पति विहीन नारी की मनोव्यथा का कटु अनुभव था। अपने जीवन के प्रारम्भ से ही उसने रुदन ही देखा था, इसलिए नेत्रों के आँसू अब चुक गए थे। अपने ही दुख के भार से दुखी वह दुखिया बेचारी किसी प्रकार अपनी भतीजी को संभालने, उसे धीरज बंधाने के यत्न करने लगी।

३

मुमुक्षुराम के हृदय पर दुख का पहाड़ गिर गया था। कष्ट और वेदना से कुछ ऐसी मनोदशा हो गई थी कि कुछ सूझही नहीं पड़ता था। भाग्य उन पर रूठा सो रूठा पर निर्दोष निवृति का क्या दोष था? बेचारी कली खिल कर मुस्कुरा भी न पाई थी कि नियति के हाथों ने उसे मसलकर फेंक दिया। ...मुमुक्षु को रह रहकर निवृत्ति की दशा का आभास होता है. "आह उसकी वेदना कितनी गहरी होगी। आज उसे अचानक अपने चारों ओर अँधकार ही अँधकार दिखलाई दे रहा होगा। अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रिय, जिस पुत्री पर मैंने कभी उदासी की छाया भी नहीं पड़ने दी, हा! आज उसका सारा जीवन ही दुख और उदासी की काली घटाओं से ढ़ँक गया, नहीं ... मुझसे यह सहन नहीं होगा। दुर्भाग्य की कुटिल क्रूरता के हाथों मैं अपनी बालिका के जीवन को नष्ट नहीं होने दूंगा। बहिन श्रद्धा का दुखी विधवा जीवन मेरे सामने है, जैसे तैसे उसकी आयुष्य तो कट गई पर निवृत्ति जिसके जीवन का अभी प्रारम्भ ही है भला कैसे काटेगी पहाड़ सा यह जीवन?...... ना मैं

उसे वैधव्य की चक्की में नहीं पिसने दूंगा। समय बदल रहा है! फिर निवृत्ति का विवाह भले ही हो गया हो पर पति का उसे स्पर्श तक नहीं हुआ अतः एक प्रकार से वह कुमारो ही है। मैं उसका पुर्नविवाह कर दूंगा। वह अभी बच्चो ही तो है, उसके सुख दुख की देखभाल मुझे ही करना होगी। और मुमुक्षुराम के मन में इस प्रकार की भावनाएँ दृढ़ हो चलीं, उन्होंने किसा प्रकार अपना हृदय कड़ा किया और वे निंवृत्ति को सांत्वना देने गए।

तीन दिन बीत गए थे। निवृत्ति ने न कुछ खाया था न पिया था। वह मुँह ढाँपे पलंग पर पड़ी थी। मुमुक्षु ने धीरे से उसकी पीठ पर हाथ फेरा और स्नेह से मस्तक सहलाने लगे। निवृत्ति पिता की छाती से लगकर फफक फफक कर रो पड़ी। मुमुक्षु उसे सांत्वना देते हुए समझाने लगे। वे बोले – "बेटी भाग्य की गति बड़ी न्यारी होती है, उसे कोई टाल नहीं सकता। जो होना था सो हो गया। अब अधिक दुख करना उचित नहीं। मैं ने निश्चय कर लिया है। मैं तेरा पुर्नविबाह कर दूँगा"

"पुर्नविवाह !" निवृत्ति चौंकी जैसे उसे किसो भयानक विद्युत करेन्ट ने छू लिया हो –"पुर्नविवाह ! पिता जी, क्या एक विवाह का नतोजा काफो नहीं है ?"

"पर बेटी उससे क्या हुआ ? यदि मानव अल्पायु था तौ तेरा इसमें क्या दोष। पति से तेरा सम्पर्क तो आया नहीं अतः विवाह होना न होना बराबर ही है।"

"पिता जी यह आप क्या कह रहे हैं ?"–निवृत्ति आश्चर्य चकित थी, उसके आँसू थम गए, उसने कुछ कठोर कंठ से कहा – "मैं जानती हूँ पिता जी कि आप मुझे कमजोर समझ कर ऐसा कहं रहे हैं, नहीं तो अग्नी को साक्षी देकर एक बार जिसे पति माना क्या फिर भारत की नारी किसी दूसरे पुरुष के विषय में सोच सकती है ? न पिता जी न ! यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो फिर ऐसी बात न कहना"– और निवृत्ति के धैर्य का बाँध टूट पड़ा। वह सिसक सिसक कर रोने लगी।

• •

मुमुक्षुराम किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो गए फिर बेटी को आँखों के आँसू पोछते हुए बोले–"नहीं कहूँगा बेटी ! नहीं कहूँगा। पर तू मन में धीरज धर ! तेरा दुख मैं देख नहीं सकता ! जिस चेहरे को कभी उदास नहीं देखा आज उसे बिलखते मुझसे नहीं देखा जाता..... नहीं सहा जाता।"–और इससे पहिले कि उनकी आँखों से आँसू बह पड़े वे निवृत्ति के कक्ष से बाहर हो गए।

४

मुमुक्षुराम अपना हृदय कड़ा करके पुत्री को सांत्वना देने गए थे पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ उलटे उनकी स्वयं की वेदना और अधिक बढ़ गई। उन्हें इतना गहरा सदमा पहुँचा था कि उन्होंने किसी से मिलना जुलना और कहीं बाहर आना जाना ही बन्द कर दिया। उन्हें कुछ न सुहाता, दिन रात वे अपने कमरे में अकेले पड़े ठंडी आहें भरते रहते, जैसे यह सारा संसार ही उनके लिए व्यर्थ हो गया हो।

धीरे धीरे उनकी वेदना ने एक नया रूप धारण किया और उन्हें लगा कि उनके विषम दुख का कारण केवल इतना ही नहीं है कि उनकी एकमात्र पुत्री विवाह के दिन विधवा हो गई। हाँ इस दुर्घटना ने उनके धैर्य के बाँध तोड़ दिए थे और उनके अन्तर में बसी जीवन की चिर वेदना उभर कर ऊपर आ गई थी।

यह चिर वेदना कैसी थी, जिसने मुमुक्षु के हृदय को ही, विदीर्ण कर डाला था, कि जिसकी कसक से उनके जीवन का सारा क्रम ही उथलपुथल हो गया था?...

यह वेदना सुख के अभाव की वेदना थी, यह छटपटाहट संसार के सत्य की खोज की छटपटाहट थी ....

मुमुक्षु प्रारम्भ से ही विवेकशील, विचारक तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। यह संसार क्या है ? इसमें इतनी विविधता क्यों है ? जीवन क्या है और उसका सच्चा सुख क्या है ? आदि भाँति भाँति के प्रश्न बाल्यकाल से उनके मन में उठते रहते थे और वे अपने ढंग से उनका समाधान करते रहते थे। समय के साथ साथ उनके विचारों में प्रौढ़ता आती गई और उनकी अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ बनती गईं। भाग्य में उनका विश्वास नहीं था और वे मनुष्य की अपनी कर्म शक्ति में विश्वास रखते थे। वे बडे गर्व से कहा करते थे कि संसार में मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। यदि वह किसी वस्तु को पाने की ठान ले और उसे पाने के लिए ठीक-ठीक यत्न और श्रम करे तो क्या माने हैं कि वह वस्तु उसे न मिले और अपनी इसी कर्मठ भावना और विश्वास के कारण मुमुक्षु ने जीवन में चमत्कारिक सफलताएँ प्राप्त की थीं।

मुमुक्षु के माता पिता निर्धन थे। निर्धनता के कारण बाल्यकाल से ही अनेक प्रकार के अभाव उन्हें सहना

पड़े थे। इस कारण बाल्यकाल से ही उन्हें दुख और अभावों का सामना करना पड़ा था और हमेशा उन्हें सुखकी चाह सताती रहती । वे अपने आस–पास धनिक श्रीमंतों का सुख-सुविधा पूर्ण जीवन देखते तो उन्हें लगता वे ही लोग संसार में सच्चे सुखी हैं; और धीरे धीरे उनकी भावना बन गई कि धन ही संसार के सुखों की कुंजी है। मुमुक्षु ने ठान लिया कि कुछ भी हो, कैसे भी हो वे अपार धन का अर्जन करेंगे।

अपनी धुन के पक्के और परिश्रमी मुमुक्षु ने अपनी सारी शक्तियां धन कमाने में लगा दीं। इसके लिए मुमुक्षु ने क्या नहीं किया, कौन सा प्रयत्न शेष छोड़ा ? ऐसा कठोर परिश्रम,ऐसी कठोर भागदौड़ कि रातको रात नहीं समझा और दिन को दिन नहीं ...... और आखिर धीरे धीरे लक्ष्मी की उन पर कृपा हुई और अपार धन सम्पदा के द्वार उनके लिए खुल गए। कभी जिन सुख–सुविधाओं के वे सपने देखा करते थे आज वे उनके लिए सहज सुलभ हो गईं। उनके ऐश्वर्य और सौभाग्य पर बड़े बड़े धनिकों को भी ईर्षा होने लगी किन्तु जाने क्यों मुमुक्षु को इससे न तो सन्तोष ही हुआ और न सुख ही मिला। उलटे वे अपने आपको अधिक उलझा हुआ और दुखी अनुभव करने लगे। सभी भाँति की सुख–सुविधाओं

के होते हुए भी उनका मन अतृप्त और व्याकुल बना रहता। इसके कारण अनेक थे: सम्पन्नता और धनसम्पदा की वृद्धि के साथ साथ उनके मन पर लाख चिन्ताएँ और जिम्मेदारियां सवार हो गई थीं। इतने परिश्रम और त्याग से जिस कारोबार को उन्होंने जमाया था, उसकी व्यवस्था ठीक ठीक चलतो रहे, कहीं कोई अपव्यय न हो, कोई हानि न पहुँचे आदि भय बराबर बने रहते थे। उधर अथक परिश्रम और अनियमित जीवन के कारण उनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया था। संघर्ष काल में खान पान को अव्यवस्था के कारण पाचन क्रिया गड़बड़ हो गई थी। इधर कुछ दिनों से उन्हें इन्सोमनिया की शिकायत हो गई थी और रात रात भर नींद नहीं आती थी। डाक्टर कहते थे कि ऐसा, मानसिक तनाव के कारण होता है और यदि वे चिन्ता करना छोड़ दें तो उनका स्वास्थ्य शीघ्र सुधर सकता है।•पर मुमुक्षु चिन्ता करना कैसे छोड़ दें। उन्हें न केवल अपने कारोबार की चिन्ता थो बल्कि परिवार में भी उन्हें सुख नहीं मिला था। नाते-रिश्तेदार तो उनकी इस अभूतपूर्व उन्नति के कारण ईर्ष्या रखते ही थे पर घर में भी पुत्रोत्पति न होने के कारण एक असन्तोष सा व्याप्त था। पुत्र न होने का जितना कष्ट उन्हें था उससे कहीं शतगुणा अधिक उनकी

पत्नी कुलवती को था। उनकी एकमात्र छोटी बहिन श्रद्धा बाल्यकाल से ही वैधव्य दुख भोग रही थी। संतान की दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात जब कन्या निवृत्ति का जन्म हुआ तो पुत्र के अभाव की पूर्ति उन्होंने कन्या के स्नेह से कर लेना चाही। कन्या के सुख में अपना सुख मानते हुए उन्हें समाधान का एक मार्ग मिला था, पर हा विधाता! तू ने उसे उसे भी छीन लिया ...... और मुमुक्षु की सारी मान्यताएँ छिन्न भिन्न हो गईं। जिस भाग्य पर उन्हें विश्वास नहीं था, आज उसी भाग्य ने अपना विकराल रूप उनके सामने प्रकट कर दिया था। धनिकों की जो सुख-सम्पदा दूर से जितनी सुखदायी और आनन्दप्रद लगती थी वह प्राप्त होने पर उतनी ही दुखदायी और व्यर्थ प्रतीत हुई। यदि धन से सुख खरीदा जा सकता होता तो आज मुमुक्षु इतने दुखी क्यों होते ... .. पर सुख है कहाँ ? निर्धनता के कटु अभावों को वे अभी तक भूले न थे अतः न निर्धनता में सुख है न धन सम्पदा में, तो फिर इस संसार में सुख है भी या नहीं ? शायद नहीं है और यदि नहीं है तो फिर हम यहाँ क्यों जी रहे हैं ? क्यों दुख के इस भार को एक पशु की भाँति ढोए जा रहे हैं ?

पर जीवन से भागकर हम जा भी कहाँ सकते हैं? क्या

मृत्यु जोवन की मुक्ति हो सकती है ? यदि मृत्यु ही जीवन की मुक्ति होती तो क्यों वह हमारे दुख का कारण होती, क्यों हमें उससे भय लगता ? ऐसे जाने कितने प्रश्न मुमुक्षु के मन में एक साथ आकर खड़े हो जाते और मुमुक्षु को उनका कोई उत्तर सूझ न पड़ता । ऐसा लगता कि जैसे उनके चारों ओर अज्ञान रूपी घोर अँधकार फैला हुआ है और उस अँधकार में उन्हें भीषण घबराहट होती, उनकी आत्मा ज्ञान के प्रकाश को पाने के लिए छटपटा छटपटा उठती ।

६

"भाभी जो ! आज मुकुक्षु भाई से मिले बिना वापिस नहीं लौटूँगा ।"– श्रवण बाबू ने सोफे पर बैठते हुए कुलवती से कहा–" जब भी आता हूँ तभी एक न एक बहाना ! आखिर बात क्या हो गई है कि जिनसे रोज मिले बिना उन्हें चैन नहीं आता था, आज महीना गुजरने आया, हम तीन चक्कर लगा गए और ये हैं कि घर में होते हुए भी मिलते नहीं ! "–श्रवण बाबू का मुँह आवेश से तमतमा गया। वे मुमुक्षुराम के घनिष्ट मित्रों में से थे । कितनी ही व्यस्तता हो पर प्रतिदिन काम के बाद दोनों मित्र संध्या समय अवश्य मिलकर एक दूसरे के सुख - दुःख की दो बातें कर लिया करते थे। अपने निजी मामलों में एक दूसरे की सलाह लेते और एक दूसरे का मार्ग दर्शन करते थे । मानव कुमार के चुनाव में श्रवण बाबू का भो हाथ था और उसकी अकस्मात मृत्यु से उन्हें हार्दिक वेदना हुई थी। वे चाहते थे कि मुमुक्षु से मिलकर उन्हें सांत्वना की दो बातें समझाएँ उसके दुख को हलका करें पर मानव के अन्तिम संस्कार के पश्चात् से ही मुमुक्षु से मुलाकात नहीं हो सकी ।वे

उनके घर दो तीन चक्कर लगा गए पर मुमुक्षु मिले नहीं। मुमुक्षु ने तो घर से बाहर निकलना भी बन्द कर रखा था, मिलें तो कैसे मिलें इसलिए आज वे निश्चय कर चुके थे कि मिले बिना लौटेगें नहीं।

"मैं तो स्वयं चाहती हूँ श्रवण बाबू कि आप उनसे मिल लें। कुलवती ने कोमलता से कहा।

"तब मुझे उनके पास ले चलिए।"– श्रवण कुमार आतुर थे।

"बस यही मेरे वश की बात नहीं है।" कुलवती ने एक दीर्घ निश्वास फेंका–" उन्हें जाने क्या हो गया है ? वे एक दम बदल से गये हैं। दिन रात अपने कमरे में पड़े रहते हैं। न उन्हें कहीं आना जाना सुहाता और न किसी से कुछ बोलना सुनना। मैं तो उनको पत्नी हूँ पर दो दो दिन निकल जाते हैं वे मेरे से नहीं बोलते।"– कुलवती की आँखे आँसुओं से भर गईं, रुँधे हुए गले से वे बोलीं – मैं जानती हूँ कि उन्हें बड़ा सदमा पहुँचा है पर क्या इस तरह कोई अपने लोगों से दूर भागता है। मेरी बात छोड़िए, मेरी निवृत्ति को वे कितना चाहते हैं पर आज कल उसे भी पास नहीं आने देते।"

"भाभी जी यह सब सदमें का ही कारण है। मुमुक्षु

बाबू को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वे बड़े कोमल हृदय के भावुक व्यक्ति हैं और वे इतनी बड़ी दुर्घटना का धक्का भला कैसे झेल सके होंगे ? उन्हें बहुत गहरा सदमा पहुँचा होगा, बहुत गहरा – बेटी निवृत्ति उनके प्राणों का आधार है उसे दुखी देख सकना उनके वश की बात नहीं। जिस बेटी के ऊपर वे सारी दुनिया का शृंगार न्यौछावर कर सकते थे आज उसे ही शृंगार रहित सादा वेश में उनकी आँखें कैसे देख सकेंगी ? शायद इसीलिए वे–"

"पर ऐसे कब तक चलेगा श्रवण बाबू ! मैंने माना कि वे बेटी के दुख से दुखी हैं पर बेटी को धीरज बँधाने और उसके दुख को भुलाने के स्थान पर वे उसे इस तरह और भी दुखी बना रहे हैं। बेचारी निवृत्ति के मन पर एक तो उसका दुर्भाग्य सवार है और दूसरी ओर पिता की इस अवस्था ने उसे दुखी बना रखा है। आप देखिए न बीस पच्चीस दिन में ही मेरी फूल सी कोमल बच्ची किस तरह मुरझा गई है।" –कुलवती सिसक कर रो पड़ी।

तभी श्रद्धा बहिन वहाँ आ गई, कुलवती को रोते देख कर बोली –"अरे भाभी श्रवण भाई आए हैं और तुम रो रही हो।"

"रोऊँ नहीं तो क्या करूँ श्रद्धा बहिन अब इसके सिवा भाग्य में रह ही क्या गया है ?" कुलवतो ने निराशा से कहा।

"धीरज धरो भाभी ! तुम घर की बड़ी हो, तुम इस तरह रोओगो तो हमारी निवृत्ति के मन पर क्या बीतेगी ? भैया सुनेंगे तो ...

"हाँ मैं तुम्हारे भैया को ही सुनाना चाहती हूँ। मन तो होता है कि जाकर उनके कमरे के दरवाजे पर सिर पीटूँ और जोर जोर से विलाप करूँ। पहिले तो भाग्य फूटे और फिर उस पर से ये मेरे घर के विधाता रूठ गए ! हा !" —कुलवती की वेदना आँसुओं में फूट पड़ी।

"भाभी जी ! आप इस तरह न रोइए। मै कुछ भी हो आज उन्हें जाकर समझाता हूँ – श्रवण बाबू ने उठते हुए कहा "चलो श्रद्धा बहिन मुझे उन तक ले चलो।"

"हाँ भाभो तुम धैर्य धरो मैं श्रवण भाई को उनके पास ले जाती हूँ।" —श्रद्धा ने कहा

"कैसे ले जाओगो, वे नाराज हो जाएगें।" —कुलवतो को भय था।

"नाराज हो जाएगें तो हों पर मुझसे अब और नहीं

सहा जाता। चलो श्रवण भाई।" –श्रद्धा ने चलते हुए कहा श्रवण बाबू उसके पीछे हो लिए।

मुमुक्षु के कमरे पर जाकर श्रद्धा ने द्वार थपथपाया। अन्दर से कोई उत्तर नहीं आया। श्रद्धा ने फ़िर द्वार थप थपा कर आवाज दी।

–" भैया।"

फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला। श्रद्धा ने द्वार के हेंडिल को दबाकर अन्दर की ओर दबाया तो द्वार खुल गया। पलंग खाली पड़ा था और कमरा अस्त व्यस्त। श्रवण बाबू ने आश्चर्य से कमरे में दृष्टि घुमाई तो देखा कि एक कोने में दीवार की ओर मुँह किए हुए मुमुक्षु बैठे हैं।

श्रद्धा ने धोरे से श्रवण के कान में फुसफुसा कर कहा –"बस अधिकतर यूँ ही बैठे रहते हैं।" –फिर तनिक जोर से बोली– "भैया! ... भाई साहब।"

" ऊँ!" – मुमुक्षु जैसे नींद से जागे हों– "क्या ... क्या है?'

"तनिक इधर तो देखिए।" श्रद्धा ने साग्रह कहा।

"न! मुझे कुछ नहीं दिखलाई देता श्रद्धा – जा मुझे परेशान न कर।"– मुमुक्षु ने बिना देखे ही कहा।

"तुम न देखो पर हमें तो देख लेने दो भाई।" श्रवण ने आगे बढ़ते हुए कहा।

"क्या ? "–मुमुक्षु ने चौंक कर कहा और पीछे देखा तो श्रवण कुमार थे। विस्मय से पूछा– "अरे तुम ! यहाँ?"

"भाई वाह।" श्रवण बाबू ने शिकायत भरे स्वर में कहा - "यह क्या लगा रखा है तुमने ? जब देखो तब कमरे में बन्द हैं। हम हैं कि आपसे मिलने के लिए बेचैन हैं और आप हैं कि बस मिलना नहीं चाहते।" –श्रवण बाबू ने तपाक से मुमुक्षु का हाथ पकड़ कर कहा– "चलो उधर बैठेंगे, बहुत दिनों बाद मुलाकात हुई है।"

मुमुक्षुराम अनिच्छा से उठे और श्रवण बाबू के साथ सोफे पर बैठ गए। श्रद्धा जाने लगी तो श्रवण ने कहा "श्रद्धा बहिन जरा चाय भिजवा देना।" –फिर मुमुक्षु से बोले– "अच्छा भाई अब बताओ यह तुम्हे क्या हो गया है आजकल ?"

"कुछ भी तो नहीं हुआ मुझे–" मुमुक्षु ने आँखें नीचे झुकाए हुए कहा।

"तो फिर यह क्या लगा रखा है। न घर की फ़िक्र

है न बाहर की चिन्ता। उधर कारो बार की दशा विगड़ रही है, इधर घर के लोग परेशान हैं।"

"चिन्ता करने से ही क्या बना है श्रवण बाबू, सारा जीवन तो बीत गया इन सब की चिन्ता और साल संभाल करते, पर हुआ क्या ? सब व्यर्थ हो गया, बेकार चला गया"– मुमुक्षु ने खोए हुए स्वर में कहा ।

"अरे क्या बहकी बहकी बातें कर रहे हो ?" –श्रवण को मुमुक्षु के हृदय की वेदना का भान हो गया था।

"सच कह रहा हूँ भाई, मुझे अब कुछ अच्छा नहीं लगता। कुछ नहीं सुहाता। इस कदर वेदना है कि मन फटा पड़ता है।" –दुखपूर्ण शब्दों में मुमुक्षु ने कहा।

"मैं जानता हूँ मित्र तुम्हारी वेदना मैं समझ रहा हूँ निवृत्ति तुम्हारे हृदय का टुकड़ा है। उसके दुर्भाग्य का तुम्हें जो सदमा पहुँचा है वह बज्र के आघात से भी बढ़कर है पर मेरे भाई इस दुख को कब तक पकड़ कर बैठे रहोगे। दुख तो भूलने से ही मिटता है।"

"क्या कहा !.. दुख भूलने से मिटता है किसने कह दिया तुम्हे ? यह जो संसार का एक मात्र सत्य है, जो मुझे

चिरन्तन लगा है उस दुख को क्या कोई मिटा सकता है ? और यदि वह भूलने से मिटता भो हो तो जो दुख सर्वव्यापी और शाश्वत है उसे भला कौन और कैसे भुला सकता है ?"

"छे:! छे:! –यह कैसा भ्रम तुम्हे आ उपजा है ? दुख सर्व व्यापो और शाश्वत ?" –श्रवण ने आश्चर्य से कहा– "अरे संसार तो परमेश्वर का रूप है। यदि हम ज्ञान की दृष्टि से देखें तो संसार में दुख कहीं है ही नहीं। दुख का कारण हमारी अपनी समझ है। हम अपनी पसन्द के अनुसार ही संसार को देखना चाहते हैं पर यदि जैसा है वैसा हम पसन्द करें तो संसार में हमें सुख ही सुख दिखेगा। वास्तव में यह सुख, यह आनन्द ही शाश्वत है, स्थायी रहने वाला है।"

"इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है श्रवण बाबू ! तुम व्यर्थ ही मुझे बहलाने का प्रयत्न कर रहे हो। वास्तव में मेरा तो विश्वास दृढ़ हो गया है कि संसार में सुख नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और अगर है तो वह एक कभी न मिटने वाली मृगतृष्णा का हो नाम है।" मित्र तुम व्यर्थ की शंका कुशंकाओं में पड़ गए हो"–श्रवण हँस पड़े, उनका इस प्रकार हँसना मुमुक्षु को निरर्थक ही लगा। नौकर चाय की ट्रे लाकर रख गया। चाय

बनाते हुए श्रवण बाबू ने कहा–" खैर छोड़ो सुख और दुख का द्वन्द ही व्यर्थ है। ये दोनों मानव मन की भावनाएँ मात्र हैं। इसलिए जो होना था वह हो चुका। अब उस पर किसी का वश नहीं। पर अब वर्तमान को संभालो। निवृत्ति का दुख तुम्हारे इस प्रकार दुखी होने से बढ़ेगा ही, कम नहीं होगा।"

"बात केवल निवृत्ति की ही नहीं है श्रवण बाबू।" मुमुक्षु ने बीच में टोक दिया –"निवृत्ति का दुख तो मेरे पहाड़ जैसे दुख में एक कण मात्र है। मैंने तुम्हें पहिले भी अनेक बार बतलाया है कि जाने क्यों मैं इस जीवन से सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरे मन में सदैव एक असन्तोष की भावना व्याप्त रहती है और उसका कारण केवल यही है कि मैं जिस सुख और सन्तोष की खोज में था वह मुझे नहीं मिला। इस संसार को मैंने बहुत निकट से देखा है। यहाँ सुख की खोज में मैंने कौन कौन से प्रयत्न नहीं किए हैं, पर बदले में मुझे मिला है तो बस एकमात्र दुख ही। और आज बेटो निवृत्ति के वैधव्य की दुर्घटना से तो मेरे मनका रहा सहा धैर्य भी जाता रहा।"

"तुम जो कुछ कहते हो वह व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही न।"– श्रवण बाबू ने कुछ सोच कर

कहा –"पर मुझे बतलाओ कि यदि तुम गलत मार्ग पर चलो और तुम्हें लक्ष्य न मिले तो इसका मतलब यह तो नहीं कि लक्ष्य है ही नहीं। संसार में ऐसे लोग भी हैं जो सर्वथा सुखी हैं, सन्तुष्ट हैं।"

"असम्भव! असम्भव! " मुमुक्षु ने दृढ़ता से कहा– "मैं यह नहीं मान सकता। मैं तो कहता हूँ कि इस संसार में सुख एक भ्रम है एक सपना है जो कभी पूरा नहीं होता।"

मेरी समझ में नहीं आता मित्र कि आखिर तुम्हें हो क्या गया है जो व्यर्थ की तर्कनाओं में पड़ गए हो"– श्रवण बाबू ने चाय समाप्त करते हुए कहा।

"हाँ तुम्हें यह व्यर्थ की तर्कनाएं ही लगती होंगी पर श्रवण बाबू मैं भ्रमित हो गया हूँ। मेरे मस्तिष्क में एक झंझा की तरह अनेक शंकाएँ उठ खड़ी हुई हैं, जिनका कोई उत्तर मुझे नहीं सूझ पड़ता है।"

"वे कौन सी शंकाएं हैं जरा सुनूँ तो"– श्रवण ने उत्सुकता से पूछा।

"सुनो तनिक ध्यान से सुनो "–मुमुक्षु ने गम्भीरता

से कहा—"सबसे प्रथम बात तो मेरी समझ में यह नहीं आती कि यह संसार क्या है ? आखिर इसे किसने बनाया है, क्यों बनाया है ? यह भी समझ में नहीं आता है कि हमें जो कुछ दिखलाई देता है वही वास्तविक है, क्योंकि यदि वह वास्तविक है तो उसमें नित्य परिवर्तन क्यों होता रहता है ? जो रूप उसका आज है वह कल नहीं रहेगा। अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व मेरा जामात्र कितना सुखी था, किसी को भी कल्पना न थी कि कल वह न रहेगा। जिस निवृत्ति को एक दिन पूर्व लोग संसार में सबसे अधिक भाग्यशाली मानते थे वह दूसरे दिन ही संसार को सबसे दुर्भाग्यशालिनी कैसे हो गई ?... इसीलिए मैं सोचता हूं कि संसार का बदलता हुआ रूप सही है या अदृश्य हो जाने वाला रूप सही है ? आखिर वास्तविकता क्या है ?"

• •

"अच्छा तो तुम आज कल दार्शनिक बन गए हो।"

"नहीं दार्शनिक तो वह होता है जिसे ज्ञान का दर्शन हो जाता है। मेरे मन में तो बस शंकाएं उठती हैं पर मेरी बुद्धि को उनका समाधान नहीं मिलता।"

श्रवण बाबू गम्भीर हो गए। उन्हें नहीं मालुम था कि मुमुक्षु इतनी गहराई में उतर कर जीवन और संसार

के बिषय में सोचेगें। कुछ विचार कर उन्होंने कहा– "मित्र जब तुम्हारे मन में यह प्रश्न उठे हैं तो अवश्य ही उनका समाधान मिलेगा। मेरे विचार में चिन्तन से ही ऐसे प्रश्नों का उत्तर मिलता है। पर यह चिन्तन अन्धाधुन्ध नहीं होना चाहिए। तर्कयुक्त और युक्तियुक्त चिन्तन से ही सत्य के दर्शन होते हैं, सच्चा समाधान होता है।"

"क्या तुम्हारे मन में कभी ऐंसेप्रश्न नहीं उठते ? क्या तुमने कभी इन बातों का चिन्तन नहीं किया ?"– मुमुक्षु ने जिज्ञासा की।

"चिन्तन किया है मित्र मैं ही क्या हरेक विवेकपूर्ण मनुष्य के मन में कभी न कभी ऐसे विचार आते ही हैं। पर हाँ मैं इनके पीछे नहीं पड़ा। मैंने तो कुछ ग्रंथों में पढ़कर कुछ साधु महात्माओं से सुनकर अपने मन का समाधान कर लिया। पर जाने तुम्हारा उनसे समाधान हो न हो।"

"समाधान का मार्ग तो मिलेगा।" मुमुक्षु ने उत्साह पूर्वक कहा– "कौन से ग्रंथ तुमने पढ़े, कौन से साधु महात्मा का सत्संग किया मुझे बतलाओ ?"

"उपनिषद, गीता और अध्यात्म सम्बन्धी अनेक ग्रंथ हैं पर उनका समझना थोड़ा कठिन ही है हाँ महात्माओं

के मुख से व्याख्या सुनकर सहज समझ में आ जाता है। अपने यहाँ ही एक बड़े पहुँचे हुए महात्माजी हैं।"

"अच्छा कौन से महात्मा ?"

"ज्ञानाश्रम वाले महात्मा निधिध्यासन जी।"

"अच्छा ! क्या तुम उन्हें जानते हो ?"

"हाँ हाँ अच्छी तरह ! उनसे अनेक बार सत्संग भी कर चुका हूँ।"

"पर तुमने मुझे कभी बतलाया नहीं।"

"मुझे लगा तुम्हारा इस ओर झुकाव नहीं। तुम चाहते हो तो चलो एकाध दिन तुम्हें उनसे मिलाए देता हूँ। साधुसंग से आनन्द ही मिलता है।" –श्रवण बाबू ने सोचा चलो किसी प्रकार मुमुक्षु का मन तो बहलेगा।

"एकाध दिन क्यों ? कल प्रातः ही चलो न।" मुमुक्षु ने आतुरता से कहा।

"अच्छा ठीक है, बिल्कुल तड़के ही निकल चलेगें।" श्रवण ने कहा– "अच्छा अब मैं चलूगाँ।" "श्रवण उठकर खड़े हो गए।

"अच्छा मैं तैयार मिलूँगा।" मुमुक्षु ने कहा।

"क्यों साहब क्या हमें दरवाजे तक पहुँचाने भी नहीं चलोगे।" श्रवण ने सहज ही कहा। वे मुमुक्षु को उस मनहूस कमरे से निकालना चाहते थे।

"हाँ हाँ क्यों।"– मुमुक्षु के मुख पर मुस्कुराहट आ गई। वे उठकर श्रवण के साथ साथ कक्ष से बाहर निकले। बाहर ड्राइंग हाल में कुलवती प्रतीक्षा कर रही थी। जब मुमुक्षु को श्रवण बाबू के साथ प्रसन्न मुद्रा में आते देखा तो उसका मन समाधान से भर उठा।

आते ही श्रवण ने कहा– "भाभीजी कल सुबह हम लोग ज्ञानाश्रम जाएँगे। मैं इन्हें लेने आऊँगा। सो आप इन्हे तैयार रखना।"

"अरे ये क्या तैयार रखेगी श्रवण बाबू हम स्वयं तैयार मिलेगें।" मुमुक्षु ने हँसकर पत्नी को छेड़ा।

कुलवती के मन का भार एक दम हलका हो गया, उसने श्रवण बाबू की ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखते हुए कोमल स्वर में कहा–"हाँ श्रवण भाई! तुमारे भैया तो मेरे से पहिले जाग जाते हैं।"

"भाई जिन्हें रात को नींद ही नहीं आती उनके लिए जगने जगाने का प्रश्न ही क्या है?"– मुमुक्षु ने द्वार तक श्रवण बाबू को छोड़ते हुए कहा।

जब वापिस लौटे तो कुलवती ने सहमते हुए पूछा– "आज भोजन?"

"कमरे में ही भिजवा देना।"–मुमुक्षु ने अपने कक्ष की ओर जाते जाते कहा।

"मैं सोचती थी कि यदि आज सबके साथ खाना रसोई में ही खा लेते तो अच्छा रहता।"

मुमुक्षु ने रुक कर कुलवती को ओर देखा। कुलवती की भोली आँखों में स्नेह पूर्ण निवेदन था, एक अव्यक्त आगृह था। मुमुक्षु ने धीरे से कहा –"अच्छा"– और फिर मुड़ गए।

कुलवती के मन का दुख कुछ और हलका हो गया।

६

दिशाएं लालिमा से भर उठी थीं। शुभ्र आकाश में पक्षियों के झुँड के झुंड मधूर उषागान करते हुए उड़ाने भर रहे थे। चारों ओर दूर दूर तक फैले शस्य श्याम वन और क्षितिज को छूती हुई ऊंची ऊंची पर्वत श्रेणियों की पंक्तियाँ प्रभात के नवीन प्रकाश में विहंसती सी प्रतीत हो रही थीं। हरे भरे वन्य प्रदेश के मध्य रेखा सी खिची हुई टेड़ी मेड़ी सड़क ऐसी लगती थी जैसे वनदेवी की सजी संवरी मांग हो। सड़क पर एक छोटी सी काले रंग की कार दौड़ी जा रही थी।

कार में बैठे मुमुक्षु और श्रवग बाबू प्रभात के सुरम्य दृश्य का आंनन्द लेते हुए चले जा रहे थे। वन की मनोहारी छटा देखते देखते मुमुक्षु के मन में वेदना की टीस हल्की पड़ती जा रही थी। सृष्टी का सौन्दर्य उन्हें बड़ा ही सुखकारी लग रहा था। उन्हें लगा कि वे इस वातावरण में रम जाएं – एकाकार हो जाएं।

जब सूर्योदय हो रहा था, वे लोग ज्ञानाश्रम पहुंच गए। ज्ञानाश्रम दो छोटी सुन्दर पहाड़ियों की घाटी के

मध्य स्थित था, पास ही पहाड़ी से गिरता हुआ झरना था जो नीचे चलकर एक पुष्करणी में बदल जाता था। एक छोटे उपवन के मध्य, सुहावने छायादार वृक्षों से घिरे हुए घास–पूस के बने हुए चार पांच छोटे कुटीर थे। कार उपवन के द्वार पर ही रुक गई। मुमुक्षु और श्रवण बाबू ने आश्रम में प्रवेश किया। भाँति भाँति के सुगन्धित पुष्पों वाले वृक्षों से युक्त उस छोटे से उपवन की छटा बड़ी निराली थी। जूही और चमेली की महक से वहां का वायु मण्डल सुवासित था।

सामने एक विशाल वट वृक्ष था, जिसके नीचे सुन्दर चबूतरा बना हुआ था। उस चबूतरे पर एक स्वच्छ मृग चर्म बिछा हुआ था, कुछ ग्रंथ रखे हुए थे, जिन पर पुष्प चढ़े हुए थे। श्रवण बाबू ने बतलाया कि प्रातःकालीन ध्यान के पश्चात महात्मा जी उस वृक्ष के नीचे आकर ही बैठते हैं। अभी उनके आने में विलम्ब था, इसलिए वे प्रतीक्षा करते हुए वहीं ठहर गए। महात्मा जो के एक शिष्य ने उनका स्वागत किया और बैठने के लिए वहीं आसन बिछा दिए।

"आहा कैसा मनोरम स्थान है।"– मुमुक्षु ने बैठते हुए कहा, उन्हें वहां बड़ा भला लग रहा था –"जिस स्थान

के दर्शन मात्र से मनको शान्ति का अनुभव हो रहा है वहां रहने वाला तो शान्ति का अनुभव करता ही होगा।

"मैंने तो कहा ही था।"– श्रवण बाबू ने मुस्कुरा कर कहा।

तभी महात्मा जी की खड़ाऊंओं की ध्वनि कान में पड़ी। भगवे परिधान से युक्त, मध्यम ऊँचाई के, संपुष्ट शरीर वाले महात्मा निधिध्यासन जो मंथर गति से चले आ रहे थे। उनके मुख पर एक अपूर्व तेज विद्यमान था। विशाल ललाट, दीर्घ नासिका, भौंहें कुछ तनी हुई जैसे ध्यान मग्न हों, मुख पर सहज प्रसन्नता। दोनों ने उठकर महात्मा जी का स्वागत करते हुए नमस्कार किया।

महात्मा जी ने आसन ग्रहण करते हुए उन्हें बैठने का इशारा किया और कहा –"ओ हो श्रवण बाबू ! आपका कल्याण हो। भला बहुत समय बाद पधारे इधर।"

"स्वामी जी तनिक व्यस्तता अधिक रही। आज भी आना न हो पाता पर मेरे मित्र के मन में आपके दर्शनों की जिज्ञासा हुई सो श्री चरणों के दर्शनों का सौभाग्य बन पाया।"– श्रवण बाबू ने नम्रता से कहा।

"तब तो धन्यवाद के पात्र आपके यह मित्र हैं।"–मुस्कुराकर महात्मा जी ने कहा और मुमुक्षु की ओर देखा।

"आप मुमुक्षुराम आत्माराम चक्र साइकिल वाले हैं–" श्रवण बाबू ने मुमुक्षु का परिचय दिया– "मेरे परम मित्रों में हैं। अभी इनके परिवार में एक बड़ी दुर्घटना घटी, इनकी इकलौती पुत्री–

"हाँ मुझे ज्ञात है" –स्वामी जो बोल उठे, उनके मुख पर सहज सहानुभूति व्याप्त हो गई, बोले– "इनके विषय में सुन चुका हूँ। बड़ी हृदयविदारक घटना घट गई।"

"हाँ स्वामी जी।" –श्रवण बाबू ने कहा– "उस दुर्घटना का इतना गहरा धक्का इनके मनको लगा है कि जोवन के प्रति इनकी सारो धारणाएँ ही बदल गई हैं। सभी मान्यताएँ छिन्न भिन्न हो गई हैं।"

"स्वाभाविक ही है।" –स्वामी जी ने मुमुक्षु की ओर स्थिर नेत्रों से देखते हुए कहा– "विपत्तियाँ ही मानव जीवन में सत्य के अनुसंधान की प्रेरणा देती हैं। बहुत अशान्त दिखलाई देते हैं आप ?"

"जी हाँ स्वामी जी। मेरे मन में इस जीवन के प्रति अनेक शंकाएँ उत्पन्न हो गई हैं। उनका समाधान कैसे

हो ? कुछ सूझ नहीं पड़ रहा है।" मुमुक्षु ने अपनी आकुलता व्यक्त की।

"पड़ेगा, अवश्य सूझ पड़ेगा। यदि शंकाएँ हैं तो उनका समाधान भी है। क्या नाम बतलाया आपका ?"

"जी मुझे मुनुक्षु कहते हैं।"

"आहा मुमुक्षु ! कितना अर्थ पूर्ण नाम है। जानते हैं इसका क्या अर्थ होता है ?"

"मुमुक्षु का अर्थ तो होता है मोक्ष का इच्छुक पर स्वामी जी यह तो मेरा केवल नाम है।"

"क्या कोई शब्द नाम होने से अपना अर्थ खो देता है ?" –महात्मा निधिध्यासन जी ने मुस्कुरा कर कहा–" नहीं नाम से ही गुण वनते हैं और गुणों से हो नाम। तुम्हारा नाम मुमुक्षु है। इसलिए तुम्हारे मन में इस संसार की जटिलता के प्रति शंकाएँ उत्पन्न हुई हैं। यह शंकायें, यह कौतुहल हो मनुष्य में जिज्ञासा उत्पन्न करता है। जिज्ञासा से मनन होता है और मनन के द्वारा होते हैं सत्यके दर्शन। वह सत्य जो मोक्ष का मूल कारण है। इसलिए तुम वास्तव में ही मुमुक्षु हो– अपनी मुमुक्षता के लिए प्रयत्न शील हो।"– महात्मा के होंठों पर मुस्कुराहट फैल गई। मुमुक्षु भावना विभोर

होकर श्रद्धा से महात्मा की ओर देख रहे थे, कुछ रुककर महात्मा ने मृदुल शब्दों में कहा–"संसार में दुर्लभ कुछ भी नहीं है। तुम जो चाहते हो वह मिलेगा! अवश्य मिलेगा। नित्य निरन्तर अविरल भाव से प्रयत्न करते रहो। अपने लक्ष्य को कभी न भूलो और सत्य असत्य का अन्वेषण करते रहो। सत्य असत्य का विवेककर सत्य पथ पर चलो।"

"आपकी कृपा होगी तो मुझे सत्य के दर्शन होंगे।"–मुमुक्षु ने श्रद्धा पूर्वक कहा। उन्हें महात्मा के वचनों में आस्था हो चली थी।

"होता तो सब कुछ ईश्वर कृपा से ही है, पर साधुसंग सत्य दर्शन में सहयोग देता है।"– महात्मा ने कहा

"महात्माओं के अनुभव और चिन्तन से सही दिशा का भान तो होता ही है न ?"– मुमुक्षु ने प्रश्न किया, वे समझ रहे थे कि महात्मा इशारे ही इशारे में उन्हें गूढ़ ज्ञान का रहस्य बतला रहे हैं।

"हाँ यह सम्भव है"– महात्मा जी ने प्रसन्न होकर कहा–"यह हम नहीं कह सकते कि पूर्व सत्य हमारी दृष्टि में क्या हो सकता है और उसे जानने के लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए ?"

"बस बस मैं यही जानना चाहता हूँ स्वामी जी, कि मुझे

सत्य के दर्शन कैसे होंगे ?"– मुमुक्षु ने अपना प्रश्न स्पष्ट किया।

"दर्शन कैसे होंगे ?... ठीक ही प्रश्न किया ! प्रथम यह समझना चाहिए कि दर्शन क्या है ? दर्शन कहते हैं देखने को, अब देखना अनेक प्रकार का होता है। एक प्रकार का देखना इन्द्रियानुभूति से होता है, जैसे आँख से देख कर, नाक से सूँघ कर, रसना से चखकर या त्वचा से स्पर्श कर। दूसरा देखना होता है बुद्धि से जानकर। अब इन्द्रियों की अनुभूति पर तो भ्रम का पर्दा पड़ सकता है और इसीलिए यह सम्भव है कि इनकी अपनी सीमाओं के कारण वस्तु के सच्चे ज्ञान के सम्बन्ध में व्यभिचार हो जाए, भ्रम हो जाए क्योंकि आँख केवल देख सकती है, नाक केवल सूँघ सकती है और रसना केवल चख सकती है। किसी भी इन्द्री का ज्ञान सर्वांग सम्पूर्ण नहीं है। बुद्धि भी स्वतः सत्य का दर्शन नहीं कर सकती। साधन अभ्यास के द्वारा शुद्ध हुई बुद्धि में अनुभवी सत्पुरुषों के बतलाए हुए उपदेश से ही वास्तविक सत्य का दर्शन होता है।

"दर्शन की व्याख्या सुनकर तो कृतार्थ हुआ स्वामी जी, पर जिसके दर्शन करना है, वह ज्ञान क्या है ?"– मुमुक्षु ने पूछा

"सत्य को जानना ही ज्ञान है, अर्थात जो ज्ञान है सो सत्य है सत्य है सो ज्ञान है। सत्य और ज्ञान में अन्तर नहीं है। एक मानेमें कहें तो यह ज्ञान ही परमेश्वर है और यही हमारा लक्ष्य है? इसके मिलते ही हमारो सभो शंकाओं का समाधान हो जाता है, आत्मा को सच्चा सन्तोष मिलता है। इसी को हमारे शास्त्र मोक्ष कहते हैं, अतः मोक्ष जब भी होगा ज्ञान से ही होगा। बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हो सकता। प्रकृति पुरुष से अलग है, यह भेद ज्ञान है पर भेद ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। वह विवेक का हेतु है। विवेक से सत्य दर्शन की योग्यता आती है। यह ज्ञान केवल मनुष्य ही पा सकता है।"

"पर ज्ञान का स्वरूप क्या है?"– मुमुक्षु नें प्रश्न किया

"ज्ञान अविनाशी है, अद्वितीय है, परिपूर्ण बृह्म है, स्वयं प्रकाश है। ज्ञान में अपने पराए का भेद नहीं है, जीव और ईश्वर का भेद नहीं है, जगद् और ईश्वर का भेद नहीं है। यह ज्ञान स्वरूप आत्मा, जीव स्वरूप महात्मा हो या मच्छर सभी में एक सा ही है। ज्ञान, देश काल वस्तु और अवस्था के घेरे में नहीं हैं। वह दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित नहीं है। वह अलुप्त है, जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्त तीनों ही अवस्थाओं का प्रकाशक है

और तीनों से असंग है। यह ज्ञान ही समस्त देश, काल, वस्तुओं के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इस ज्ञान को और अधिक दृढ़ करने के लिए सत्पुरुषों की सेवा, सत्संग और उपनिषदों का स्वाध्याय कीजिए।

"स्वामी जी! मुझे कोई ऐसा सरल मार्ग बतलाइए कि जिस पर चलकर मुझे शीघ्र ही अनुभवात्मक ज्ञान को प्राप्ति हो तथा मेरा मन परम शांति को प्राप्त हो।"

महात्मा निधिध्यासन जी विचार मग्न हो गए, फिर गम्भीर वाणी में बोले –"ज्ञान को प्राप्ति कठिन नहीं है। वास्तव में यह साधक की अपनी जिज्ञासा की तीव्रता और साधन पर हो निर्भर रहती है। हाँ शास्त्रों के साथ साथ श्रवण, मनन और निधिध्यासन करने से सत्य ज्ञान की अनुभूति कहीं अधिक शीघ्र और सरलता से हो जाती है। आवश्यकता है तो इसी बात की कि एक सच्चे जिज्ञासु की भाँति निस्पक्ष रूप से संसार और जीवन को देखो जो देखो उसे सही अर्थों में समझने के लिए उसका चिन्तन करो। उसकी गूढ़ वास्तविकता जानने के लिए उसका मनन करो। श्रवण और मनन तथ्यों के मंथन की, सत्य का नवनीत निकालने की दो विशेष क्रियाएं हैं। मनुष्य ही इन प्रक्रियाओं को कर सकता है इसलिए वह अन्य प्राणियों

से ऊँचा है। उसकी यही दो विशेषताएँ उसे सत्य ज्ञान का दर्शन कराती हैं और मुक्ति के मार्ग पर चलाती हैं। अतः श्रवण, मनन और निधिध्यासन द्वारा सतत अभ्यास करते रहो, शोघ्र हो तुम्हें सफलता मिलेगी।"

मुमुक्षु की व्याकुलता हट गई, एक नवोन मार्ग उनके सामने प्रशस्त हुआ–"मैं धन्य हुआ महात्मा जी ! परमेश्वर की कृपा से अवश्य ही मेरे सामने ज्ञान का रहस्य प्रकट होगा।".

महात्मा जी ने मधुर वाणी में कहा –"हाँ मुमुक्षु जी ! यह प्रसन्नता की ही बात है कि तुम्हारे मन में सत्य की खोज की भावना जन्मी है। निश्चय ही पूर्वजन्म के भाग्योदय और ईश्वर की कृपा से ऐसा होता है अन्यथा मनुष्य बारम्बार जन्म लेता और बार बार मरता है, जोवन – मरण के इस चक्र में भूलता –भटकता रहता है पर बुद्धि पर माया का जो परदा पड़ा है वह हटता नहीं। जिसकी बुद्धि से माया,–मोह, ममता आदि का भ्रम मिट जाता है, उसे ही निर्मल ज्ञान की कामना उत्पन्न होती है। शास्त्रों के अध्ययन के साथ साथ उनका सार समझने के लिए साधुसंग की भी आवश्यता होती है। इसके अतिरिक्त जब तक बाह्य संसार का रूप न जाना जाए तब तक

अन्तर के पट नहीं खुलते । अतः बाह्य संसार और जीवन को निकट से और गहराई से देखो...पर केवल दर्शक की हैसियत से, अलग बने रहकर । तुम दृश्य के पात्र न बनों ।

"तो स्वामी जी बाह्य संसार का रूप देखने के लिए क्या भ्रमण करना चाहिए ?"– मुमुक्षु ने पूछा

"हाँ किया जा सकता है, पर यह भ्रमण यदि सत्य की खोज के लिए होगा तो सत्यार्थी बनकर निकलो । जब मनुष्य सत्यार्थी बनता है तो उसे राग, द्वेष, मोह, ममता, क्रोध और अहंकार आदि दुर्भावनाओं का त्याग कर देना चाहिए ।"

"उचित है स्वामी जी ! पर यह बतलाइये भ्रमण के लिए कहाँ जाना उचित होगा ?"

"ऐसा भ्रप्रण कहीं भो हो सकता है । सम्पूर्ण जगत में एक ही तत्व व्याप्त है सो एक सा ही अनुभव हर जगह प्राप्त होगा, किन्तु हाँ यह हो सकता है कि एक पंथ दो काज हो जाएँ । तोर्थ यात्रा का लक्ष्य लेकर जो भ्रमण होता है उसमें यह दोनों बातें सट जाती हैं । पद्म पुराण में तोर्थ यात्रा के विषय में यह कहा गया है कि "भगवत्प्राप्ति, जो

मनुष्य जावन का प्रधान उद्देश्य और एकमात्र परम लाभ है, काम लोभ से रहित साधु संग से होती है और साधु मिलते हैं तीर्थों में ।" महात्मा निधिध्यासन जी क्षण भर के लिए मौन हो गये फिर बोले – "मेरी शुभ कामना है कि तुम्हें उस परम तत्व के दर्शन हों ।"

"मै कृतार्थ हुआ स्वामी जी । आप जैसे महान आत्मा के दर्शन बड़े पुण्य से प्राप्त होते हैं । आपने मुझे जो मार्ग दिखलाया है उसी से मेरे मन का आधा समाधान हो गया ।"– मुमुक्षु श्रद्धा से महात्मा जी के चरणों में नत हो गए । मित्र को सन्तुष्ट देखकर श्रवण बाबू का मन भी आनन्दित हो उठा ।

दोनों मित्र महात्मा जी से विदा लेकर प्रसन्न वापिस लौटे ।



मुमुक्षु सारी रात अपने प्रवास के विषय में ही सोचते रहे। महात्मा निधिध्यासन जी के उपदेश ने उनके समक्ष ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। संसार की वास्तविकता को अपनी आँखों से देखने की एक उत्सुकता उनके मन में जागृत हो गई थी और उसका उपाय यही था कि वे घूम फिर कर, यात्रा कर इस संसार को निकट से देखें परखें। पर यह यात्रा कैसी

''हो ? ... महात्मा निधिध्यासन जी ने कहा था कि यह सत्यार्थी की तरह हो, राग, द्वेष, मोह, ममता, क्रोध और अहंकार आदि का त्याग करके हो ऐसे प्रवास पर जाना चाहिए। ... इसका तात्पर्य यह हुआ कि घर द्वार, सभी परिवार और कारोबार सबकी चिन्ता से मुक्त होकर ही इस शुभ यात्रा का प्रारंभ हो।

"पर ... "– मुमुक्षु ने सोचा –" पर मेरे अभाव में प्रिय पुत्री निवृत्ति का क्या होगा ? पत्नी कुलवती को कौन धीरज बँधाएगा ? इतनी कठिनाइयों और परिश्रम से जगाए कारोबार की क्या स्थिति होगी ? ... ओह

यह कैसा मोह है ?" – मुमुक्षु के ज्ञान ने कुरेदा–" यह सारी भौतिक वस्तुएँ जो मुझे इतनी प्रिय हैं मुझे सुख देने में असफल रही हैं। मुझे अपने अभाव में इनकी चिन्ता है पर यदि कल अचानक मेरी मृत्यु हो जाए तो ... सब कुछ ऐसा ही छूट जाएगा तब इनका क्या होगा ? क्या ये मिट जाएगीं ? ... नहीं यह सब कुछ यूँही चलता रहेगा। मैं होऊँ अथवा नहीं ... तब स्वेच्छा से यह सब छोड़ कर जाना और देखना कि मेरे पीछे इनका क्या होता है ... अन्यथा न होगा। "–और मुमुक्षु ने निश्चय कर लिया कि वे चले जाएगें, एक दम उन्मुक्त होकर,यहाँ के सारे बंधन तोड़ कर ! अपने प्रवास काल में वे यहाँ से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगें। बिलकुल अज्ञात रहकर होगी, उनकी यह यात्रा !

प्रात: चाय की टेबिल पर मुमुक्षुराम को सदैव की तरह देखकर कुलवती को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने चाय बनाते हुए मुमुक्षु से पूछा–" आज आप आफिस जाएगें ?

हां।"– मुमुक्षु ने संक्षेप में कहा। वे सोच रहे थे कि किस प्रकार अपना निर्णय पत्नी को सुनाएं ? आखिर धीरे से बोले –,, निवृत्ति की माँ! मैं कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ।"

"कहाँ ?"– कुलवती ने आश्चर्य से पूछा ।

"अभी कुछ निश्चय नहीं, पर मैं कहीं जाना चाहता हूं ।"

"तो चलिए किसी–हिल स्टेशन पर कुछ दिनों के लिए हो आएँ ।"– कुलवती को लगा मुमुक्षु अपने ऊबे हुए मन को बहलाने के लिए काम से अवकाश चाहते हैं ।

"न ? हिल स्टेशन पर नहीं "–मुमुक्षु ने स्पष्ट कह देना ही उचित समझा, बोले –"मैं बिल्कुल अनिश्चित रूप से बिना कुछ तय किए हुए यह यात्रा करना चाहता हूँ ।... और सुनो मैं बिल्कुल अकेला ही जाना चाहूँगा ।'

"अकेले क्यों ? मैं आपके साथ चलूँगीं ।" कुलवती ने अधिकार पूर्वक कहा

"नहीं तुम मेरे साथ नहीं चलोगी । यहां रहकर निवृत्ति की देख भाल करोगी ।"

"पर निवृत्ति को भी साथ ले लेगें ।–" कुलवती ने भोलेपन से कहा –"उसका भी मन बहल जाएगा ।"

"मैंने कहा न निवृत्ति की माँ कि मैं, अकेला जाना

चाहता हूँ। मेरे साथ कोई नहीं जाएगा और इतना ही नहीं जब तक मैं बाहर रहूँगा बिल्कुल अज्ञात रहूँगा। घर से पत्र व्यवहार भी नहीं रहेगा।"– मुमुक्षु ने हृदय कड़ा कर अपना निश्चय अन्ततः सुना ही डाला।

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"– कुलवती ने आश्चर्य से चौंक कर कहा।

"मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूं यह यात्रा मैं अपने आत्म संशोधन के लिए कर रहा हूँ इसलिए कुछ दिनों के लिए बिल्कुल अज्ञात होकर इस संसार में भटकना चाहता हूं।"

कुलवती को जैसे विश्वास नहीं हुआ, कुछ देर तक वह विमूढ़ सी मुमुक्षुराम को देखती रही फिर दुख भरे शब्दों में बोली –"आपको क्या हो गया है ? आजकल आपकी सारी बातें अजीब सी हो गई हैं ? उधर निवृत्ति का मन ठिकाने नहीं आया है दिन रात गुमसुम रहती और इधर आपकी यह स्थिति है। मै क्या करूँ ? कहां जाऊँ ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।" कुलवती की आंखों से टपाटप आंसू गिरने लगे।

"हाँ तुम रो सकती हो निवृत्ति की माँ ! रोने से

तुम्हारा दिल हलका हो सकता है; पर मैं तो रो भी नहीं सकता । रोने से तो मेरा दुख कम भी नहीं होगा। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि कुछ दिन के लिए अपने आप मे भी भाग जाऊँ ।"

कुलवती की सिसकियाँ बढ़ गई, तभी श्रद्धा वहाँ आ गई । वह पूजा करके वापिस लौटी थी । श्रद्धा को रोता देखकर वह बोली --"क्या हुआ भाभी ! तुम क्यों रो रही हो ?"

"देख श्रद्धा तेरे भैया हम सब को छोड़कर जाने कहां जाना चाहते हैं ।"– रोते रोते कुलवती ने कहा

"कहां जाना चाहते हो भैया ?"– कुलवती ने चौंक कर पूछा

• •

"मैं कोई हमेशा के लिए थोड़े ही जा रहा हूँ श्रद्धा"–मुमुक्षु ने हड़बड़ा कर कहा, वे श्रद्धा को तनिक भी ठेस नहीं पहुँचा सकते थे, बोले –"मैं तो बस थोड़ा भ्रमण के लिए जाना चाहता हूं ! तीर्थ – यात्रा पर ।"

"हाँ कहते हैं तीर्थ यात्रा ।" कुलवती ने बीच में कहा– "जरा पूछ तो कि कौन से तीर्थ जाना चाहते हैं ?

तोर्थ ही जाना हैं, तो हम लोगों को साथ क्यों नहीं ले जाना चाहते ?"

"ओह हो ! श्रद्धा तू समझा न इन्हें ! इन्हें नहीं मालुम कि कभी कभी मनुष्य का मन आजीब हो उठता है। उसका चैन, उसकी शान्ति लुट जाती है, तब वह अकेलापन चाहता है। अपने आपको संभालने के लिए उसे कुछ समय चाहिए।"

"इतने दिनों का अपने कमरे का एकान्तवास क्या काफी नहीं हुआ–" कुलवती ने व्याकुलता से कहा।
"नहीं हुआ इसीलिए तो मैं जा रहा हूँ और चाहता हूँ कि तुम मुझे न रोको।"

"मैं रोकतो कहाँ हूँ। मैं तो तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ। भला अपनों से कोई दूर भागता है ?"
"तुम नहीं समझोगी।"– मुमुक्षु ने अशान्त होंकर कहा–"श्रद्धा ! इन्हें समझा। मैं रुक नहीं सकता, कल की गाड़ी से चला जाऊँगा।"

"कहाँ जाओगे भैया, कुछ तो बतलाओ।" श्रद्धा ने पूछा।

"सुना है भ्रमण से मन हल्का हो जाता है, इसलिए मैं बिल्कुल उन्मुक्त बनकर यात्रा करना चाहता हूँ। एक बार जाकर देखना चाहता हूँ कि यह दुनिया कैसी है, इसमें कितना दुख है, कितना सुख है। कुछ दिनों के लिए जाना चाहता हूँ, स्वयं अपने आपको भूल जाना चाहता हूँ। इसीलिए भ्रमण काल में मैं तुम लोगों से पत्र व्यवहार भी नहीं करूँगा।"

यह कैसो कल्पना है भैया ?"– श्रद्धा ने घबड़ाकर कहा–" कम से कम हमें तुम्हारा पता तो होना चाहिए। कहीं कोई बात हुई तो तुम्हें–

"तो उसे तुम लोग सुलझा लेना–"मुमुक्षु ने उतावली से कहा –" समझो कि कुछ दिनों के लिए मैं हूँ नहीं।"

"ऐसी वात क्यों करते हो भैया। घर में हम सभी दुखियारी स्त्रियाँ, क्या तुम्हारे बिना रह सकती हैं ?"

"श्रद्धा मेरी प्यारी बहिन"– मुमुक्षु ने बड़े स्नेह से कहा–"संसार में सब कुछ हो सकता है। मन में शान्ति रखो अपने आप पर विश्वास रखो तो सब हो सकता है। तुम जानती हो मैं कितना दुखी हूँ। आज अपना दुख कम करने का मुझे एक मार्ग मिला है तो मुझे उसपर जाने से मत रोको।"

"हम लोग तो हमेशा तुम्हारा भला ही चाहते हैं भैया।"–श्रद्धा ने स्नेह से कहा ।

"इसोलिए श्रद्धा ! इसीलिए मुझे जाने दो। तुम अपनी भाभो को समझाओ। मैं निवृत्ति से मिलता हूँ फिर मुझे आफिस जाना है।"– उठते हुए मुमुक्षु ने कहा–"कल मैं निश्चित चला जाऊँगा।"

मुमुक्षु के जाने के बाद श्रद्धा ने कुलवती से कहा– भाभी दुख करने से क्या होगा। भैया ने एक बार जब जाने का निश्चय कर लिया है तो वे जाएगें। उन्हें कोई रोक नहीं सकता ; इसीलिए व्यर्थ रोकना भी ठीक नहीं। फिर वे हमेशा के लिए थोड़े ही जा रहे हैं।"

"इसीलिए श्रद्धा ! इसीलिए मेरा मन घबरा रहा है। तुझे मालुम है कल ये ज्ञानाश्रम वाले महात्मा से मिलने गए थे। इन साधु–महात्मा लोगों का कोई ठिकाना नहीं। जाने कैसी पट्टी पढ़ा दें। अजीब सी बात है कि तेरे भैया जा रहे हैं तो न तो यह बतलाते कि कहाँ जा रहे हैं और न यह बतलाते कि कब लौटेंगे।"

"कहते तो थे कि थोड़े दिनों के लिए जा रहा हूँ"

"थोड़े दिन का क्या मतलब होता है बहिन ! मुझे

तो रह रह कर आशंका होती है कि ये कुछ छिपा रहे हैं। कहीं इस तरह वे सन्यास तो नहीं ले रहे हैं।"

"न ! न ! भैया ऐसे नहीं है। उन्हें यदि सन्यास लेना होता तो वे साफ साफ कह देते। तुम क्या उनका स्वभाव नहीं जानतीं भाभी ?"

"स्वभाव तो जानती हूँ, पर. जाने क्यो आजकल उनकी सभी बातें स्वभाव के विपरीत हो चली हैं। बड़े से बड़े दुख को हँसकर झेल लेने वाले, दूसरों को विपद् में धीरज बन्धाने वाले तुम्हारे भैया का मन आज ऐसा निर्बल हो गया है कि घबराहट में क्या कर बैठें, किसे मालुम ?"

"न ! न ! भाभो ऐसी शंका – कुशंका न करो। भैया ने सदा कठिंनाइयों और तकलीफों का धैर्य पूर्वक सामना किया है। वे जो करेगें ठीक ही करेगें। हमें तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। बस हमें तो यह देखना है कि उनके मन को काहे में शान्ति मिलती है ? उनके सुख में हमारा सुख है भाभी।"

"हाँ सो तो है ही।"– कुलवती ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा –"पर जाने क्यों मेरा मन शान्त

नहीं है। देख श्रद्धा इतनी धन सम्पदा देकर भगवान किसी को दुखी न बनाए। मुझ अभागिन का जीवन तो देख– किन अरमानों से मैंने इस गृहस्थी को सजाया था पर हाय मै निपूती ही रही । बेटी हुई तो उसका भाग्य इस तरह फूट गया। बेचारी का दुख संभल ही नहीं पा रहा है और अब ये हैं कि इस तरह छोड़कर कहीं चले जा रहे हैं।"– कुलवती का गला भर आया और आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

रोओ मत भाभो। तनिक मेरी ओर देखो"– श्रद्धा ने अत्यन्त करुणा से कहा "–मैं जिसने अपने जनम–जिन्दगी में बस दुख ही दुख को जाना है। पर समय के साथ धीरज आ ही जाता है। भाभी दुख का यह घाव भी भर जाएगा । धीरज रखो और भगवान पर भरोसा–धीरे धीरे सब ठीक हो जाएगा।"– श्रद्धा ने भाभी के आँसू पोंछे पर भाभो के धीरज का बाँध टूट-टूट जा रहा था।



आज बहुत दिनों के पश्चात मुमुक्षुराम अपने कारखाने आए थे। मैनेजर कौशल कुमार ने उनका स्वागत किया।

कौशल जो ! आज हम कारखाना देखना चाहते हैं।" मुमुक्षु ने अपनी इच्छा व्यक्त की।

"जी बहुत ठीक ! आप जरा रुकिए, मैं आपके आने की कारखाने में सूचना कर दूँ।" –कौशल ने फोन उठाया।

"न! न! सूचना की जरूरत नहीं है, हम ऐसे ही चलेगें।" मुमुक्षु ने कहा। वे कारखाने में काम करने वाले अपने मजदूरों की दशा बिना सूचना के ही अकस्मात देखना चाहते थे।

"अच्छा जो।"– कौशल ने आश्चर्य से सेठजी की ओर देखते हुए फोन रख दिया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात है जो आज मुमुक्षुराम इस प्रकार अकस्मात आए हैं और बिना सूचना दिए कारखाना देखना चाहते हैं। चक्र-साइकिल का कारखाना प्रारंभ

हुए आज १२ साल बीत गए थे। तब नवयुवक कौशल विदेश से टेकनीकल शिक्षा लेकर वापिस आया था। साइकिल का कारखाना चलाने की उसकी अपनी धुन थी पर उसके पास न पूँजी थी और न साधन। एक दिन अकस्मात उसकी मुमुक्षुराम से मुलाकात हो गई। उसने उन्हे अपनी योजना बतलाई। मुमुक्षुराम तब किसी अच्छे उद्योग की तलाश में थे, उन्हे कौशल की योजना पसन्द आई और वे कारखाना डालने को तैयार हो गए।

कारखाना प्रारंभ हुआ, धीरे धीरे व्यवसाय जमा और देश भर में चक्र–साइकिल प्रसिद्ध हो गई। इस सारे कार्य का श्रेय कौशल को ही था। मुमुक्षुराम का उस पर इतना अधिक विश्वास था कि पिछले १२ वर्षो में शायद ही कभी ऐसा समय आया हो जब उन्हों ने कारखाने का निरीक्षण किया हो। इसीलिए कौशल को आज की घटना पर आश्चर्य था। मुमुक्षुराम उसके मन की बात को ताड़ गये हँसकर बोले–" कौशल जी मैं जो आज कारखाना देखने आया हूँ इसका कुछ और अर्थ न लगा लेना। मैं तो बस यह देखना चाहता हूँ कि अपने कारखाने के मजदूरों की मनोवृत्ति क्या है ?"

"अवश्य देखिएगा। आइए मै आपको दिखलाता हूँ।" कौशल ने समझते हुए कहा।

"पर आप मेरे साथ न आइए, किसी कर्मचारी को मेरे साथ कर दीजिए ताकि श्रमिक मुझे पहिचान न सकें और मैं उन्हें उनकी सामान्य स्थिति में देख सकूँ।" मुमुक्षु को कारखाने के बहुत कम लोग पहिचानते थे।

"जी ठीक है।" –कौशल ने एक फोरमेन को बुलाया और मुमुक्षु के साथ कर दिया

कारखाने में माडलिंग से लेकर कास्टिंग, मोल्डिंग एसेम्बलिंग इत्यादि अनेक विभाग थे। कारखाने की अधिकांश क्रियाएं स्वचलित यंत्रों द्वारा होती थीं। फोरमेन मुमुक्षु को कार्य की सारी व्यवस्था बतलाता और समझाता जा रहा था। अधिकांश श्रमिक तो मुमुक्षुराम का केवल नाम ही जानते थे, शक्ल से उन्हें देखा तक न था। मुमुक्षु ने इस बात का लाभ उठाया। श्रमिक उन्हें एक साम्मान्य दर्शक समझ कर कोई महत्व नहीं दे रहे थे। कारखाने में काम करते हुए अधिकांश श्रमिक अत्यधिक व्यस्त दिखलाई दिए। वे अपने काम के साथ बिल्कुल एकाग्र थे। कारखाने की घर्र–घर्र की ध्वनि मुमुक्षु के

कानों को बड़ो अटपटी लग रही थी पर श्रमिकों के लिए जैसे वह आवाज थी ही नहीं। जब मुमुक्षु मोल्डिंग विभाग में पहुँचे तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि वहाँ श्रमिक कैसे काम करते होंगे ! वह स्थान इतना अधिक गर्म था कि वहाँ ठहरना कठिन हो गया। उन्होंने वहाँ काम करते हुए एक श्रमिक से पूछा—"आप लोग इतनी गर्मी में कैसे काम करते हैं ?"

श्रमिक ने अपनी अधमिची आँखों से सेठ को देखा फिर अपनी फटी हुई आवाज में बोला—"सेठ यह कारखाना है कारखाना। यहाँ खून पसीना एक करना पड़ता है, तब पैसा मिलता है।"—मुमुक्षु को लगा जैसे श्रमिक की आँखों में खून उतर आया है। यह श्रमिक अपने काम से प्रसन्न नहीं लगता था। मुमुक्षु बिना कुछ कहे आगे बढ़ गए। साथ के फोरमेन ने कहा —"बाबू जी ये लोग बेवकूफ हैं, आदमी देख कर बात नहीं करते।"

"अरे भाई जी बात सच है वही तो वह कह रहा है।" मुमुक्षुराम ने हंसकर कहा—"मन की बौखलाहट तो बाहर निकलती ही है।"

कुछ और आगे चलकर मुमुक्षुराम ने एक दूसरे श्रमिक से कहा —"अरे यहाँ बड़ी गर्मी है भाई तुम लोग कैसे यहाँ दिन भर काम करते हो ?"

"गर्मी तो है पर साब हम लोगन को आदत पड़ी रही। उस श्रमिक ने नम्रता से उत्तर दिया—"अब कहा कहें, मुदा हर काममाँ तकलीफ तो होवत है। बिना कष्टन के कौन काम सदे है? हमार चक्र सायकल देखोगे तो चकरा जे हो।"

सेठ जो मुस्कुरा दिए। यही वह श्रमिक है जिसे अपने श्रम में आनन्द आता है, जिसने कष्ट को अपनी सफलता का साधन समझ लिया है। जिसे इस कारखाने में अपनत्व लगता है। जो चक्र साइकिल को अपनी निर्मित मानता है और मुमुक्षु को लगा कि उनके कारखाने में ऐसे श्रमिको की आवश्यकता है। ऐसे ही श्रमिक वास्तव में अपने आप में सार्थक होते हैं।

मुमुक्षु जब कारखाना देखकर बाहर निकले तो उनका मन सहानुभूति पूर्ण संवेदना से भर उठा था। यही वे श्रमिक हैं जिनके श्रम और साधना का फल वे चख रहे हैं। आज वे लोग परिश्रम करते हैं और उस सामूहिक परिश्रम का अन्तिम परिणाम है चक्रसाइकिल का निर्माण। फिर क्यों न इसके श्रमिकों का जीवन अधिक से अधिक सुखी बनाया जाय।

मैनेजर कौशल कुमार को धन्यवाद देते हुए मुमुक्षु-

राम ने कहा –"कारखाना देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने श्रमिक ईमानदारी और लगन से काम करते हैं। मैं सोचता हूँ आप वर्ष में एक माह का अधिक वेतन इन्हें अतिरिक्त बोनस के रूप में दे दिया करें।"

कौशल विचार में पड़ गए फिर बोले –"एक माह का सभी श्रमिकों का वेतन लगभग पाँच लाख के आता है, इसका मतलब होगा कम्पनी के लाभों में कमी।"

"तो क्या हुआ, हमारे श्रमिकों का जीवन तो खुशहाल होगा।"

"आप कहते है तो इस अतिरिक्त बोनस की घोषणा कर दी जाएगी, पर एक बात है बाबू जी! वेतन बढ़ाने से या अधिक रुपया देने से मजदूरों का जीवन खुशहाल नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि अधिकांश श्रमिकों को पैसा खर्च करना नहीं आता। इन्हें कितना ही अधिक पैसा मिले, ये लोग उसका उपयोग जीवन स्तर ऊंचा उठाने में नहीं करते। उस पैसे को ये फालतू शौकों पर, नशेबाजी में

और जुँआ सिनेमा इत्यादि में उड़ा देते हैं। न अच्छा खाते–पीते हैं और न रहन सहन–सुधारते हैं।"

"भला ऐसा क्यों ?"

"पहली बात तो यह है कि ये लोग पढ़े लिखे नहीं होते। दूसरे इन्हें वैसा करने की आदत पड़ जाती है। एक उदाहरण आपको दूँ। ये लोग अच्छी प्रकार से रहें इसके लिए हमने इन्हें कम्पनी की ओर से रहने को क्वार्टर्स दिए हैं। दो कमरे के क्वार्टर्स सिर्फ एक छोटे परिवार के लिए हैं, पर आप आश्चर्य करेगें कि अपेक्षा-कृत अधिक बच्चों वाले अपने बड़े परिवार को लेकर ये लोग एक ही कमरे में गुजर बसर कर लेते हैं और दूसरा कमरा किराए पर दे देते हैं। अब आप बतलाइए कि इन्हें मकान देने से लाभ क्या हुआ ? वही भीड़ भाड़ और गंदा रहन सहन, वही दुर्गती और इस तरह तकलीफ उठाकर भाड़े से जो पैसा कमाते हैं वह भी फालतू खर्च में उड़ा देते हैं। सच पूछा जाय तो इनके पास काफी पैसा आता है और ये ठीक से रह भी सकते हैं क्यों कि स्त्री पुरुष दोनों कमाते हैं, कभी कभी बच्चे भी कमाते हैं, पर इतना करने पर भी इनके जीवन की दयनीयता नहीं जाती यह इनके अविवेकपूर्ण खर्च और अज्ञानता के कारण ही है।

"तब फिर किया क्या जा सकता है ?"—सेठ जी ने सरलता से पूछा ।

"बहुत कुछ किया जा सकता है। रहने–सहने, इलाज और शिक्षा की सभी व्यवस्थाएं हमने इनके लिए उपलब्ध की हैं। पैसे का व्यर्थ अपव्यय न हो, इसके लिए हमने अनिवार्य जीवन बीमा की व्यवस्था की है । इस प्रकार इनके रहन –सहन को हम प्रत्यक्ष रूप से सुधारने का प्रयत्न करते हैं ।"

"तब ठीक है ऐसा कीजिए, एक मास के अतिरिक्त बोनस की रकम आप इनके प्रोवीडेण्ट फण्ड (सुरक्षा कोष) को राशि में मिला दिया कीजिए ।"

"जो ठीक है ।"

"देखिए आज मैं आप से एक आवश्यक बात करने आया हूँ । मैं एक अनिश्चित समय के लिए सारा काम धंधा छोड़ कर बाहर जा रहा हूँ अत: मेरी अनुपस्थिति में कारखाने के सारे कारोबार की जिम्मेदारी आप पर छोड़ जा रहा हूँ।"— मुमुक्षुराम ने अपनी बात कही।

"पर आप जा कहां रहे हैं ?"– कौशल ने आश्चर्य से पूछा।

"कहां जा रहा हूँ ? कितने दिन के लिए जा रहा हूँ ? यह कुछ न पूछिए, क्योंकि मैं स्वयं नहीं जानता। पर हां मेरो अनुपस्थिति में आप इस कारखाने के ट्रष्टी या मालिक रहेगें।"

"कारखाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहिए पर यह तो बतलाइए कि आप ......"

न, मेरे विषय में कुछ न पूछिए ! बस इतना ध्यान रखना कि घर पर सभी स्त्रियाँ हैं ...... मैंने तुम्हें हमेशा से अपना छोटा भाई समझा है और तुम पर विश्वास किया है।"–मुमुक्षु भावावेश में कह रहे थे।

"आप का विश्वास कभी टूटेगा नहीं"– कौशल की आँखें आर्द हो उठीं – वे बोले, –"बाबू जी ! आपने मुझे काम दिया है, मेरी योग्यता और शिक्षा का मुझे लाभ उठाने दिया है नहीं तो विदेश लौटने पर मुझे कौन पूछता था। मेरे साथ के विदेश शिक्षा प्राप्त टेक-नोशियन अभी तक कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं कर पाये हैं, उन्हें अपनी योग्यता दिखाने का अवसर ही नहीं मिला। अतः मैं अपने भाग्योदय का कारण आपको मानता हूँ।

आप बिलकुल निश्चिन्त रहें ...... कहते कहते कौशल का गला भर आया।

"ईश्वर तुम्हें सदा प्रसन्न रखे।"– मुमुक्षु ने उठते हुए कहा।

अपने कार्यालय में पहुँचकर मुमुक्षु ने अपने वकील को आने के लिए फोन किया फिर दूकान के व्यवस्थापक को बुलाकर वे अपनी अनुपस्थिति में काम काज की व्यवस्था समझाने लगे। बूढ़ा व्यवस्थापक श्याम जी आश्चर्य से सेठजी के इस वदले हुए रूप को देख रहा था। वह बहुत प्रारंभ से, जबसे मुमुक्षु ने छोटे रूप में अपना व्यवसाय शुरू किया था, मुमुक्षुराम का सहयोगी था। उसने साहस कर अन्ततः पूछ ही लिया –" आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"भ्रमण के लिए ... तीर्थ यात्रा।"– मुमुक्षु ने सहज ही कहा।

"यह तो प्रसन्नता की बात है। कौन कौन से तीर्थ जाएगें ? कब तक वापिस लौटेगें ?"

"यह कुछ निश्चित नहीं और श्याम जी, यह भी नहीं कह सकता कि लौटूँगा भी या नहीं।"– मुमुक्षुराम ने अन्ततः अपना मंतव्य स्पष्ट किया–" तुम मेरे विश्वास

पात्र हो इसलिए कह रहा हूँ घर पर किसी को यह बतलाइए नहीं। इस संसार से मेरा मन ऊब गया है श्याम जी, इसलिए मैं सब छोड़ छाड़ कर जा रहा हूँ। आप अपनी सामर्थ्य अनुसार इस दुकान को अपनी दुकान समझकर चलाना। मेरी अनुपस्थिति में निवृत्ति, उसकी माँ और बुआ को किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

"आप बेफिक्र रहें।" बूढ़े व्यवस्थापक ने काँपते हुए स्वर में कहा –" आप मालिक हैं, आपको जहाँ जाना हो जाइएगा पर राजी खुशी के समाचार हमें देते रहिएगा।"

"नहीं श्याम जी। मैं अपने जीवन में एक विशेष प्रयोग करने जा रहा हूँ, इसके लिए अज्ञात वास ही आवश्यक है। आप तो वयोवृद्ध अनुभवी व्यक्ति हैं। इसमें दुःख या चिन्ता का कारण नहीं होना चाहिए, भगवान सब भला करेंगे।" मुमुक्षु कुछ देर चुप रहे फिर बोले–" अच्छा अब आप जा सकते हैं।"

श्याम जी का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। पर अधिक तर्क करना ठीक न समझकर वह भारी कदमों से चला गया। तब तक वकील आगया था। मुमुक्षुराम ने शीघ्र ही अपनी वसीयत तैयार करवाई। एक ट्रस्ट निश्चित कर सारी आय – व्यय का ब्योरा निश्चित किया और

निवृत्ति को अपना एकमात्र उत्तराधिकारी घोषित करते हुए वसीयत वकील के हवाले कर दी।

सारा इन्तजाम हो चुकने पर मुमुक्षु ने सन्तोष की साँस ली और दूसरे दिन के लिए गाड़ी में अपना रिजर्वेसन करवा लिया।



वीरमगाँव एक्सप्रेस बम्बई सेन्ट्रल स्टेशन को छोड़ कर चल पड़ी। स्टेशन नजरों से ओझल होते ही मुमुक्षु-राम को लगा जैसे जीवन का एक परदा उनकी दृष्टि के सामने से हट गया है और जैसे गाड़ी बम्बई महानगर को सीमा को पार कर आगे बढ़ती गई वैसे वैसे उनके मन पर से जैसे एक बोझ उतरता जा रहा था। एक विचित्र सी प्रसन्नता उनके मनमें समाए जा रही थी, घर-द्वार, परिवार सभी की चिन्ताओं से मुक्त, निर्द्वन्द निश्चिन्त...

"क्या मैं सिगरेट पी सकता हूँ ?"

सेठ जी की ध्यान-तंद्रा टूटी, उन्होंने प्रथमबार अपनी सीट के समक्ष बैठे स्वस्थ-सुन्दर नवयुवक को देखा। स्वस्थ-शरीर, गोल मुख, नेत्रों में सहानुभूति वाला वह नवयुवक सभ्य दिखलाई देता था और वेशभूषा से संपन्नता झलक रही थी। मुमुक्षुराम ने मुस्कराकर कहा-"हाँ शौक से पीजिए।"

"आप लेगें !"-युवक ने सिगरेट केस उनकी ओर बढ़ाते हुए पूछा।

"नहीं धन्यवाद !"—सेठ जी ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"तो मैं भी नहीं पिऊँगा।"—उस स्वस्थ नवयुवक ने हाथ में ली हुई सिगरेट खिड़की से बाहर फेंकते हुए कहा—"मैं जानता हूँ, जो सिगरेट नहीं पीता उसे सिगरेट के धुँए से भी चिढ़ होती है। बचपन में मुझे भी इससे बड़ी चिढ़ थी पर कालेज लाइफ में गलत सुहबत में यह लत लग गई ...... युवक ने रुककर मुमुक्षु की ओर देखा जैसे नाप रहा हो कि उसकी बात का उन पर क्या प्रभाव हुआ है, फिर उन्हें अपनी ओर देखकर बोला— वैसे बुजुर्गों के सामने मैं सिगरेट नहीं पीता।"

सेठ जी मुस्कुराए, बोले—"कहीं शासकीय विभाग में हैं ?"

"जी नहीं"—युवक ने नम्रता से कहा — पहले था सरकारी नौकरी में पर अधिक दिनों तक अपने स्वतंत्र मन को गुलामी में न जकड़े रख सका ... अब मैं खुद का व्यवसाय करता हूं। साड़ियों का थोक धंधा है मेरा। भारत भर में साड़ियाँ मेरे जरिए ही पास होती हैं। आप जैसे बडों के आशिर्वाद से खा पीकर कुछ बचा लेता हूं।"—और युवक ने किस प्रकार अपना व्यवसाय जमाया वह बड़े रोचक ढंग से सुना गया, फिर बोला —"इतना सब मेरी रात दिन की मेहनत से जाकर हुआ है नहीं तो पिता

जी मेरे साधारण क्लर्क थे, ठीक से मेरी पढ़ाई भी न कर सके ।"

"बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर !"– मुमुक्षु ने कहा–"आप पुरुषार्थी हैं, भला यह तो बतलाइए कि अब तो आपका काम धाम जम चुका है, अब आप सुखी होंगे ?"

हाँ ! हाँ । क्यों नही ।" नवयुवक कह गया फिर जैसे संभलकर बोला–"सुखी तो कहने भर को हूं साहब, नहीं तो देखिए न कितनी परेशानी है, दिनरात यात्रा सिर पर सवार है । न खान –पान की सुविधा है न कहीं चैन से एक जगह बैठ सकते हैं । कभी कभी तो लगता है कि सब छोड़ छाड़ कर कहीं जंगल में भाग जाएं...... पर कैसे ? यह धंधा नहीं छोड़ता पहले मैंने व्यवसाय को पकड़ा फिर इसने मुझे पकड़ •लिया ।"–युवक एक सूखी हंसी हंसकर चुप हो गया ।

मुमुक्षु कुछ नहीं बोले पर उन्हें उस युवक में एक विचित्र सी व्यग्रता का अनुभव हुआ । जैसे वह अपनी बातों के पीछे कुछ छिपा रहा हो, उसकी बेचैनी उसकी हर हरकत से जाहिर होती थी, कभी वह अपनी उँगलियाँ चटकाता था तो कभी जेब में हाथ डालकर व्यर्थ कुछ ढूँढने की

कोशिस करता था। उसकी आँखें बार बार डिब्बे में चारों ओर दौड़ रही थीं। सेठजी को अपनी ओर देखते देखकर वह नकली मुस्कुराहट लाने का प्रयत्न करता।

"यह भी अशान्त है।"– मुमुक्षु ने सोचा–" जो भी हो यह कर्मठ और मेहनती व्यक्ति है। स्वभाव का सरल भो है तभी तोबि ना पूछे अपने बारे में सभी कुछ बतला गया।

"शायद आप भी किसी व्यावसायिक कार्य से कहीं जा रहे हैं ?"– अचानक युवक ने पूछा–" क्या जान सकता हूँ कि आपके साथ का सौभाग्य मुझे कहाँ तक मिलेगा ?"

मैं द्वारका पुरी जा रहा हूं।"– सेठजो मुस्कुराकर बोले–' पर बिजनेस के लिए नहीं मात्र तीर्थयात्रा के लिए।"

"ओह तीर्थयात्रा पर निकले हैं ?"– वह प्रसन्न होता हुआ बोला –" मैं भी द्वारका पुरी जा रहाहूं। कितना अच्छा संयोग रहा। चलिए वहाँ तक साथ रहेगा। द्वारका में कहाँ ठहरेंगे ?"

"कुछ निश्चित नहीं, वहीं पहुंचकर इस विषय में विचार करूंगा।" मुमुक्षुराम ने निश्चिन्तता सेकहा।

"कोई बात नहीं। मेरे वहाँ अनेक ठिकाने हैं–

आपकी अच्छी व्यवस्था करवा दूँगा।"– युवक ने सहानुभूति जतलाई।

मुमुक्षु ने मुस्कुरा कर स्वीकार किया। उन्होंने फिर देखा कि युवक सचमुच व्यग्र है। वह अपनी सीट पर इधर से उधर सरक रहा था, खिड़की खोलकर बाहर झाँकता फिर बन्द कर लेता। युवक इधर उधर देखता हुआ सीटी बजाने लगा। मुमुक्षु को ध्यान से अपनी ओर देखते देखकर वह और भी अधिक बेचैन हो रहा था। मुमुक्षु सोच रहे थे–" सारा जीवन इसी बेचैनी और परेशानी में निकल जाता है ... इतनी भागदौड़ की, परिश्रम से व्यवसाय जमाया, धन कमाया ...... पर क्या पाया ? यह बेचैनी, अशान्ति ! ...कैसी विडम्बना है मानव जीवन की।"

उमस बढ़ रही थी। मुमुक्षुराम ने अपना जोधपुरी कोट उतार कर रख दिया और खिड़की से बाहर देखने लगे। रात के अन्धेरे में बम्बई की रोशनियाँ बहुत पीछे छूट गई थीं अब तो अन्धेरे में धरती की काली रेखाएँ उभरती दिखलाई दे रही थीं। आकाश में तारे खिले हुए थे। मुमुक्षुराभ को रात के वातावरण की यह स्निग्धता बड़ी भली लगी।

किसी स्टेशन पर आकर गाड़ी रुकी। वह युवक

भी अपना कोट उतार कर खिड़की से टिका बैठा था। गाड़ी रुकने पर उसने मुमुक्षु से पूछा—"बड़ी गर्मी है! आप कुछ ठंडा पिएगें ?"

"हाँ पी लेगें।"—सेठ जी मुस्कुराकर बोले, वे स्वयं ही यह इरादा कर रहे थे। युवक ने दो ठंडे पेय की बोतलें मंगवाई और एक मुमुक्षु को देकर दूसरी स्वयं पीने लगा। पीने के बाद जब युवक पैसे देने लगा तो मुमुक्षु ने उसे रोक दिया। उन्होंने अपने कोट की जेब में से अपना पर्स निकाला और पेय के दाम अदा कर दिए। मुमुक्षुराम ने पर्स वापिस अपने कोट की जेब में रख दिया।

गाड़ी फिर चल पड़ी। युवक ने धीरे धीरे मुमुक्षु राम को अपना परिचय देकर उनका परिचय पूछा और यात्रा की एक सामान्य मित्रता स्थापित करली। मुमुक्षु के मन में उसके प्रति सहज सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी। रात अधिक होती जा रही थी इसलिए वे सोना चाहते थे। युवक ने ताड़ लिया, वह बोला—"आप को नींद आ रही है, आप सोइए। मैं भी आराम करता हूँ।"

युवक ने उठकर कम्पार्टमेन्ट को अन्दर से लाक कर लिया और बत्ती बुझा दी। सेठ जी निश्चिन्त होकर निद्रा मग्न हो गए

१०

प्रभात का प्रकाश जब खिड़कियों से झाँकने लगा तो मुमुक्षुराम की आँख खुली। बड़ी सुन्दर निद्रा आई थी एक उन्मुक्त अंगड़ाई लेकर उन्होंने सामने वाली सीट पर देखा तो नवयुवक यात्री दिखलाई नहीं दिया। द्वार खुला हुआ था उन्होंने सोचा शायद बाथरूम गया होगा। वे उठकर बैठ गए। सहसा उन्हें ध्यान आया कि नव-युवक की अटेची भी गायब है ...... अरे तो वह युवक बीच में कहीं उतर गया। कहता तो था कि द्वारका जा रहा है !.... अजीब व्यक्ति था !... सेठ जी ने उठकर अपने कपड़े संभालते सोचा। अचानक देखा कि उनका कोट नीचे फर्श पर पड़ा है, शायद नींद में गिर गया हो। कोट उठाकर उन्होंने खूंटी पर टांग दिया और हाथ मुँह धोने के लिए बाथरूम चले गए। जब वहां से लौटे किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी थी, उन्होंने चाय मंगाई और पैसे देने के लिए जेब में हाथ डाला ... पर यह क्या! कोट में पर्स तो था ही नहीं। उन्होंने इधर उधर चारों तरफ देखा पर्स नहीं था .. और अचानक बिजली की चमक के समान उनके ध्यान में आया ... तो वह युवक

पर्श लेकर चम्पत हो गया। ओह... अब मालुम पड़ा कि वह युवक क्यों परेशान था, क्यों बार बार इधर उधर ताक झाँक कर रहा था ? कितना विचित्र धोखा है। देखने में इतना सभ्य लगता था, अपने आप को ईमानदार व्यवसायी वतला रहा था पर था क्या ... चोर ! ... मुमुक्षु को स्वप्न में भी इसकी कल्पना न थी। वे स्वभाव के अनुसार निश्चिन्त थे। आदत के अनुसार उन्होंने अपना कोट बिना हिफाजत के सीट पर पटक रखा था, पर्स में आठ दस हजार रुपया अपनी यात्रा के खर्चे के लिए उन्होंने चलते समय रख लिए थे ... अब क्या होगा ? इतनी बड़ी यात्रा विना खर्चे के कैसे होगी... ...मुमुक्षु का मन व्याकुल हो उठा ... पर उसी क्षण जैसे उनकी आत्मा से एक ध्वनि आई –"क्या होगा ?... इसकी चिन्ता तू क्यों करता है ? ... चिन्ता करके धन साथ बाँध लाया था सो उसे चोर ले गया। शायद यह ईश्वर की कृपा का ही परिणाम है... बिना उसकी कृपा पर भरोसा किए यह सत्य के खोज की यात्रा कैसे सम्पन्न होगी ?... और मुमुक्षु के मन में एक शांति सी छा गई। उन्हें इस चोरी में ईश्वरका ही हाथ दिखा। फिर उन्हें स्मरण आया कि रुपयों के साथ कहीं टिकिट भी तो नहीं चला गया। उन्होंने कोट की ऊपरी जेब को टटोला,

जहाँ नौकर से लेकर उन्होंने टिकिट रख लिया था। टिकिट और उसके साथ के छुट्टे रुपये ऊपर को जेब में सही सलामत थे। मुमुक्षु ने सन्तोष की साँस ली। भगवान ने परीक्षा तो की पर लाज भी रख ली नहीं तो बिना टिकिट के अपमानित होना पड़ता। सेठ जी ने टिकिट के साथ के रुपये निकाल कर गिने कुल ७२ रुपये थे – वे मुस्कुराए और उनके मुँह से निकल पड़ा–"हरि इच्छा बलवाना।"

उन्होंने चाय का पैसा चुकाया और पुनः कोट उसी तरह लापरवाही से सीट पर रखकर खिड़की से बाहर देखने लगे। गाड़ी फिर चल पड़ी, सामने सारी धरती दौड़ती नजर आ रही थी जैसे गाड़ी नहीं यह दुनिया ही भागी चली जा रही हो। वे सोचने लगे–हाँ दुनिया सचमुच ऐसी ही भाग रही है, कभी न रुकने वाला समय! इसकी गति है यह कहाँ जा रही है, क्यों जा रही है... यह कोई नहीं जानता।



द्वारका –

एक रिक्शे में बैठते हुए मुमुक्षुराम ने कहा–"किसी अच्छी धरमशाला में ले चलो, भाई।"

रिक्शे वाले ने उन्हें "द्वारकाधीश पुण्यधाम धर्मशाला पहुँचा दिया। सेठ जी ने रिक्शे वाले का पैसा चुकाया और अपना कोट एवं अटेची उठाकर धर्मशाला में प्रवेश किया। विशाल भवन के द्वार पर एक ही दरवान खड़ा था। मुमुक्षुराम ने उससे पूछा–"मेनेजर साहब किधर बैठते हैं ?"

"उदर को।"– दरवान ने बड़ी लापरवाही से मेनेजर के कक्ष की ओर संकेत किया। मेनेजर के दरवाजे के ऊपर बड़े बड़े अक्षरों में यह दोहा अंकित था –"दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान"–

और एक ओर लिखा था –" आते जाते कहो जय द्वारकाधीश की।"

सेठजी ने पढ़ा और सोचा अवश्य ही मेनेजर बड़ा धार्मिक और दयालु वृत्ति का व्यक्ति होना चाहिए।

उन्होंने दरवाजे में से अन्दर झाँका। कमरे में मोटी गद्दी पर एक स्थूल शरीर का प्रौढ़ व्यक्ति बैठा कुछ खा रहा था, सामने ही एक थाली में मेवा रखो हुई थी उसके पास नोचे की ओर एक व्यक्ति जो नंगे बदन का और माथे पर लम्बे तिलक के कारण ब्राह्मण नजर आता था, सिल पर भांग घोट रहा था ।

मुमुक्षु ने साधारण स्वर में कहा–"नमस्कार।"

"नमस्कार !"– प्रौढ़ व्यक्ति ने चौंक कर उत्तर दिया फिर सेठजी को मुड़ा देखकर बोला–" कहिए क्या सेवा करूँ ।"

"जी मैं आपकी धर्मशाला में ठहरना चाहता हूँ।

मेनेजर कुछ सोचने लगा, उसने अपने चौड़े हाथ से वढ़े हुए पेट को खुजलाया, फिर भांग घोटते हुए ब्राह्मण की ओर देखते हुए कहा–" पहले की जगा मिलना तो बड़ी मुश्कील बात है साब"–फिर मुमुक्षु को ओर अपनी रुखी आँखें जमाकर बोला–" एक कमरा खाली होता है और दस आजाते हैं। अभी तक पचास आदमियों को वापस भेज चुका हूँ। क्यों चो, पडाची।"

"हाँ जी जागा है काँ ?"– तिलकधारो भांगघोटू ने मुमुक्षु की ओर ऐसे देखा जैसे कोई लावारिश पशु दरवाजे पर खड़ा हो।

"जी तो फिर मुझे कोई और धर्मशाला का पता बतला दीजिए ?"– मुमुक्षु ने नम्रता से कहा– "मैं यहाँ द्वारका में बिल्कुल नया हूँ ।"

"अजी मैं क्या जानूं ।" मेनेजर ने खिसिया कर कहा–" मैं तो इस धर्मशाला का मेनेजर हूँ सारी द्वारका का रिपोर्टर थोड़े ही हूँ ।"

सेठजी को मेनेजर का यह व्यवहार बड़ा अभद्र लगा और वे बिना कुछ कहे वापिस मुड़ गए तभी भाँगघोटू पण्डे का आलाप गूँजा–" राम भज राम !– राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ! अन्तकाल पछताएगा, प्राण जाएगें छूट ।"

मुमुक्षु निराश होकर चल पड़े। वे द्वार तक आए थे कि पीछे से आवाज सुनाई दी–" ओ सेठ ! ओ बाबू ।"

सेठजी ने पलट कर देखा तो वही तिलकधारी पण्डा लपका हुआ आ रहा था । पास आकर बोला –"आप को ठेरना के जागा चहिए न ।"

"हाँ ।"–मुमुक्षु ने कहा ।

"जागा है तो न पर तुम नया आदमी है और मनीजर साब बड़ा दाता आदमी है । एक स्पेशल कमरा खाली है अगर कुछ भेंट पूजा करवाय दो तो उत्तम व्यवस्था हो जाएगी ।"

"मतलब?" मुमुक्षु राम ने समझते हुए भी पूछा ।

"अजी मतलब नाय समझे?"—ब्राह्मण हँसकर बोला—"या हाथ दे औ वा हाथ ले।"

"धर्मशाला में क्या लेना देना !"

"धर्मशाला में रहने का पैसा तुमसे कौन मांगे है बाबू ये पैसा तो स्पेशल इन्तजाम का है। वैसे तो इस जमाने में बिना कुछ लिए दिए काम बनने का नाय ।"

"मतलब जगह के लिए तुम्हे रिश्वत दूँ।"— मुमुक्षु ने रुखाई से कहा— मैं तीर्थ यात्रा को निकला हूँ पण्डितजी चाहे सड़क पर सो लूँगा पर रिश्वत न दूँगा।"

'श्री हरि'— ब्राह्मण बोला —'मैं ने रिश्वत की बात थोड़े कही मैं तो भेंट पूजा की, बखशीस की बात करता हूँ......ऐसे तो आपको आक्खो द्वारका जी में कहीं भी जगह नहीं मिलेगी ... श्री हरि ...

सेठ जी कुछ नहीं बोले बस मुड़कर चल पड़े। उनका मन खट्टा हो गया था। सोच रहे थे धर्मशाला बनवाने वाले को क्या मालुम कि उसके नाम पर बट्टा लगाने वाले उसके कर्मचारी इस तरह धर्मादे का व्यवसाय चला रहे हैं।

१२

"अजी ! सेठ जी !"

"अजी मुमुक्षुराम जी।"

मुमुक्षु ने चौंक कर देखा तो भीड़ में से उनके एक परिचित उन्हें पुकारते चले आ रहे थे। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा–"कहिए प्रेमकिशोर जी ! खूब मिले।"

"अजी आप यहाँ कैसे ? और यूँ पैदल कहाँ चले जा रहे हैं।"–प्रेमकिशोर ने मुमुक्षुराम को अटेची लिए पैदल जाते देख कर आश्चर्य व्यक्त किया।

"भाई जी, मैं तीर्थयात्रा के लिए निकला हूँ, पर आप यहाँ कैसे ?"–मुमुक्षुराम ने सरलता से पूछा।

"जी आपकी कृपा से यहाँ अपनी बच्ची की सुसराल है। उसे पतिगृह पहुँचाने आया था।" प्रेमकिशोर ने फिर आश्चर्य व्यक्त किया –"पर आप अटेची हाथ में लिए, पैदल निकले हैं ? गाड़ी कहाँ है ? नौकर चाकर?"

मुमुक्षु हँसने लगे बोले–"भले आदमी ! तीर्थयात्रा करने निकला हूँ कोई व्यवसाय करने नहीं। गाड़ी, नौकर

चाकर ये सब चक्कर छोड़ छाड़ कर चला हूँ –" और मुमुक्षुराम ने संक्षेप में अपनी अनोखी यात्रा का अहवाल और अभी अभी हुए विचित्र अनुभव को कह सुनाया ।

प्रमकिशोर मुमुक्षुराम के पुराने मित्र थे । कभी मुमुक्षुराम ने गाढ़े समय में उनकी धन से सहायता भी की था । वे मुमुक्षुराम के मौजी स्वभाव को जानते थे अतः विशेष वाद–विवाद न करते हुए बोले –"अब आप किसी बात की चिन्ता न कीजिए । द्वारका में अपने जमाई की अच्छी स्थिति है–आपको किसी प्रकार की तकलीफ न होगी ।"

"धन्यवाद प्रेमकिशोर जी ।"–मुमुक्षु ने कहा–"भला जमाई की किस मदद की अपने को आवश्यकता है । लड़की के घर तो अपन ठहर भी नहीं सकते । आप तो इतना कीजिए कि किसी धर्मशाला या मन्दिर में मेरे रहने की व्यवस्था करवा दीजिए ।"

"अच्छा ! चलिए ।"–प्रेमकिशोर जी मुमुक्षुराम की व्यवहार कुशलता से परिचित थे अतः विशेष आग्रह न कर उनकी इच्छानुसार अपने एक परिचित मन्दिर में उन्हें ले गए । वह भगवान कृष्ण का मन्दिर था, पुजारी का नाम था हरिचरणदास । सेठ प्रेमकिशोर को आया

देखकर वह पूजा छोड़कर स्वागतार्थ भागा–"आइए ! पधारिए ! अहो भाग्य जो दर्शन दीने।"

"अरे अरे हरचरण दास जी।"– प्रेमकिशोर जी ने कहा–"आप तो भगवत पूजा छोड़कर आ गए ! हम रुक जाते।"

"नहीं सेठ साहब – अतिथि तो भगवान से भी बडे होते हैं इसलिए प्रथम अतिथि सत्कार फिर भगवत पूजा !"– ब्राह्मण स्वयं की बात पर स्वयं ही हँसा फिर मुमुक्षुराम के हाथ की अंगूठी के होरे पर अपनी दृष्टि जमाता हुआ बोला–"आप श्री मान !"

"यह हमारे परम मित्र श्रीमान सेठ मुमुक्षुराम जी हैं। बम्बई से पधारे हैं, आपके मन्दिर में ये ठहरेगें–इन्हें किसी प्रकार का कष्ट –"

" अरे कैसा कष्ट हुजूर, यह द्वारकाधीश का दरबार है, सेठ जी की सेवा ठाकुर जी की तरह करूँगा"– हरिचरण गिड़गिड़ाता हुआ बोला –"आइए श्रीमान आइए–आपके लिए अभी कमरे का प्रबन्ध करता हूँ।"

मुमुक्षुराम को पहुँचा कर प्रेमकिशोर जी चले गए। हरिचरण दास बहुत ही नम्र और सेवक वृत्ति का व्यक्ति था। उसने शीघ्र ही मुमुक्षुराम के ठहरने की व्यवस्था कर दी। मुमुक्षुरामको लगा जैसे वे अपने किसी नजदीकी रिश्तेदार के यहाँ आकर ही ठहरे हों।

१३

दिशाएँ उषा के आगमन से लाल होने लगीं। मन्दिरों में प्रभात की आरती के घन्टे–घड़ियाल बजने लगे। मुमुक्षुराम की निद्रा टूटी तो उन्हें वह प्रभात बड़ा अनुपम लगा। प्रभात में मधुर वाद्यों की ध्वनि तथा भगवत्नामों का उच्चारण कितना मधुर लगता है, प्रथम बार उन्हें यह अनुभव हुआ था। वे कुछ समय तक मुग्ध से पड़े उन कर्ण प्रिय स्वरों को सुनते रहे। खिड़की में से प्रभात का स्वच्छ प्रकाश झांकने लगा था और पूर्व दिशा लालारंग से खिल उठी थी। मुमुक्षुराम उठकर अपने कक्ष से बाहर आए।

पुजारी हरिचरण दास ने सेठ जी की सारी व्यवस्था समुचित कर रखी थी। नित्यकर्म तथा स्नानादि से निपट कर मुमुक्षुराम ने मन्दिर में जाकर भगवान को प्रणाम किया। कृष्ण बलराम और रुक्मणी की सुन्दर मूर्त्तियां थीं। पुजारी पूजन में व्यस्त था। पूजन के पश्चात् वह मुमुक्षुराम को सादर भीतरी आँगन में, अपने कक्ष में ले गया। वहाँ उसकी पत्नी चाय नाश्ता आदि का प्रबन्ध किए उनकी राह ही देख रही थी। मुमुक्षु ने

केवल चाय लो और पुजारो से कहा कि वह उनके लिए एक ऐसे व्यक्ति को व्यवस्था कर दे जो उन्हें श्री रण-छोड़ राय जी के मन्दिर तथा अन्य पवित्र स्थानों में घुमा लाए ।

पुजारो बामन नाम के एक लड़के को बुला लाया । वह पड़ोस के गरोब ब्राह्मण का लड़का था और पुजारो हरिचरण के छोटे-मोटे पूजापाठ आदि के काम वह निपटाया करता था । मुमुक्षुराम को बामन पसन्द आया । वह सीधासाधा और सरल स्वभाव का लड़का था । पिता की निर्धनता के कारण अधिक नहीं पढ़ सका पर सामान्य पूजा पाठ उसने अपन पिता से सीख लिया था । मुमुक्षु राम के साथ चलते चलते वह अपनो सीधी साधी भाषा में उन्हें द्वारका नगरी की महिमा और उसका महात्म्य सुनाता रहा । उसने घूम घाम कर उन्हें गोमती के सारे घाट दिखलाए फिर श्री रणछोड़ राय के मन्दिर में लेगया । मुमुक्षु ने मन्दिर में चढ़ाने के लिए सवा पाँच रुपये का प्रसाद ले लिया ।

ऊँचाई पर बने, चार द्वारों वाले परकोटे के मध्य बना श्री रणछोड़ राय जी का सातखंडी मन्दिर अति भव्य लग रहा था । मन्दिर के वैभव का प्रमाण देती हुई, स्वर्ण शिखर पर लम्बो पूरे एक थान को अखण्ड ध्वजा

फरफरा फरफरा कर फहरा रही थी। मन्दिर की भव्यता देख कर मुमुक्षुराम का मन श्रद्धा से भर उठा।

मन्दिर के मुख्य पीठपर भगवान श्री रणछोड़राय जी की बाँकी झाँकी सहज ही मन को मोह लेने वाली थी। हजारों दर्शकों का मन्दिर में ताँता लगा हुआ था। पुजारी दर्शनार्थियों से भगवान की पूजा करवा रहे थे, अनेक श्रद्धालू भक्त भगवान श्री रणछोड़जी की मूर्ति के चरण स्पर्श भी कर रहे थे।

बामन मुमुक्षु को श्री रणछोड़रायजी की मूर्ति के निकट लेगया। मुमुक्षु ने श्रद्धा युक्त होकर भगवान के चरणों में प्रणाम किया और पुजारी को प्रसाद चढ़ाने के लिए दे दिया। मुमुक्षु ने अन्य दर्शकों को भगवान के चरण स्पर्श करते देखा तो स्वयं भी स्पर्श करना चाहे। तब पुजारी ने उन्हें रोक कर कहा –"सेठजी प्रथम आप चरण स्पर्श की दक्षिणा चढ़ा देवें।"–मुमुक्षु ने आश्चर्य से पुजारी की ओर देखा।

बामन ने धीरे से उनके कान में कहा –"हाँ बाबूजी ! भगवान के चरण स्पर्श उन्हें ही करने दिए जाते हैं जो निश्चित दक्षिणा देते हैं।"

"भगवान के चरण स्पर्श के लिए दक्षिणा।"–मुमुक्षु के मुख से निकला और वे अनायास ही बोले–"

"न, मुझे चरण नहीं छूने।"– बामन को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने कहा –" सेठ साहब सिर्फ पचास नए पैसे की ही तो बात थी। भगवान के चरण छू लेते तो सारे पाप धुल जाते।"

मुमुक्षु ने बामन की ओर विस्मय से देखा फिर मुस्कुरा कर बोले –"क्या भगवान के सिर्फदर्शन मात्र से पाप नहीं धुलते बामन ?"– फिर तनिक गंभीरता से कहा –" क्या पैसे देकर भगवान के पैर छूने वाले ही मुक्त होते हैं बामन ? अगर किसी के पास पैसे न हों तो ?"

बामन सेठजी की ओर आश्चर्य से देख रहा था। वह सरलता से बोला –"पर आप तो बहुत बड़े आदमी हैं बाबूजी ! आपके पास पैसों की क्या कमी ?"

"कमी या ज्यादती की बात नहीं है जी "– मुमुक्षु ने समझाते हुए कहा –" यह तो बड़ी ज्यादती है कि दर्शनार्थियों से भगवान के दर्शन के नाम पर पैसे वसूल किए जाएं। इसका मतलब है कि यह तो फिर धंधा हो गया। मन्दिर नहीं दुकान हो गई।"

"धंधा तो है ही बाबूजी।" ब्राह्मण बालक अपने सरल विश्वास के साथ बोला –" भगवान का पूजा पाठ करना, भक्तों को भगवान के दर्शन कराना यही तो

ब्राह्मणों और पुजारियों का धंधा है। भला हम लोग दर्शनार्थियों और यजमानों से पैसे न लें तो हमारा खर्चा कैसे चले ?"

"भगवान की सेवा करने वाले को खर्चे की चिन्ता अरे अपना सर्वस्व जिसने भगवान के चरणों में अर्पण कर दिया है जो नित्य उनकी पूजा अर्चना में लगा रहता है उसे किस बात की चिन्ता। स्वयं भगवान उसकी चिन्ता करते हैं। यदि वे निस्पृह और निर्लोभ रहें तो श्रद्धालू दर्शनार्थी कहीं अधिक भेंट पूजा चढ़ावें।"

"मैं यह कुछ नहीं समझता बाबूजी !"– बामन ने भोलेपन से कहा –" मैं तो यही जानता हुँ कि पूजा पाठ हम बम्मनों का पेशा है, लड़कपन से हमें यही सिखलाया गया है कि यजमान हमारे ग्राहक हैं और उनसे कैसे पैसे वसूल करना इसी पर हमारी दृष्टि रहती है।"

मुमुक्षु कुछ देर तक बामन की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे, वे उसकी निष्कपटता और भोलेपन पर मुग्ध हो गए। यदि यह लड़का चालाक और चतुर होता तो ऐसी बातें कभी न करता। उन्होंने कहा – "पर सभी ब्राह्मण ऐसे नहीं हैं। उदाहरण के लिए तुम्हारे हरचरण-दास जी को ले लें। वे बड़े भले मनुष्य हैं।"

"हाँ बहुत भले हैं।" बामन ने थोड़ा चिढ़कर कहा– "इतने भले हैं कि बाहर का अपना सारा काम मुझ से कराते हैं और जो पूजा पाठ में मुझे दक्षिणा मिलती है वे सारी की सारी खुद जीम जाते हैं। आज ही जब आपके लिए बुलाने आए तो बोले– देखिओ सेठ की मरजी मुताबिक सब दिखला लाओ, पर पैसा मत मांगिओ। बड़ा मोटा आसामी है, बाद में इकट्ठा कटेगा।"

"अच्छा!" मुमुक्षु को अपने विषय में यह बात सुनकर हँसी आ गई। वे बोले –"चलो ठीक तो कहा पुजारी जी ने तुम्हें बाद में इकट्ठा पैसा मिल जाएगा।"

"हाँ साब उनने दे दिया और हमार को मिल गया।" बालक कठोर होकर बोला –"काम तो दौड़कर करा लेते हैं फिर एक एक पैसे के लिए झिकाते हैं हमें। उनका तो मन्दिर है सो रोज खूब चड़ौती आती है, यजमान भी दे जाते हैं। मन्दिर में कमरे किराए पर भी दे रखे हैं। पर हम गरीब हैं, रोजी रोटी का ठिकाना नहीं, तो भी हमारी मेहनत के पैसे वे खा जाते हैं।"

"वैसे पूजापाठ तो हरिचरण दास भी खूब करते हैं।" मुमुक्षुराम ने सहानुभूति पूर्ण शब्दों में कहा।

"काहे का पूजापाठ बाबू जी! बुम बुम करके भगवान पर पानी डाल दिया और घंटी बजाकर भोग

लगा दिया, हो गया पूजापाठ ! मेरे बाबा कहते हैं कि एक भी मंत्र इसे ठीक से नहीं आता और न इसने कुछ सीखा। बचपन से ही खर दिमाग है।"

"पर व्यवहार में आदमी भला है।"—मुमुक्षुराम को हरिचरण का व्यवहार अच्छा लगा था इसलिए बोले।

"आप से उसे पैसे की आशा है न बाबू जी, इसलिए वह भला है। अगर उसे यह आशा न हो और अगर आप गरीब आदमी होते तो फिर देखते कि वह क्या है ? बिना मतलब के तो यह किसी को मुँह भी नहीं लगाता।"

"अच्छा !"—मुमुक्षु ने आश्चर्य से कहा—"अरे तब तो हरिचरण दास को सचमुच धोखा हुआ है। मेरे पास तो बिल्कुल पैसा नहीं है।"— मुमुक्षु ने बामन को अपना पैसा चोरी हो जाने की बात बतलाते हुए कहा —"तुम हरिचरण दास को यह घटना सुना देना और कह देना कि वह मुझसे अधिक कुछ मिलने की उम्मीद न करे। मैं तो समझा था मन्दिर में ठहरने के नाते मुझे कुछ भी न देना पड़ेगा।"—मुमुक्षु ने सोचा चलो इस प्रकार पुजारी की सेवा भावना और वृत्ति की परीक्षा हो जाएगी।

बामन कुछ उदास हो गया, बोला—"आप पुजारी जी को यह न कहिए कि मैंने आपसे उसके बारे में यह सब कुछ कहा है।"

"निश्चिन्त रहो, नहीं कहूँगा ।"—मुमुक्षु ने मुस्कुरा कर कहा—"पर तुम उसे जैसा मैंने कहा है, मेरे बारे में सारी बातें बतला देना ।"

"जी ठीक है ।"

"अच्छा बामन यह बतलाओ कि तुम्हारी द्वारका-पुरी में कोई ऐसे चमत्कारी साधु महात्मा हैं जिनके दर्शन और सत्संग से कोई लाभ उठाया जा सके !"—मुमुक्षु ने विषयान्तर करते हुए पूछा ।

"महात्मा तो बहुतेरे हैं"— बामन ने कुछ सोचकर कहा—"और तीर्थ है इसलिए आते भी रहते हैं । वैसे यहां कई आश्रम भी हैं पर वे चमत्कारिक हैं या नहीं मेरे को नहीं मालुम ।"

"अरे भाई चमत्कार से मेरा मतलब है कोई विशेष ज्ञानी ध्यानी महात्मा जिनसे कुछ सत्संग हो सके ।"

"सत्संग करना हो तो यहाँ नगर में सत्संग मण्डल है रोज प्रात:काल उनकी बैठक होती है । पर हाँ"— बामन को अचानक स्मरण आया —"एक बड़े अजाब से बाबा हैं लोग उन्हें मस्तराम कहते हैं । वे बेटको – द्वारका के जंगल में रहते हैं । वे कभी शहर में नहीं आते; लोगों से नहीं मिलते, न वे किसी से बोलते चालते । हाँ कभी कभी लोगों को उनके दर्शन हो जाते हैं । लोग कहते हैं

वे सिद्ध हैं, जिस पर उनकी कृपा हो जाए वह निहाल हो जाता है। कहते हैं भगवान शंकर उनके साथ जंगल में डमरू बजाकर नाचते हैं ।''

"अच्छा तो कब हमें ले चलोगे उनके पास?" मुमुक्षु ने उत्सुकता से कहा ।

"वे मिलेगें या नहीं क्या मालुम पर जहाँ अक्सर दिखते हैं वहाँ तुम्हें ले चलूँगा । पर वे किसी को अपने पास नहीं आने देते । पत्थर मारते हैं ।"

"ठीक है न सही ! दर्शन तो कर लेगें । तो फिर कल चलने की बात पक्की रही ?"–मुमुक्षु ने पूछा ।

"हाँ बिल्कुल पक्की"– बामन ने हँसकर कहा– "चलिए थोड़े से मन्दिर और दिखला दूँ फिर घर वापिस चलेगें ।"

"चलो"– मुमुक्षु उसके पीछे हो लिए ।"

१४

दूसरे दिन मुमुक्षु को लगा कि सचमुच पुजारो हरिचरण दास के व्यवहार में कुछ रुक्षता आ गई है, वह प्रातःकाल उन्हें प्रथम दिन की तरह चाय नाश्ते के लिए अपने कक्ष पर भी नहीं ले गया। मुमुक्षु को इस उपेक्षा पर आश्चर्य नहीं हुआ, वे बामन की राह देखने लगे। जब काफी समय हो गया और बामन नहीं आया तो उन्होंने पुजारो से पूछा--"पुजारी जी बामन अभो नहीं आया ?"

"हाँ जी आज वह नहीं आएगा। एक जगह पूजा करने जाना था, बहुत व्यस्त था, इसलिए वह नहीं आएगा। आज अकेले ही चले जाइएगा ।"

"अच्छा !"—मुमुक्षु के मुख से निकला। मन ही मन उनके इस व्यवहार के प्रति ग्लानि हो आई। यदि बामन को आज कहीं भेजा था तो कम से कम पहिले ही कह दिया होता। वे व्यर्थ राह देखते रहे।...तो वह सौहार्द, वह प्रेमपूर्ण–अतिथि सत्कार–मात्र दिखावा था, एक व्यावसायिक सौजन्य ! छे: छे: धर्म का व्यवसाय करने वाले हृदय हीन लोग कैसे भगवान की सेवा के

योग्य हो सकते हैं। तभी तो निरन्तर भगवान के चरणों में रत होते हुए भी इनको भावनाएँ शुद्ध नहीं हो पाती और न हीं इन्हें जन्म जन्मान्तरों तक भगवान का परम पद प्राप्त हो पाता।

मुमुक्षु चुपचाप मन्दिर से अकेले निकल पड़े। सोचा बेट–द्वारका पहुँचकर साधु मस्तराम का पता चल ही जाएगा। मन्दिर की गली से निकल कर वे चौराहे पर आए तो उन्होंने देखा कि एक दूकान की आड़ में बामन खड़ा है। उन्हें देखकर वह मुस्कुरा दिया।

"क्यों जी ! आज आने का वायदा करके तुम नहीं आए ?"–मुमुक्षु ने पूछा।

"कैसे आता।"–बामन ने धीरे से कहा –"पुजारी जी ने आने को मना कर दिया था।"

"पर वे तो कह रहे थे कि बामन आज बहुत व्यस्त है।"

"बिलकुल झूठ।"– बामन ने चिढ़कर कहा–"मैंने तो आपसे पहिले ही कहा था कि अगर उसे मालुम हो जाए कि आपसे कुछ अधिक मिलने की उम्मीद नहीं तो वह आपको दूसरा ही आदमी नजर आएगा। कल रात जब मैंने उसे आपकी बातें सुनाई तो भनक गया, बोला तू कल मन्दिर में मत आना ! अरे साब पक्का लालची ब्राह्मण है ... पक्का !"

मुमुक्षु को बामन की बात सुनकर हँसी आ गई। वे बोले—"अरे भाई ये दुनिया है, यहाँ हर तरह के लोग मिलेगें।—अच्छा तो यहाँ आज क्या मुझे अकेला ही जाना होगा ?"

"नही साब ! मैं अपने वायदे का पक्का हूँ इसीलिए तो यहाँ कबका खड़ा आप का रास्ता देख रहा था। पुजारी की तरह मैं लालची नहीं, आप मुझे कुछ दें या न दें पर जाने क्यों मुझे आप पर श्रद्धा हो गई है।"

मुमुक्षु ने बामन के निष्कपट स्नेह को मुस्कुराकर स्वीकार किया, वे बोले—"तुम बहुत अच्छे लड़के हो बामन। आओ पहिले हम थोड़ा नाश्ता पानी करलें फिर बेट की द्वारका साधु जी के दर्शन करने चलेगें।"

बामन मुमुक्षुराम के साथ चल दिया।

द्वारका से बस द्वारा मुमुक्षुराम और बामन ओखा आए और वहाँ से बेट की द्वारका के लिए उन्होंने नाव पकड़ी। बेट की द्वारका कच्छ की खाड़ी में एक छोटा द्वीप है, यह महाद्वारका का ही एक भाग है। बेट की द्वारका के दर्शनीय मन्दिरों के दर्शन करवाने के पश्चात बामन मुमुक्षुराम को दीप के पश्चिमी भाग में ले गया, जहाँ दलदल भरा जंगल फैला हुआ था। एक बड़ा बट

वृक्ष दिखलाते हुए बामन ने कहा–"मैंने यहां मस्तराम को देखा था।"

वृक्ष के नीचे एक छोटी सी मन्दरी बनी थी जिसमें लाल सिन्दूर से पुता कोई देवता रखा था। चारों ओर दूर दूर तक जंगल की नीरवता थी। मुमुक्षुराम ने इधर उधर घूमकर साधु को देखने की कोशिश की पर वहाँ किसी मनुष्य का कोई चिन्ह· तक दिखलाई नहीं देता था। बामन के कहने के अनुसार वे वहां वृक्ष के नीचे बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। दो घन्टे बीत गए फिर भी जब कोई न दिखा तो मुमुक्षु ने कहा –"बामन तुम मुझे गलत जगह ले आए। तुम्हारे महात्मा शायद यहाँ नहीं आते।"

बामन क्या उत्तर देता, वे लोग वापस चल दिए। थोड़ी दूर आए होंगे कि एक विचित्र सा अट्टहास उन्हें सुनाई दिया, स्वर बड़ा कर्कश था। मुमुक्षु और बामन चौंक कर रुक गए। बामन बोला –"अवश्य ही यह मस्तराम की हँसी है।"

मुमुक्षु पीछे लौटे तो देखा कि अभी जहाँ वृक्ष के नीचे बैठकर वे प्रतीक्षा कर रहे थे वहीं एक जंगली सा आदमी खड़ा है, केवल उसकी कमर पर कपड़े का एक

गमछा लिपटा हुआ था। वह ऊपर वृक्ष की ओर देखता हुआ हँसने लगा। किसी के आने की आहट पाकर उसने चौंक कर देखा। मुमुक्षुराम उसकी ओर बढ़े आ रहे थे। उस व्यक्ति ने बहुत जोर की अजीब सी घर-घराहट भरी आवाज की। बामन जो डरकर दूर ही खड़ा था, डर से कांप उठा। पर मुमुक्षु रुके नहीं। उस व्यक्ति ने एक बड़ा सा पत्थर उठाकर मुमुमुक्षु की ओर फेंका। मुमुक्षु सहम गए, पर उन्होंने देख लिया कि पत्थर सीधा उन पर नहीं बल्कि उन्हे बचाकर फेंका गया था। उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा –"महात्मा जो मारिए नहीं, मैं आपके दर्शन करने आया हूँ।"

इस पर महात्मा वहाँ से भाग खड़ा हुआ। मुमुक्षु ने पीछा किया। महात्मा इधर से उधर कूदता काँदता जंगल में घुस गया पर मुमुक्षु भी पीछे लगे रहे। अन्ततः एक घने झुरमुट के पास जाकर वह रुक गया। मुमुक्षु भी दौड़ते हाँपते हुए उसके पास जाकर रुके। साधु बहुत क्रोधित था। उसने भभक कर कहा –"अरे दुष्ट मनुष्य तू क्यों मेरे पीछ लगा है?"

वह शुद्ध हिन्दी भाषा में बोला था इसलिए मुमुक्षु को सन्तोष हुआ वे दम लेते हुए बोले –" मैं आपके दर्शन के लिए बहुत दूर से आया हूँ।"

"हूँ मैं क्या देवता हूँ जो मेरे दर्शन करेगा ?" साधु हंस पड़ा फिर बोला – अजीब है ये उल्लू की पट्ठी दुनिया और इसके लोग। जब मैं इस दुनिया में रहना चाहता था तब मुझे इसने जी भर कर ठुकराया। अब जब मैंने इसे छोड़ दिया तो दुनियावाले मेरे पीछे भागते हैं। अरे भाई" साधु ने बहुत दुखी होकर कहा –" मैं सच कहता हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। न मैं योगी हूं न सिद्ध। मैं तो सिर्फ एक प्रेत हूं, जीता जागता इन्सानियत का प्रेत।"

मुमुक्षुराम सहानुभूति से मुस्कुराए और सम्मान के साथ बोले–"मैं आपके पास कुछ लेने नहीं आया हूँ। मैंने तो आपके बारे में आपके विचित्र व्यवहार के बारे में सुना तो मुझे आपसे मिलने की जिज्ञासा हुई। यदि दो बातें आपसे ज्ञान की सुनने को मिल जाएगीं तो मेरा आना सफल होगा।"

"ज्ञान!"–साधु हंसा –"ही ही ही – भला मैं क्या जानूं ज्ञान क्या होता है। न मैंने शास्त्र पढ़े न साधुसंग ही किया मैं तो बस इस दुनिया से चिढ़ कर इसे छोड़ छाड़ कर यहाँ एकान्त में पड़ा हूं। बस मुझे इन्सान की शक्ल से नफरत हो गई है।"

"मैं भी संसार से दुखी हूं और इसीलिए अपना घर द्वार, कारोबार छोड़कर भाग निकला हूं। यहाँ आपके

पास इसलिए आया हूं कि आप अपने अनुभव की कुछ तो बातें बतलाएगें।"

साधु ने आश्चर्य से मुमुक्षु को ओर देखा। जब मुमुक्षु की मुद्रा से उसे विश्वास होगया कि वे जो कुछ कह रहे हैं वह गंभीरता पूर्वक कह रहे हैं तो बोला– "अच्छा ! आओ।"

वह मुमुक्षु को वृक्षों के घने झुरमुट में लेगया। वहाँ वृक्षों के बीच छुपी हुई एक छोटी सी पर साफ सुथरो कुटिया थी। एक ओर कुशासन बिछा हुआ था, कुछ ओढने विछाने के वस्त्र रखे थे। एक मिट्टी के पात्र में पानी भरा रखा था। उसने मुमुक्षु को आसन पर बैठाया फिर ठंडे पानी और जंगली बेरों से उनका सत्कार किया। साधु कुछ देर तक विचार मग्न सा बैठा रहा फिर बोला – "सुनाओ तुम्हे संसार से क्या दुख हुआ ?"

मुमुक्षु ने अपना परिचय देते हुए अपनी सारी राम कहानी कह सुनाई। सुनते सुनते साधु की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने बड़ी दीन वाणी में कहा –"मित्र जैसे तुम्हें भाग्य ने मारा वैसे ही मुझे भी पछाड़ा फिर मै अपने भाग्य को कम और अपने समाज और दुनिया को अधिक दोषी ठहराऊंगा। सारी की सारी समाज व्यवस्था ही सत्यानासी है। मैं तुम्हें अपनी दुख कथा नहीं

सुनाऊंगा। मैं उसे भूल चुका हूं, अतीत के गर्त में वह समा गई है। सन्यास ले लेने के बाद मैं अपने हाथों अपने पूर्व जीवन का तर्पण कर चुका हूं। मैं तो तुम्हें बस इतना बतलाऊंगा कि संसार के काल चक्र ने मुझे ठगा और ऐसा सताया कि मैं क्षण भर के लिए सुखी न हो पाया। मैंने जिसे जिसे अपना समझा उसीने बिराना पन दिखलाया, जिस पर भरोसा किया उसी ने धोखा दिया। जिसे स्थायी समझा वह अस्थायी निकला अरे सबका सब झूठ एक दम स्वप्न की माया सा नकली लगा। यहाँ तक कि मुझे अपने आप पर विश्वास न रहा। मैं स्वयं अपने से भय खाने लगा।

एक दिन जब मैं चारों तरफ से निराश, संसार से उदासीन, अपने आप से ऊबा अपने कक्ष में अकेला बैठा हुआ था तो मुझे अपनी स्थिति का स्मरण हो आया। मेरे परिवार के सभी जन तीन माह के अन्दर अन्दर मृत्यु का वरण कर चुके थे। धन संपत्ति मेरे पास जो कुछ थी उसे मेरी विपत्ति का लाभ उठाकर लोग हड़पने को कोशिसें कर रहे थे ? मैं उस दिन सोचने लगा – समय कितना बलवान है ? .. हा कल तक मैं अपने को भाग्यशाली समझता था। पर आज दुर्भाग्य की छाया ने मुझे क्या से क्या कर दिया ... कैसा है यह काल चक्र ? कौन अब

तक इसको कठिन चक्की में पिसने से बच रहा है ? विचित्र है इसकी गति ?– कभी न रुकने वाली गति .. जिसका न ओर है न छोर। जो निकल गया है वह फिर कभी नहीं आएगा, जो आज है वह कल नहीं होगा और यही तो ... यही तो एक पहेली है जो हजारों साल से अन-सुलझी चली आ रही है। मेरे मन में बस यही एक वेदना चुभती रहती–मैं वह था, मेरा वह था ! वह सभी कुछ अच्छा था। इस भावना ने मेरे मन में एक स्थायी ग्लानि को जमा दिया। यह सच है कि समय के इस अनन्त बहने वाले क्रम में, इस अनादि राह में, जो एक बार खो चुका है वह फिर नहीं मिल सकता किन्तु फिर भी मन से तो उसकी स्मृति लोप नहीं होती। वह स्मृति एक चुभन सी हमेशा कसकती रहती है। मैंने इस स्मृति को भुलाने की बहुत कोशिश की–वह अतीत जो अब स्वप्न की तरह मिथ्या था, मिथ्या की तरह 'व्यर्थ था। वह लाखों सुखों से पूर्ण था पर अब गुजर जाने पर उसका क्या महत्व था। आज उन सुखों को याद कर मुझे वेदना हो रही थी। तो वह सुख भी दुख के ही रूप थे–और यह दुख यही इस समय चक्र की गति का रूप है। जहां तहां दुख ही दुख है, सुख जो है वह भी दुख के लिए है और ऐसे सर्व व्यापी दुख से समझ में नहीं आता मनुष्य

कैसे बच सकता है ? अतीत! अतीत! हा अतीत! मैं तुम्हें फिर से चाहता था पर मैं जानता था कि वह जो एक अनादि बहने वाले क्रम में कहीं खो गया है फिर नहीं मिलेगा। ... और यह आज जब कि मैं अपना सब कुछ खोकर, सारे अपनों से बिछुड़ कर एकाकी और रिक्त बैठा हूँ, मेरे जीवन में एक खालीपन लेकर आया है। अतीत के साथ लगता है मेरा आज भी टूट गया है, सभी कुछ बिखर गया है। कुछ इस तरह से वर्तमान अस्त व्यस्त हुआ है कि उसके धुँधलके में आने वाले कल की कोई किरण दिखलाई नहीं देती। जाने क्या होगा ? परिस्थितियों का अनन्त प्रवाह कहां बहा ले जाएगा ? कौन जाने ? फिर जीवन में कौन कौन मिलेगें, अच्छे होंगे या बुरे होंगे...पर क्या सुख मिलेगा ; क्या काले अतीत और उजड़े आज की वेदना से मुक्ति मिलेगी ? ......ओह मानव की क्या बिसात है ? ... यह संसार एक ऐसी भदरंग जगत है जहाँ या तो तमाम बेकार की चीजें इकट्ठी हो गई हैं जिनका कोई मतलब नहीं, जिनका कोई उद्देश्य नहीं या यहाँ की चीजों की कोई ऐसी बुलन्दी है जिनतक हमारी समझ नहीं पहुँच सकती। लाखों इन्सान कीड़े मकोड़ों की तरह आते हैं और मर जाते हैं। इन्सान ने ईश्वर की इस लापरवाही को देखकर

ही एक दूसरे की जान लेना सीखा है। उसने भी कोड़े मकोड़ों की तरह ही एक दूसरे की जिन्दगी को बेमतलब और निरुपयोगी समझा है और जब चाहा है तब अपनी ताकत से उसे मसल दिया है। पर मनुष्य ईश्वर की निर्ममता का मुकाबला नहीं कर सका। ईश्वर बनाकर बिगाड़ता ही नहीं– बिगाड़ कर बनाता भी है। इन्सान केवल बिगाड़ सकता है बना नहीं सकता। इसीलिए इन्सान को इस ईश्वर के सामने घुटने टेक देने पड़ते हैं। ईश्वर के कामों में किसी का दखल नहीं है, उसकी बातों को कोई नहीं समझ सकता !"– मस्तराम कहते कहते रुका, आवेश से उसका मुँह लाल हो गया था। मुमुक्षुराम समझ रहे थे कि मस्तराम का मानसिक सन्तुलन या तो ठीक नहीं है या वह जो कुछ कहना चाहता है, उसे ठीक से कह नहीं पा रहा। मस्तराम ने फिर कहा –"और जनाब मेरा दिमाग सनक गया। मुझे न तो संसार से मोह रहा था और न इसे बनाने वाले के प्रति ही कुछ श्रद्धा। मैं जानता था कि मेरा विवेक, मेरी तर्कनाएँ कोई स्वीकार नहीं करेगा और न कोई समझेगा। लोग मुझे पागल कहेगें पर मेरी हस्ती तो वह होगी जहाँ न दुख होगा न सुख होगा, जब हँसी आएगी हँस लूंगा, वेदना होगी रो लूंगा, बोलना चाहूंगा खूब

बोलूँगा और बस एक ऐसे जीवन के क्रम में बहूँगा जो अनजाना, अनसमझा होगा। और यह निश्चय कर मैं चला आया इस एकान्त निर्जन में— यहां बस मैं हूँ और मेरा अस्तित्व है। मैं अपने आप में खुश हूँ। न मुझे किसी की चाह है न किसी का डाह।"—और मस्तराम पागलों की तरह हँस पड़ा।

मुमुक्षु को साधु की बात कुछ समझ में आई कुछ नहीं आई। सब मिलाकर मस्तराम उन्हें दीवाना हो लगा। इस प्रकार का एकान्त और निष्प्रयोजन जीवन क्या कभी आनन्द का कारण हो सकता है ? पर साधु मस्तराम को इसी में शान्ति का अनुभव होता है। मुमुक्षुराम ने प्रत्यक्ष कुछ न कहते हुए मस्तराम को धन्यवाद देते हुए उससे बिदा ली। मस्तराम आवेश में था। वह मुमुक्षुराम को स्नेह—पूर्वक उस वट वृक्ष तक पहुँचाने आया। बांमन वहीं खड़ा हुआ बड़ी बेचैनी से मुमुक्षुराम की प्रतीक्षा कर रहा था, उसका मुँह भय के मारे पीला पड़ा हुआ था। मुमुक्षु को देखकर वह प्रसन्न हो गया। मस्तराम से विदा लेकर मुमुक्षुराम बामन के साथ वापिस चल पड़े।

१९

तोसरे दिन मुमुक्षु हरिचरण के मन्दिर से विदा लेकर चल पड़े। उनका मन पुजारो को व्यवसायी वृत्ति से पहिले से हो नाराज हो गया था इसलिए सिर्फ पाँच रुपय भेंट चढ़ा दिए। हरिचरण को भो उनसे अधिक की आशा नहीं रही थी, वह उन्हें द्वार तक भी पहुँचाने नहीं आया। पर बामन पुजारी से छिपकर उनके साथ स्टेशन तक चला आया।

रेल्वे-स्टेशन पर काफी भोड़ थी। मुमुक्षुराम के पास अब पैसे को कमो थी, और वे प्रथम श्रेणो में यात्रा नहों कर सकते थे, अत: उन्होंने मथुरा का एक तृतीय श्रेणी का टिकिट खरोद लिया। लोगों से खचाखच भरे हुए एक डिब्बे में उन्हें बामन ने जबर्दस्ती सवार करवा दिया। थर्ड क्लास में बैठने को मुमुक्षु को बिल्कुल आदत नहो थी, बड़ी कठिनाई से उन्हें एक सोट पर बैठने का थोड़ा सा स्थान मिल गया, पर गाड़ी इस तरह ठसाठस भरी हुई थी कि दम घुटा जा रहा था। गाड़ी चली तो मुमुक्षुराम ने जबरन बामन के हाथ पर पाँच रुपये का एक नोट रख दिया। बामन ने बड़े संकोच के

साथ स्वीकार किया ; दो दिन के साथ से ही उनके बीच आत्मीयता हो गई थी। बामन ने हाथ हिला हिला कर उन्हें बिदा दी।

जब गाड़ी चल पड़ी तो डब्बे में ताजी हवा आई और कुछ राहत मिली। मुमुक्षुराम के पास एक गरीब सा आदमी बैठा था, उसने आदर के साथ पूछा–"कहां जाएगें सेठ जी।"

"मथुरा जा रहा हूँ और आप ?"–मुमुक्षु ने उत्तर देते हुए पूछा।

"मैं तो अंकलेश्वर जाऊँगा।"

"घर है वहां ?"–मुमुक्षु ने पूछा

"नहीं रहने वाले तो हम हैं मुजफ्फरपुर के पर हमारे पिता अंकलेश्वर जा बसे थे।"

द्वारका–दर्शनों के लिए आए थे ?"

"हां पिता को तीरथ कराने लाए थे।"–उसने अपने साथ वाले वृद्ध की ओर इशारा करते हुए कहा।

"अच्छा ये आपके पिता जी हैं–और आपका काम धंधा ?"–मुमुक्षु ने उत्सुकता से पूछा।

"दूध का धंधा है साब ! अंकलेश्वर में एक छोटी सी दूकान है।"

"बड़ा अच्छा धंधा है तुम्हारा।"

"अरे काहे का अच्छा धंधा है साब ! दुनिया भर की अफरा–तफरी करो तब दो पैसे बनते हैं।"–दूध वाले ने अपना असन्तोष व्यक्त किया।

"अरे भाई सोधा साधा तो धंधा है तुम्हारा ? दूध लाओ और बेंचो, होगया काम।"मुमुक्षु ने हंसकर कहा।

"न बाबूजी"– बूढ़ा जो इनकी बातें ध्यान से सुन रहा था, बीच में बोला –"धंधा तो कोई भी सीधा नहीं होता। दुनिया भर से दूध लाआ और लोगों को घर घर देने जाओ और फिर पैसे वसूलो के लिए चक्कर लगाओ।"

"तो क्या लोग पैसे नहीं देते ?"

"देते तो हैं सब पर ज्यादातर लोग रोरोकर देते हैं। कुछ को तो आदत पड़ी हैं कि लेना जानते हैं देना नहीं। दूध रोज सबेरे टेम पर चइए जो न मिला तो साब सिर पे चढ़ जाएगें और पइसे के नाम आँखे तरेरेगें।"

मुमुक्ष कुछ देर चुप रहे फिर बोले–" अच्छा दूध में पानी मिलाते हो या नहीं ?"

दूधवाला युवक हंसा बोला –"बिना पानी मिलाए कहीं दूध का व्यापार हुआ है ?"

"क्यों पैसे दूध के लेते हो या पानी के ?"मुमुक्षु ने गंभीर होते हुए पूछा।

"दूध के भो और पानो के भी। साब! हम लोग चाहे

विल्कुल पानो न डालें पर भला कोई मानने को तैयार होगा कि दूध में बिल्कुल पानी नहीं है। लोग निखालिस दूध में भी शक करते हैं सच कहूँ साब आज लोग असली दूध कैसा होता है यहो भूल गए हैं। कैसा ही दूध दो कहेंगे यही कि पानी मिला है। तो जब बदनाम ही हैं तो पानी मिलाने में क्या हर्ज ?"

मुमुक्षु को वह बात जँचो नहीं, वे बोले –'पर ईमानदारी बनाये रखने से ही तो लोगों में विश्वास बनता है।"

"पर साब बेइमानो और विश्वास का सवाल हो कहाँ है। सब जानते हैं और हम भी कहते हैं कि इस में पानो मिला है तो फिर बताइए बेइमानी कहाँ हुई।" दूधवाला हँसने लगा। मुमुक्षुराम ने उसके तर्क पर मुस्कुरा दिया।

गाड़ी एक स्टेशन पर आकर रुक गई थी। कुछ लोग उतरे, काफी लोग चढ़े। एक गृहस्थ अपनी पत्नी और बच्चों के साथ किसी तरह डिब्बे में घुस आया। वह बराबर लोगों को आगे की ओर धकेलता रहा। उसकी दुबली पतली स्त्री एक तीन चार साल के बच्चे को अपनी गोद में टाँगे थी। दो छोटी छोटी कन्याएँ बीच में थीं। स्त्री भीड़ में सरकते सरकते ममक्षराम के पास

तक आ गई थी, वह बच्चे को गोद में टाँगे बड़ी कठिनाई से खड़ी थी, गाड़ी चली तो वह गिरते गिरते बची। मुमुक्षुराम से उसकी तकलीफ न देखी गई, उन्होंने उठकर अपनी जगह उसे दे दी। स्त्री बैठ गई तो उसका पति भी पास सरक आया। दोनों बड़ी बच्चियां भी माँ से सट कर खड़ी हो गईं। इस सरका सरकी में मुमुक्षु को अपने स्थान से हट जाना पड़ा। वे भीड़ में बड़ी कठिनाई से ही खड़े रह पा रहे थे। उन्होंने उस गृहस्थ की मुद्रा देखा, वह लम्बा खलोता जैसा कोट पहिने था। गोल चेहरे पर गोल फ्रेम की एनक के पीछे, उसकी आँखें किसी तोते की आँखों की तरह लगती थीं। उसने मुमुक्षु की ओर वैसे ही देखा, मुमुक्षुराम मुस्कुरा दिए। उसकी गोल आँखों में आश्चर्य आया फिर वह खिड़की से बाहर देखने लगा।

जब उसने दूसरी बार देखा तो मुमुक्षु ने पूछा—"कहाँ जा रहे हैं ?"

"अहमदाबाद।"—गृहस्थ ने इस तरह कहा जैसे उसे मुमुक्षुराम का बोलना पसन्द नहीं आया फिर वह झटके से बोला—"और आप कहाँ जाइएगा ?"

"मथुरा।"—मुमुक्षु ने उत्तर दिया।

पर जैसे उस व्यक्ति को मुमुक्षु के उत्तर में कोई

रुचि न थी। उसने तो उससे प्रश्न किया गया था इसलिए उसके बदले में प्रश्न पूछा था। उसने अपनी जेब से बीड़ी क बन्डल निकाला और एक बीड़ी मुंह में रखकर सुलगा ली फिर वह बिना किसी की परवाह भप-भप धुंए के बादल छोड़ने लगा।

गाड़ी एक स्टेशन पर आकर रुकी। सामने की सीट पर से दो आदमी उठे। जगह खाली होते देख कर गोलमुँह वाला लपका। उसनं फौरन अपनी बच्चियों को वहाँ बैठाल दिया और खुद भी ठँस गया, फिर गुजराती में अपनी पत्नी से छपछप बातें करने लगा। मुमुक्षुराम को उस व्यक्ति की इस स्वार्थ परायण वृत्ति का बड़ा आश्चर्य हुआ, जैसे वह व्यक्ति सारे डिब्बे में अकेला अपने परिवार के साथ हो और जैसे उसे किसी से कोई सरोकार ही न हो।

भीड़ में खड़े मुमुक्षुराम थक गए थे, वे कुछ परेशान भी हो रहे थे। दूधवाला किशन मुमुक्षुराम की परेशानी देख रहा था, वह उठते हुए बोला —"सेठसाब आप खड़े खड़े थक गए होंगे, थोड़ा बैठ लीजिए।

"न जी तुम बैठे रहो —" मुमुक्षु ने हँसकर कहा।

"आप बैठिए तो सही, मैं जरा बाथरूम होकर आता हूं।"— मुमुक्षु से आग्रह करते हुए किशन ने मुमुक्षु के लिए

स्थान बनाया। मुमुक्षु वहाँ तक पहुँचे पहुँचे तब तक गोल टोपी वाले ने अपनी एक बच्ची को वहाँ उसकी माँ के पास धकेल देना चाहा। किशन ने जब देखा कि उसकी जगह पर लड़की आ गई है तो उसे उठाकर गोल टोपी वाले की गोद में धकेलते हुए किशन ने गुजराती में कहा– बापनी गाड़ी समझे छे।"

"ए ! ए!"–गोल टोंपी वाला भनका–"मुँह संभाल कर बोल।"

"दिखता नहीं है तुझे कि जगह बिल्कुल नहीं है फिर भी धकापेल लगाए हुए है। उस भले मनुष्य ने तेरी औरत को जगह दी, वह इतनी देर से खड़ा है इसका तुझे जरा भी ध्यान नहीं है ?"

"मैंने जगह की भीख मांगी थी क्या ?"–गोल टोपी वाला अपनी गोल आँखें तरेरता हुआ बोला– यह तो गाड़ी है जिसे जगह मिली वह बैठ गया।"

"हूँ।" उपेक्षा से कहता हुआ किशन चला गया।

मुमुक्षु को बड़ा आश्चर्य हुआ। मनुष्य किस तरह अपने मतलब के लिए छोटी छोटी बातों के लिए भी कितना स्वार्थी हो जाता है, इसका यह जीता जागता उदाहरण आज सामने आया। घन्टे आध घन्टे की यात्रा और शेष थी पर उसमें बैठने भर की जगह के लिए उस

गोल टोपी वाले ने अपनी नग्न स्वार्थ परायणता का परिचय दे डाला। रेल्वे गाड़ियों में यात्रा करते समय इस प्रकार की स्वार्थ बुद्धि के दर्शन सहसा हो ही जाते हैं। एक बार अपने को जगह मिली तो दूसरे की तकलीफ वे बिल्कुल भूल जाते हैं। खुद पसरे हुए बैठे रहेगें। मौका मिलेगा तो टाँगे फैलाकर लेट जाएगें पर किसी खड़े हुए परेशान यात्री को बैठने के लिए नहीं कहेंगे।

१६

अहमदाबाद से गाड़ो बदलकर मुमुक्षुराम बड़ौदा आए। वहाँ से मथुरा के लिए गाड़ी बदलनी थी। भाग्य से उन्हें मेल में एक रिझर्व सीट मिल गई। गाड़ी जब चली तो उनका ध्यान अपनो पास वाली सीट पर बैठे युवक को ओर गया। वह एक साधारण सा स्वस्थ नव-युवक था पर उसकी वेश भूषा कुछ ऐसी थी जिसके कारण मुमुक्षुराम का ध्यान आकर्षित हो गया। वह भगवे रंग का कुर्त्ता और उसी रंग की धोती पहिने हुए था। दाड़ी मूछ बढ़ी हुई थीं पर शिर के बाल फेशन से कटे हुए थे। वह बडे ध्यान से एक अंग्रेजी अखबार पढ़ रहा था।

"अरे सहजानन्द जी! ओ सहजानन्द जो!" डब्बे के दूसरे छोर से किसी ने पुकारा। युवक ने अखबार से आँखें हटाकर ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"कहिए जो।"

"अरे आओ कुछ नाश्ता पा जाओ।" युवके के साथो ने बुलाया। मुमुक्षु ने देखा डब्बे के अन्त की सीटों पर तीन चार और भगवे वस्त्र धारो यात्री जमे हुए थे। उनके पड़ोस का युवक सहजानन्द अखबार नीचे रखकर

अपने साथियों के पास चला गया और वहाँ से एक केले के पत्ते पर नाश्ता ले आया। पत्ते पर पूरी, हलवा, कुछ नमकीन और चार छः फल थे। उसने लाकर पत्ता अपनी सीट पर रखा और मुस्कुराते हुए मुमुक्षु की ओर देखा। मुमुक्षु उस पर से दृष्टि हटाएं इसके पूर्व ही वह बोला–"आइए नाश्ता कीजिए।"

मुमुक्षु इस आकस्मिक निमंत्रण के लिए तैयार न थे। उन्होंने सहज संकोच से कहा –"आप पाइए।"

"लीजिए यह तो भगवान की प्रसादी है।"–उसने एक पूरी पर कुछ हलवा रखा और मुमुक्षु की ओर बढ़ा दिया। मुमुक्षु अस्वीकार न कर सके। उसने इसी प्रकार एक एक पूरी और हलवा अपने अन्य सह यात्रियों को भी देना चाहा, कुछ ने लिया कुछ ने अस्वीकार कर दिया। फिर वह स्वयं खाने लगा। मुमुक्षु को उसका स्वभाव बहुत रुचा। अन्त में उसने एक केला मुमुक्षु को देते हुए पूछा –"कहाँ तक जा रहे हैं ?"

"मथुरा !"–मुमुक्षु ने उत्तर दिया–"और आप ?"

"जाना तो हमें भी मथुरा है, पर दो दिन के लिए हम कोटा उतरेगें।"

"आप सन्यासी हैं ?"–मुमुक्षु अन्ततः पूछ बैठे।

"हाँ भी और नहीं भी ।"–सहजानन्द ने मुस्कुराकर कहा ।

"सो कैसे ?"

"ऐसे कि सन्यासियों के वेष में साधुओं की मण्डली के साथ हूँ इसलिए सन्यासी हूँ, पर मैंने न तो अभी तक सन्यास लिया है और न मन में सन्यास की भावना जागी है ।"

"तब फिर यह साथ कैसे क्या जमा है ?"–मुमुक्षु-राम का कौतुहल बढ़ता जा रहा था ।

युवक मुस्कुराया बोला–"मैं अल्मोड़ा का रहने वाला हूँ । मेरा एक भाई बम्बई नौकरी करने आ गया था सो मैं भी बचपन से ही उसके पास आ गया । पढ़ाई–लिखाई बम्बई में ही हुई । मैट्रिक पास करके एक आफिस में नौकरी करली । पर बम्बई की जिन्दगी से मैं बड़ी जल्दी ऊब गया । उफ ! कहने को इतना बड़ा शहर पर न उठने को स्थान न बैठने को जगह । एक छोटा सा कमरा भैया ने अटका रखा था उसी में भैया, भाभी, उनके चार बच्चे और एक छोटी बहिन जो अल्मोड़ा से भाई के पास रहने चली आई थी । बाहर गटर के पास रास्ते में सो सो कर मैंने आठ साल बिता दिए । उधर मेरी शादी की बात चल पड़ी । पर बम्बई में कीड़े

मकोड़ों की तरह जीना मेरी आत्मा ने स्वीकार नहीं किया। मैं नौकरो छोड़कर अल्मोड़ा चला आया पर वहाँ भी मन नहीं लगा। कनखल में हमारे कुल गुरू का आश्रम था वहाँ चला आया। हमारे कुलगुरू स्वामी नित्यानन्द जं बहुत भले आदमो हैं। मैं आया तो उन्होंने बड़े प्यार से मुझे रखा। उनके साथ मेरा मन ऐसा रमा है कि बस फिर वापिस नहीं गया।"

"इसका मतलब तुम्हारा इरादा सन्यास लेने का है।"–मुमुक्षु ने पूछा।

"नहीं"–निकट सरककर युवक ने कहा–"वैसे स्वामी जो को विश्वास है कि मैं सन्यासी बन जाउँगा। मेरा नाम भी उन्होंने रमेश से बदल कर सहजानन्द कर दिया है पर अभी तक सन्यास में मेरी आस्था नहीं बैठी है। पर स्वामी जी में मेरी बड़ी आस्था है। भारत भर में उनके भक्त हैं। अभी हम लोग सूरत गए थे, वहाँ चतुर्मास करके लौटे हैं। मथुरा से जन्माष्टमी के लिए इनके गुरू भाई महात्मा कृष्णानन्द जी का निमंत्रण बहुत पहिले से मिला हुआ है सो मण्डली वहां जा रही है पर बीच में कोटा के भक्तों ने आग्रह कर के दो दिन के लिए रोक लिया है... इस तरह साल भर हम लोग भ्रमण करते रहते हैं। भक्तों की श्रद्धा के क्या कहने,

प्राण न्योछावर किए देते हैं। महात्मा जी के चरणों में लोट पोट होते हैं। रुपया-पैसा, मेवा-मिठाई भेंटादि का तो कोई हिसाब किताब ही नहीं है। इसलिए किसी बात की चिन्ता हम लोगों को नहीं करनी पड़ती। विशेष कर मेरा मन तो इसीलिए रमा है कि सम्पूर्ण सुविधाओं सहित मैं भारत भ्रमण कर रहा हूँ। यह सब स्वामी जी की कृपा का ही परिणाम है।"

"पर क्या तुम्हें महात्मा जी के आत्मज्ञान और उपदेशों पर भरोसा नहीं ?" -मुमुक्षु ने आश्चर्य से पूछा।

"विश्वास का तो प्रश्न ही नहीं उठता "-युवक ने गंभीर होकर कहा-"सच बात तो यह है कि मुझे उनकी ज्ञानध्यान की और आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी बातों में रस ही नहीं आता इसलिए मैंने कभी उन्हें ध्यान से सुना ही नहीं। वैसे मेरा अनुभव है कि वे स्वयं कहते कुछ हैं , करते कुछ हैं। सब छोड़ दो भगवान की परम भक्ति करो, निस्पृह रहो, माया मोहादिक दुर्गुणों को त्याग दो। जब यह उपदेश है तो फिर स्वयं क्यों ऐसा वैभवशाली जीवन बिताते हैं ? हमेशा प्रथम श्रेणी में यात्रा करते हैं, हमारे साथ तृतीय श्रेणी में वे कभी नहीं बैठ सकते। फल और दूध का आहार करते हैं ...-"युवक कहते कहते रुक गया जैसे उसे स्मरण आया हो कि वह कुछ अवांछनीय कह

गया। कुछ सोचकर बोला—"आप यह न सम्भिए कि मैं गुरू निन्दा कर रहा हूँ, पर आपने सन्यासो बनने के विषय में पूछा इसलिए प्रसंगवश यह सब कह गया हूँ।"

"मैं समझ रहा हूँ।"— मुमुक्षु ने सांत्वनापूर्ण शब्दों में कहा।

"वैसे हमारे गुरू नित्यानन्द जो महाराज बड़े चमत्कार महा पुरुष हैं तभी तो लोग उनकी पूजा करते हैं। साहब उनका प्रभाव देखने योग्य है। भला आप मथुरा कैसे जा रहे हैं?"

"तीर्थ यात्रा के लिए।"—मुमुक्षु ने सहज ही कहा।

"कहाँ ठहरेगें?"

"यह तो अभी निश्चित नहीं।"

"तब तो आप साथ चलिए। कोटा उतर जाएगें वहां दो दिन रुक कर हम लोग मथुरा चलेंगे। वहाँ स्वामी कृष्णानन्द जी के आश्रम में हमारे ठहरने की व्यवस्था है।

"आपके स्वामो को यह न जंचा तो।"

"वे तो उल्टे प्रसन्न होंगे"— सहजानन्द ने विश्वास के साथ कहा —"हमारे स्वामो जी को आप अभी नहीं

जानते इसलिए ऐसा प्रश्न आपने किया। उनसे मिलेंगे तो आप क्षण भर में उनके आत्मीय हो जाएगें।"

"पर मेरे पास तो मथुरा का टिकिट है।"

"उसकी आप चिन्ता न कीजिए। कोटा से आठ के स्थान पर नौ सीट का प्रबन्ध हो जाएगा।"

मुमुक्षुराम ने स्वीकृति दे दी। वे तो चाहते ही थे कि इस प्रकार उनका एक महात्मा से परिचय और सत्संग हो।

१७

कोटा स्टेशन पर बड़ी धूम धाम थी। दो तीन सौ लोग महात्मा नित्यानन्द जी के स्वागतार्थ वहाँ आए हुए थे। मुमुक्षुराम भी सहजानन्द के साथ गाड़ीसे उतरे। प्रथम श्रेणी के कम्पार्टमेन्ट में से महात्मा नित्यानन्द जी को उनके भक्तों न उतारा और पुष्पमालाओं से लाद दिया। स्टेशन उनके जय जयकार से गूँज उठा।

महात्मा जी को उनके शिष्यों सहित धूम धाम से नगर के सत्संग-मन्दिर ले जाया गया। बड़ा सुविधा जनक प्रबन्ध था। दोपहर को अवसर पाकर सहजानन्द ने महात्मा जी से मुमुक्षुराम का परिचय करवाया। मुमुक्षु-राम ने अपना सारा वृत्तांत महात्मा जी को सुनाते हुए कहा कि इस प्रकार वे महात्मा निधिध्यासन जी के उपदेशानुसार सत्य की खोज करने, जगत–दर्शन के लिए निकले हैं।

महात्मा बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने हँसकर कहा–"तु धन्य हो सेठजी जो ऐसे पुण्य संकल्प तुम्हारे मन में जागृ हुए हैं। भगवान की महिमा अपार है, वे जाने किस रूप में किस घटना से हमारा कल्याण कर देते है। अवश्य ही

तुम्हारे मन को परम शाँति का भंडार मिलेगा। जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी बैठ।"

दूसरे दिन महात्मा जी का प्रवचन होना था। सत्संग भवन लोगों से खचाखच भरा पड़ा था। महात्मा नित्यानन्द जी बहुत दिनों बाद कोटा पधारे थे इसलिए भक्तों की श्रद्धा और प्रेम उमड़ा पड़ता था। प्रारंभिक प्रार्थना के बाद मीठी और शान्त वाणी में महात्मा जी ने कहना प्रारंभ किया –"उपस्थित पुण्यात्माओं! बहुत समय के पश्चात् मुझे आपके बीच आने का अवसर मिला है। संयोग और वियोग मनुष्य के वश की बात नहीं। मैं उन्हें ईश्वर की इच्छा के रूप ही मानता हूँ। संयोग भगवान की कृपा का ही परिणाम होता है, इसलिए आज का यह संयोग भगवान की कृपा ही समझना चाहिए।'– सभा भवन तालियों से गूँज उठा, महात्मा बोले "मैं आज मानव जीवन के रहस्य और उसके सुख दुख आदि पर प्रकाश डालना चाहूँगा। संसार में जितने भी जीव हैं उनमें मनुष्य का देह सर्व श्रेष्ठ है। बिना भगवान की कृपा के मनुष्यत्व नहीं मिलता, यह निश्चय है। मनुष्यत्व क्या है? क्यों वह अन्य जीवों की श्रेणी से श्रेष्ठ है? इसका उत्तर यही कि मनुष्य में विवेक बुद्धि है, भले बुरे की पहिचान है। मनुष्य में स्वयं के अस्तित्व के प्रति

जिज्ञासा की क्षमता है। वह अपने और संसार के ____ में सोचता है। अपने बारे में सोचने का मतलब यह नहीं कि वह स्वार्थ बुद्धि में खो जाए। यहाँ तो उसका अर्थ केवल यही है कि वह संसार में क्यों आया है ? यह संसार क्या है ? हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? आदि इन इन प्रश्नों के प्रति जिस मनुष्य के मन में जिज्ञासा होती है वही साधक है और वही वास्तव में मनुष्य है अथवा बिना ज्ञान का जीवन तो पशु भी जीते हैं।

''अब हम देखें कि मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं ? महात्मा भर्त हरि ने तीन प्रकार के बतलाए हैं, श्रेष्ठ, सामान्य और निकृष्ठ !" श्रेष्ठ सत्पुरुष कहलाते हैं जो स्वार्थ का त्याग किए रहते हैं और प्राणीमात्र के कल्याण की कामना से जिनके सारे कर्म होते हैं। सामान्य या साधारण पुरुष वे होते हैं जो अपने व्यवहार में भले बुरे का ध्यान रखते हैं। जो कोई काम करने के पहिले यह देख लेते हैं कि उससे किसी को कोई कष्ट न हो। वे परोपकार के लिए भी अपने जीवन में अवसर निकाल लेते हैं।

"निकृष्ट मनुष्य की श्रेणी में वे लोग आते हैं, जिन्हें अपना स्वार्थ सर्वोपरि लगता है, जो अपने लाभ के लिए

दूसरों का गला काटते हों। वे देखने में मनुष्य भले ही हों पर पशुओं से भी हीन राक्षस तुल्य हैं।

"मनुष्य निकृष्ट तभी बनता है जब उसका घोर पतन होता है। 'जीव जीवस्य भोजनं' वाली उक्ति के अनुसार मनुष्य जब अपनी तुलना दूसरे जीवों से करके उन जैसा व्यवहार करने लगता है तो वास्तव में वह एक कीड़ा ही हो जाता है। संसार का क्षणिक सुख, वह सुख जो वास्तव में दुख देने वाला है को ही सब कुछ मान कर चलने वाला अज्ञानी पुरुष आसक्ति के पीछे दौड़ता, पतन के गर्त में गिरता चला जाता है। किसी कवि ने आसक्ति और लोभ के विषय में ठीक ही कहा है कि–"

जो दस बीस हजार भए,
सत होके इजार न लाख मंगेगी।
कोटि अरब खरब असंख्य,
पृथ्वी पती होने की चाह जगेगी॥
स्वर्ग पताल को राज मिले,
तृष्णा अधि के धिक आग लगेगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना नर,
तेरी तो भूख कभी न भगेगी॥

"तो वास्तविक और स्थायी रहने वाला सच्चासुख सन्तोष ही है। यह सन्तोष संसार के बाहरी

पदार्थों में नहीं है। यह तो हमारे अपने अन्दर हो है और इसकी प्राप्ति श्रेष्ठ श्रेणी के मनुष्य को ही होती है क्यों कि वह जो परोपकारी है उसे ही सन्तोष और समाधान मिलता है। एक बात और ध्यान में रख लेना चाहिए कि ज्ञानी और अज्ञानी का भेद मनुष्यों में ही मिलता है। जो आत्मा के व्यापकत्व को जानता है वही ज्ञानी है, जिसे इसका ज्ञान नहीं वह अज्ञानी है। आत्मा हमारा अमर है। वह हमारे प्राणों के साथ हममें विद्यमान है। उसी के कारण हमारी सारी अनुभूतियाँ हैं, शब्द, रस, रूप, गंध इत्यादि का अनुभव है ... पर इस आत्मा का स्वरूप जो है वह निर्लिप्त – विशुद्ध आनन्द स्वरूप है। उसी विशुद्ध आनन्द स्वरूप की प्राप्ति हमारा लक्ष्य होना चाहिए। आत्मचिन्तन, परमपिता परमेश्वर का ध्यान, मनन और परोपकार मानव जीवन को सफल बनाने वाले कर्म और लक्षण हैं। सदा हमें सदगुणों की ओर ही प्रेरित रहना चाहिए। ... ॐ श्री हरि .. "–महात्मा जी ने अपना प्रवचन समाप्त करते हुए कहा–" अब किन्हीं सज्जन को कुछ शंकाएं हों तो उनका समाधान करलें।

"स्वामी जी।"– एक साधारण से व्यक्ति ने उठकर कहा–"मुझे यह बतलाइए कि जैसा कि आपने कहा सुख हमारे अपने आप में हैं पर वह संसार में मिलता भी है या नहीं ?"

"तुम्हारा क्या अनुभव है ?" महात्मा जी मुस्कुराए।

मुझे तो लगता है कि संसार में चारों ओर दुखी ही दुख है। मैंने सुख की खोज में अपना सारा जीवन बिता दिया पर सुख न मिला। मन को सन्तोष नहीं हुआ।"

"तुम्हें सुख न मिला और तुम्हारे मन को सन्तोष न हुआ इसका मतलब यह नहीं है की संसार में वह है ही नहीं। हो सकता है कि तुमने उसकी खोज केवल वहाँ की हो जहाँ वह था ही. नहीं। रेती से तेल निकालने की कोशिस करो ओर यदि तेल न निकले तो इसका मतलब यह तो नहीं हुआ कि तेल है ही नहीं। जिस प्रकार अन्धकार है तो प्रकाश का अस्तित्व है उसी प्रकार दुख है तो सुख भी है। अब तुम जानना चाहोगे कि यह सुख है क्या ? तो सुनो दुखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति यही जीवन का परम लाभ है।

मुमुक्षु पूछ बैठे –"पर स्वामी जी दुख का अभाव कैसे हो? सारा का सारा जीवन तो दुखों से भरा हुआ है। न मैं तब सुखी था जब निर्धन था सभी प्रकार के अभाव थे और न अब सुखी हूँ जब मेरे पास सब सुख सुविधाएँ हैं, धन–सम्पदा है।"

"आप सच कहते हैं। वास्तविकता तो यही है कि आपने अपने आप को नहीं टटोला। संसार तो नश्वर

है, सदैव बनते बिगड़ते रहने वाला, इसलिए जिसका नाश होता है, वह दुखदायी है। इस दुखमय संसार में मनुष्य सुख ढूंढ़ता है, इसलिए दुखी रहता है।"

"पर स्वामी जो हम इस संसार में जीते हैं, यदि यहाँ सुख न ढूंढ़े तो फिर कहाँ सुख मिलेगा ?"—मुमुक्षु ने पूछा।

"अपने आप में ही यह मिलेगा। हमें जब अपने मन में सुख के अभाव का अनुभव होता है तो सुख पाने की कामना का जन्म होता है। पर सुख पाने को यह जो कामना है उसे विषयोग भोग द्वारा पूर्ण करना चाहते हैं, यह चाह ही अशान्ति को जननी है। पर इस कामना की पूर्ति ईश्वरानुभूति से ही होती है, जो परमानन्द की जननी है।"

मुमुक्षु ने पूछा —"इस परमानन्द की प्राप्ति के पश्चात क्या जीवन में फिर और दुख नहीं आते"?

"नहीं दुख तो आते हैं पर उनसे वह अपने को दुखी नहीं मानता। इसके स्थान पर वह अपने को दुखों का साक्षी जानता है।"—महात्मा जी ने कहा।

"इस परम सत्य का दर्शन कैसे हो ?"

"परम सत्य का दर्शन तीव्र जिज्ञासा से ही संभव है। परम सत्य को कोई अपनी शक्ति से नहीं पाता। उसकी प्राप्ति तो उसकी निरहैतुकी करुणा से ही संभव

है और वह करुणा हमारे व्याकुल होने पर अवश्यमेव होती है। इसलिए जो परम सत्य का दर्शन करना चाहता है वह यह विश्वास करले कि वह यहीं है, अभी है, हमें मिल सकता है। यदि विलम्ब हो रहा है तो इसलिए कि हम उसका दर्शन हुए बिना भी आराम से जी रहे हैं। दृश्य सुख का प्रलोभन अभी निशेष-निर्मूल नहीं हुआ है। यह जो दृश्य का आकर्षण है, दृश्य सुख का प्रलोभन है, यही सत्य दर्शन में विलम्ब कर रहा है।... अच्छा ॐ श्री हरि ...... "महात्मा जी ने दोनों हाथ जोड़कर जन समूह को नमस्कार किया फिर शान्तिपाठ के साथ सभा विसर्जित हुई।

मुमुक्षुराम महात्मा नित्यानन्द जी के ज्ञान और उनकी समझाने की शैली से बड़े प्रभावित हुए। अब उनको समझ में आया कि वे क्यों इतने अधिक जनप्रिय हैं, क्यों लोगों के हृदय पर राज्य करते हैं। महात्मा जी ने अपनी क्षमता और सुविधानुसार सभी भक्तों का मन रखा था। किसी को आश्वासन देकर, किसी से दो घड़ी बोल कर, किसी के आमंत्रण को स्वीकार कर, उसके घर पधार कर सभी को सन्तुष्ट किया। भक्त जनों में सेवा की होड़ लगी थी। रुपया, पैसा, भेंट सामग्रियों के

ढेर लग रहे थे। सहजानन्द मुमुक्षुराम को यह सब ठाठ-बाट बराबर दिखलाता जा रहा था।

तीसरे दिन भक्तों ने महात्मा जी को स्टेशन तक पहुँचाकर बड़ी भावभीनो विदाई दी। महात्मा जी का सारा डिब्बा पुष्प मालाओं से लद गया, और जब गाड़ी चली तो स्वामी नित्यानन्द जी की जय जय कारों से वायुमण्डल भर उठा।

१८

मुमुक्षुराम जब स्वामी नित्यानन्द जी के साथ मथुरा जंक्शन पर गाड़ी से उतरे तो रात का पिछला पहर था। स्वामी जी ने दो शिष्यों के साथ सारा सामान तांगे से भागवताश्रम पहुँचा दिया और स्वयं अन्य शिष्यों के साथ स्टेशन से पैदल ही निकल पड़े। मुमुक्षुराम भी साथ चले। अभी तक मुमुक्षुराम ने महात्मा नित्यानन्द जी का वैभव और ऐश्वर्य पूर्ण जीवन देखा था अतः अब इस प्रकार उनके पैदल ही चल पड़ने पर मुमुक्षुराम को आश्चर्य हुआ। वे स्वामी जी के साथ बराबरी से चल रहे थे, पर स्वामी जी की गति कुछ तीव्र थी। सहजानन्द और अन्य शिष्य पीछे पीछे आराम से आते हुए प्रभात की पदावलियां गुनगुना रहे थे। स्वामी जी के साथ चलते चलते मुमुक्षुराम का स्वांस फूलने लगा। स्वामी जी ने यह अनुभव किया तो पूछा–"मुमुक्षु जी ! आपको चलने की आदत न होगी ! कहीं आप थक तो नहीं गए ?"

"नहीं स्वामी जी ! चलने से तो ताजगी आ रही है।"–सचमुच मुमुक्षु स्वांस फूलने पर भी स्फूर्ति अनुभव कर रहे थे। सहसा उन्होंने स्वामी जी से पूछा – "स्वामी जी एक प्रश्न पूछूँ ?"

"हाँ हां कहो ?"–स्वामी जी ने कहा।

"आपको भी तो चलने की आदत नहीं है। मैंने कोटा में तो आपको ताँगे और मोटर से ही आते जाते देखा है। आज स्टेशन से हो पैदल चलते देखकर आश्चर्य हो रहा है ?"

अच्छो जिज्ञासा की मुमुक्षु जो"– स्वामी जो सस्मित बोले –"सुनिए प्रथम तो हम जैसे साधु सन्यासी को सभी विलासता की वस्तुओं से दूर रहना चाहिए। पैदल चलना, भूमि पर सोना और रूखा सूखा खाकर परमात्मा का भजन करना यहो हमारा नियम और धर्म है, पर श्रद्धावान और आस्थावान भक्तों के मन कों ठेस न पहुँचे इसलिए हम उनके द्वारा भेंट किए गए उपादानों को स्वीकार कर लेते हैं, केवल इसलिए कि इससे उन्हे प्रसन्नता होती है। पर हमारी स्वयं को उसमें आस्था नहीं। हम पैदल चलें या मोटर कार में हमारे लिए समान हो हैं। –ईशावास्योपनिषद में कहा भो गया है कि

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्यस्विद धनम्॥

"अर्थात अखिल ब्रह्माण्ड में जा भो जड़ चेतन स्वरूप जगत है यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। उस ईश्वर के सहयोग से त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो, इसमें आसक्त मत

होओ क्यों कि धन ऐश्वर्य तो किसी का होता नहीं।"

दिशाओं में ऊषा की लालियाँ खिल उठीं। सामने पवित्र धारा कल कल छल छल करती बह रही थी। मन्दिरों में घण्टों को मधुर ध्वनियाँ गूँजने लगीं और भक्तों के कंठों से भगवान नाम के उच्चारण वातावरण को मधुर बनाने लगे। यमुना के दर्शन होते ही मुमुक्षु का मन खिल उठा। स्वामी जो ने हर्षित होकर उच्च स्वर में घोष किया –"जय जय यमुना मैय्या की ...... शिष्यों ने उच्चार किया –जय ! और हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! कृष्ण कृष्ण हरे हरे।"– का सस्वर गान प्रारंभ होगया। मुमुक्षु के मुख से भी स्वतः ही भजन की पंक्तियाँ निकल पड़ीं।

वे लोग विश्राम घाट के निकट पहुँच चुके थे। उस समय घाट पर काफो भीड़ एकत्र हो चुकी थी। पंडे अपनी खिचड़ो भाषा में जल्दी जल्दी मंत्र पढ़ पढ़ कर स्नानार्थियों को स्नान करवाने में व्यस्त थे। कुछ स्नानार्थी जमना मैया का जै जै कार कर रहे थे, कुछ तैराक नदी में छपाछप करते हुए नम बम की आवाजें तिकाल रहे थे। एक ओर एक शिला पर बैठा हुआ एक अंधा अपने मधुर स्वर में सूरदास का पद गा रहा था

"हमारे प्रभू औगुन चित्त न धरौ।

समदरसी है नाम तिहारो, सोई पार करो।

पद की मधुर स्वर लहरियाँ घाट पर हो रहे सारे कोलाहल पर छाई हुई, वातावरण में मधुरिमा घोल रही थी।

मुमुक्षु का मन एक सहज प्रसन्नता से भर उठा। उन्होंने यमुना जी को प्रणाम कर जल का आचमन किया फिर वे जल में नीचे उतरे। अभी तक सूर्योदय हो चुका था, यमुना के कृष्ण नील जल पर ... नवोदित सूर्य की सुनहरी रश्मियां थिरकने लगी थीं। मुमुक्षु ने मन ही मन भगवान का स्मरण करते हुए पानी में एक गोता लगाया और दृष्टि एक ओर, जहाँ स्त्रियां नहा रही थीं, आकर्षित हो गई। सामान्यतः मुमुक्षु का ध्यान उस ओर जाने का कोई कारण नहीं था। उनके लिए अब स्त्री सम्बन्धी कोई आकर्षण न रह गया था, पर अभी अभी घाट पर आई एक स्त्री ने उनका ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लिया। वह मध्यम ऊँचाई की एक दुबली पतली स्त्री थी। वह दूध सी श्वेत धवल साड़ी पहिने हुए थी, हाथ में एक ताँबे का घड़ा था, बगल में कुछ वस्त्र थे, चाल में एक सहज सादगी थी। उसने आकर वस्त्र भूमि पर रख दिए, घड़े को एक ओर रख-कर यमुना जी को प्रणाम किया और नहाने के लिए पानी में दो सीढ़ियाँ नीचे उतर गई। उस स्त्री का

ध्यान किसी ओर नहीं था, जैसे वह अपने आप में ही खोई हुई हो। उसने तनिक भी इधर उधर नहीं देखा। गुलाब की पंखुड़ियों से होंठ किसी मंत्र या भजन की पक्तियाँ दुहराते से हिल रहे थे। गोल मुख, सुडौल नासिका, दोर्घ नेत्र और उन पर डले हुए बड़ी बड़ी पलकों के आवरण। आयु अधिक नहीं यही कोई २७–२८ वर्ष की होगी। वह शोघ्रता पूर्वक नहाई फिर वस्त्र बदले तो कुछ इस प्रकार कि एक शरीर का उँगल भर भाग भी किसो को दिखाई नहीं दिया। और भी स्त्रियाँ वहां नहा रही थीं पर यह संयम, वह शालोनता सलज्जा उसकी अपनो थो। इस आयु में ऐसा संयम, इतना स्थिरचित और सीधा सादा ढंग . मुमुक्षु के मन में जाने क्यों उस युवती के प्रति श्रद्धा युक्त स्नेह उमड़ पड़ा। उस स्त्री ने घड़े को पानो से भरा फिर गीले वस्त्र कंधे पर टांग कर जैसी आई थो वैसी हो चली गई।

"मुमुक्षु जी जरा शीघ्रता कीजिए।" किनारे पर से सहजानन्द ने पुकारा।

मुमुक्षु ने हड़बड़ा कर देखा तो स्वामी जी स्नान ध्यान से निपट चुके थे। उन्हे बड़ा संकोच हुआ कि कहीं किसी ने उन्हें उस स्त्री की ओर देखते देखा होगा तो क्या सोचेंगे ? उनकी भावनाएँ भले ही शुद्ध थीं पर दूसरे तो

इसे ताक झाँक ही समझेंगे। मुमुक्षु ने शीघ्रता पूर्वक स्नान से निपट कर वस्त्र पहिने और स्वामी जी के साथ चल पड़े।

विश्राम घाट से कुछ ही दूरी पर यमुना किनारे भागवताश्रम था। आश्रम के चारों ओर ईंट की दीवार का घेरा था। एक ओर पुष्प वाटिका थी, दूसरी ओर बड़े बड़े छायादार वृक्षों से घिरा हुआ आश्रम का सादा और सुन्दर भवन था। आश्रम के द्वार में प्रवेश करते ही चम्पा और चमेली की सुगन्ध ने उनका स्वागत किया। भवन के प्रमुख भाग में मंदिर था। चक्रधारी भगवान कृष्ण की बड़ी भव्य मूर्ति थी। उस समय मन्दिर के प्रांगण में भक्त लोग एकत्रित हो रहे थे। महात्मा कृष्णानन्द जी के प्रमुख शिष्य ने स्वामी नित्यानन्द जी और उनके शिष्यों का स्वागत किया।

स्वामी नित्यानन्द जी ने मुमुक्षु को अपने साथ आने का इंगित किया। एक बड़ा बरामदा पार कर वे एक कक्ष में पहुँचे। वहाँ कक्ष में एक विशाल तख्त बिछा हुआ था, जिस पर महात्मा कृष्णानन्द जी विराजमान थे। स्थूल देह, भव्यरूप, चौड़ा ललाट, करूणार्द्र नेत्र और प्रभाव पूर्ण मुद्रा को देखते ही मन में श्रद्धा की भावना उपजती थी। उन्होंने उठकर स्वामी नित्यानन्द

जी का स्वागत किया। कुशल समाचार आदान प्रदान के पश्चात स्वामी नित्यानन्द जी ने मुमुक्षुराम का परिचय कराते हुए कहा –"ये हैं श्री मुमुक्षुराम जी ! बम्बई के व्यवसायी हैं, तीर्थयात्रा भ्रमण हेतु निकले हैं।"

मुमुक्षुराम ने स्वामी जी को प्रणाम किया। स्वामी जी ने वरद हस्त उठाते हुए कहा –"आनन्द हो ! भगवान श्री कृष्ण की असीम कृपा हो। आप अच्छे अवसर पर मथुरा पधारे हैं। महाजन्माष्टमी का शुभोत्सव निकट है।"

"भगवान की कृपा से ही ऐसे सुअवसर आते हैं महात्मा जी और आप समान महापुरुषों के दर्शन होते हैं।" –मुमुक्षु ने नम्रता से कहा।

"आप जब तक चाहें यहां रुकिए सत्यार्थी जी और साधुसंग, तीर्थ वास का लाभ उठाइए"–स्वामी नित्यानन्द जी ने स्नेह पूर्वक कहा–अब प्रवचन का समय हो रहा है, आप मन्दिर के प्रांगण में चलें।"

मुमुक्षु जब मन्दिर के प्रांगण में आए तो वहाँ काफी संख्या में भक्त लोग एकत्र हो गए थे। एक वयोवृद्ध सारंगी लिए हुए बैठे स्वर मिला रहे थे, उनके पास ही एक छोटा नौ दस वर्ष का बालक था। बालक ने अलाप भरा और सारंगी के स्वरों पर गाना प्रारम्भ किया।

"ब्रह्म मैं ढूंढ़यो पुरानन गानन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन–"

बालक का कंठ बड़ा मधुर था। मुमुक्षु मुग्ध होकर सुनने लगे। मधुर स्वर – लहरियाँ थिरक रही थीं –

"देख्यो सुन्यो कबहुँ न,
किन्तु वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरन हेरत हारि पर्यो,
रसखानि बतायौ न लोग-लुगायन।
देखो दुरौ वह कुटीर में,
बैठो पलोटत राधिका पायन।"

"वाह–वाह! क्या उक्ति है; धन्य है,!" मुमुक्षु के मुख से स्वतः ही निकल पड़ा। रसखान के इस पद को मुमुक्षु ने पहले भो सुना और पढ़ा था, पर आज वह जितना मधुर, जितना सार गर्भित लगा, ऐसा पहले कभो नहीं लगा था। जैसे सचमुच उन्होंने अभी किसी कुटीर में बैठे राधाकृष्ण की झाँकी पा ली हो।

थोड़ी देर पश्चात ही महात्मा कृष्णानन्द जी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। महात्मा कृष्णानन्द जी ने हाथ जोड़कर कहना प्रारंभ किया – श्रद्धालुगण! श्री कृष्ण की सेवा निरन्तर करते रहना चाहिए। सभी सेवाओं में मानसी–सेवा सर्वोत्तम मानो जाती है। मानसी सेवा से

तात्पर्य है चित को पूर्ण रूप से प्रभू में तल्लीन कर देना भगवान के ध्यान में सम्पूर्णत: तल्लीन हो जाने के लिए मनुष्य को तन मन धन से प्रयत्न करना चाहिए। तभी उसे जन्म मरण के दुखों को निवृत्ति और बृह्म का बोध होता है। बृह्म से सम्बन्ध हो जाने पर सत्र के देह और जीव सम्बन्धी सभी दोषों की निवृत्ति हो जाती है। दोष पांच प्रकार के होते हैं—सहज, देशज, कालज, संयोगज, और स्पर्शज। सहज दोष वे हैं जो जीव के साथ उत्पन्न होते हैं। देशज देश से, कालज काल के अनुसार उत्पन्न होते हैं, संयोगज संयोग के द्वारा और स्पर्शज वे हैं जो स्पर्श से प्रकट होते हैं। इन सभी दोषों की निवृत्ति ब्रह्म से सम्बन्ध हुए बिना नहीं होती। किसी भी प्रकार के दोषों से सर्वथा रहित जो वस्तु – तत्व है वह केवल भगवान श्री कृष्ण है। अत: जिन्होंने भगवान श्री कृष्ण को आत्म निवेदन कर दिया है, उन्हे कभी किसी प्रकार की भो चिन्ता नहीं करना चाहिए, क्योंकि भगवान की जिस पर कृपा होतो है, वह आवागमन से छूट जाता है। भगवान श्री गोकुलेश्वर श्री कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण–भजन उनकी चरण रजका सेवन सदा सर्वात्म भाव से करना चाहिए। नित्य निरन्तर सर्वात्म भाव से –"श्री कृष्ण: शरणं मम।"– इस मंत्र का

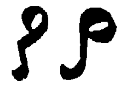
उच्चारण करते रहना चाहिए। आइए कुछ क्षण हम सब सस्वर इस मंत्र का उच्चारण करें"–स्वामी जी का प्रवचन समाप्त हुआ, सस्वर मंत्र का सहगान होने लगा।

मुमुक्षुराम भी ध्यान मग्न होकर मंत्रोच्चारण कर रहे थे। तभी अचानक सभी स्वरों के ऊपर एक मधुर कण्ठ स्वर ने उनका ध्यान आर्कषित किया। मुमुक्षुराम ने ध्यान से देखा तो उन्हें स्त्री समूह में बैठी वही स्त्री दिखाई दी जो घाट पर दिखी थी। इस समय भी उसका मस्तक झुका हुआ था और आंखें भूमि पर गड़ी हुई थीं। मुमुक्षु के मन में इस बार अनायास ही उस स्त्री के विषय में कुछ जानने की जिज्ञासा प्रकट हुई। अवश्य ही वह कोई असाधारण स्त्री थी, वेश भूषा से वह विधवा दिखाई देती थी, चेहरे पर एक भव्य तेज वर्तमान था। मुमुक्षु कुछ क्षण तक उसे देखते रहे फिर उन्होंने अपनी दृष्टि हटा ली।

मन्दिर में आए दर्शनार्थियों में से एक सज्जन श्रीकिशन दास जी से अकस्मात मुमुक्षु का परिचय हो गया। श्रीकिशन दास वयोवृद्ध थे और कानपुर के निवासी थे। बहुत दिनों से अपना घर द्वार छोड़ कर बरसाना में शान्तिपूर्ण एकान्त जीवन बिता रहे थे। वे प्रत्येक माह की शुक्लपक्ष ग्यारस को मथुरा आजाया करते थे और

पूर्णिमा तक वहाँ रह कर फिर बरसाना वापिस लौट जाते थे। जब उन्होंने मुमुक्षुरान की यात्रा के विषय में सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मुमुक्षु को अपने साथ बरसाना आने का आमंत्रण दे डाला। मुमुक्षु की भी भगवान श्रीकृष्ण की लीला भूमि वृन्दावन और बरसाना देखने की बड़ी इच्छा थी अतः वे सहर्ष तैयार हो गए।

दोपहर होते होते, भगवान का भोग लगा फिर आश्रम की मण्डली का सहभोज हुआ, वहां भी मुमुक्षु ने देखा कि वही शुभ्रवसना महिला बड़ी भावना से भोजनालय में सेवा कर कर रही है। –"ओह तो यह भगवताश्रम की रसोई बनाने वाली महिलाओं में से एक है।"– मुमुक्षुराम ने सोचा और मौन भोजन करते रहे।



दूसरे दिन श्री किशनदास जी मुमुक्षु राम को अपने ठहरने के स्थान मुरली मनोहर के मन्दिर में ले गए। यह मन्दिर भगवताश्रम से कुछ ही दूरी पर था और श्री किशनदास जी जब भी मथुरा आते थे स्थायी रूप से वहीं ठहरते थे। मन्दिर छोटा किन्तु स्वच्छ एवं भव्य था। मुमुक्षुराम ने जब भगवान राधाकृष्ण की प्रमुख मूर्ति के दर्शन किए तो वे देखते ही रह गए। इतनी सुन्दर मूर्तियाँ थीं को मन मोह गया और वे बड़ी देर तक टकटकी लगाए भगवान की झांकी देखते रहे। उन्हें लगा जैसे सचमुच उस मन्दिर में बाँके बिहारी साक्षात आकर विराजे हों। धन्य है वह देव स्थान जहाँ दर्शनार्थी के मन में अनायास ही भगवान के साक्षात्कार की अनुभूति हो उठे, उसे देव सान्निध्य का अनुभव हो और कुछ क्षण के लिए वह अपने आपको धन्य अनुभव कर उठे।

दर्शनों के पश्चात मुमुक्षुराम श्रीकिशनदास जी के साथ मन्दिर के आंगन में लगे मोरसली के वृक्ष के नीचे आ बैठे। आपसी चर्चा चल उठी। मुमुक्षुराम ने अपनी द्वारका यात्रा के संस्मरण श्रीकिशनदासजी को सुनाए

तभी अचानक उन्हें प्यास सी महसूस हुई। उन्होंने श्री किशनदास जी से कहा –"यहाँ पीने का जल मिलेगा ?"

"भला कृष्ण दरबार में जल की कमी !" श्री किशन दासजी ने कहा और आवाज लगाई –"तितिक्षा बहिन।"

"हाँ दाऊ जी !" एक कोने वाले कमरे से उत्तर आया

"तनिक एक लोटा जल लइयो।"

"अभी लाई।"

थोड़ी ही देर में एक स्त्री पानी का लोटा हाथ में लिए कमरे से बाहर निकली। मुमुक्षुराम उसे देख कर चौंके, यह तो वही स्त्री थी जिसने घाट पर और फिर आश्रम में उनका ध्यान आकर्षित किया था। वह उसी सादगी से पास आई, पलकें झुकी की झुकी रहीं और उसने पानी का लोटा आगे बढ़ा दिया।

श्री किशनदास ने लोटा लेते हुए आदर से कहा –"मुमुक्षु जी ये हैं हमारी तितिक्षा बहिन, बड़ी ही शुद्ध और सात्विक प्रवृत्ति की देवी हैं।"

"जी।"– मुमुक्षु ने कहा –"मैने इन्हें आश्रम में भी देखा था।"

"हाँ अवश्य देखा होगा,"–श्रीकिशन दास जी ने तितिक्षा से कहा–"और तितिक्षा बहिन ये हैं हमारे मित्र मुमुक्षु जी। बड़ी ही धार्मिक प्रकृति के और साधु

स्वभाव व्यक्ति हैं। –जानती हो इन्हें किस बात की लगन लगी है ?"

"क्या ?"–तितिक्षा के मुख पर जिज्ञासा नहीं छलकी जैसे उसने कुछ पूछना हो हो इसलिए कहा।

"इन्हें सुख की खोज है, ये सारी दुनिया, में सुख ढूँढ़ते फिर रहे हैं।"–श्रीकिशन जी ने कहा।

"सुख ?"–तितिक्षा चौंकी फिर एक फीकी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर उभर आई। उसने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा–"इस दुनिया में और सुख ?"

तितिक्षा को आश्चर्य व्यक्त करते देखकर, मुमुक्षु ने पूछा–"क्यों बहिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

"क्षमा करना भैया"– तितिक्षा ने गम्भीरता से कहा–"मैं आश्चर्य किए बिना रह न सकी, आप सत्य की खोज तो कर रहे हैं पर असत्य में उसे पाना चाहते हैं।"

"आपने ठीक कहा बहिन।"–मुमुक्षु ने बुझे हुए स्वर में कहा–"मैं असत्य में ही सत्य को खोज रहा हूँ। अँधेरे में ही उजाला ढूँढा जाता है। असत्य को जान कर दुख को पहिचान कर ही मुझे सत्य का ज्ञान होगा सुख की प्राप्ति होगी।"

तितिक्षा मौन रही, मुमुक्षु ने कहा –"बहिन ! आप बैठिए न।"

तितिक्षा वहीं भूमि पर बैठ गई फिर बोली–"आप

ठीक ही कह रहे हैं पर यह तो बतलाइए कि आपको ऐसी जिज्ञासा क्यों हुई ?"

"अवश्य बतलाऊँगा ! भौतिक रूप से यदि देखें तो मैं अपने जीवन में पूर्ण सफल हुआ हूँ। करोड़ों की धन संपत्ति और मान-सम्मान सभी मुझे उपलब्ध हुआ पर मैं सुखी न हो सका मुझे सब कुछ देकर भी भगवान ने पुत्र न दिया। एक पुत्री हुई तो वह विवाह के दिन ही विधवा हो गई और इस तरह मुझे लगा कि दुनिया में मुझसा दुखी कोई नहीं, मेरी विपत्ति की समानता किसी और की विपत्ति नहीं कर सकती। परन्तु मुझे एक महात्मा जी ने बतलाया कि संसार में सभी दुखी हैं और हरेक का अपना दुख एक दूसरे से अधिक है। फिर भी इतना असीम दुख होते हुए भी संसार में सुख है और वह लोगों को मिलता भी है। मैं संसार में इसी तथ्य की खोज में निकला हूँ।"

"जाने आपकी बात सही हो ?"–तितिक्षा ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा, उसके मुख पर उसके हृदय की संपूर्ण वेदना उभर आई, बोली–"पर मेरा तो अनुभव यही है कि सुख दुनिया में है ही नहीं। आपने कहा कि आपकी लड़की विवाह के दिन विधवा हो गई, पर जरा मेरी सोचिए कि मुझे तो याद ही नहीं है कि मेरा विवाह

कब हुआ था और कब मैं विधवा हो गई। जब मैंने होश संभाला तब तब मुझे पता लगा कि मैं तो बाल विधवा हूँ।

"ओह बाल विधवा !" मुमुक्षु ने दुखी होकर कहा— "मैं जानता हूँ बहिन ! बाल विधवा के दुर्भाग्य को मैंने अपने घर में भी देखा है। मेरी छोटी बहिन मेरे पिता की अन्तिम इच्छा के कारण छोटी आयु में ही ब्याह दी गई थी और वह बचपन में ही विधवा हो गई। आह . मुझे स्मरण है उसकी वेदना। बहिन यदि बुरा न मानों तो मैं तुम्हारे बीते जीवन के विषय में जानना चाहूँगा।

"मेरे जीवन में ऐसा क्या है भाई जो विशेष हो — बस एक दुख भरी कहानी है।"

"फिर भी मैं सुनना चाहूँगा, शायद मेरा दुख उससे कुछ हल्का हो सके।"

"तो सुनाए देती हूँ। मैं अपने माँ बाप की इकलौती लड़की थी। जब मैं बहुत छोटी थी मेरी माँ बहुत बीमार पड़ीं, उन्हें विश्वास हो गया कि वे नहीं बचेगीं इसलिए मरने के पहिले उन्होंने जमाई का मुख देख लेना चाहा और मेरा विवाह उस अबोध अवस्था में हो कर दिया गया। विवाह के बाद माँ चल बसीं। पिता जी मुझे बहुत चाहते थे, मेरी माँ की यादगार के रूप में वे

हमेशा मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते रहे। वे बड़े सरकारी आफीसर थे, काफी कुछ जमीन जायदाद थी। नौकरी के कारण पिता जी तो जमीन जायदाद की देखभाल नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने अपने छोटे भाई को जायदाद की देखभाल सौंप रखी थी। अचानक एक दिन खबर आई कि किसी एक्सीडेन्ट मे मेरे पति की मृत्यु हो गई और उस दिन मुझे मालुम हुआ कि मैं विवाहित थी। मुझे याद नही आता कि मैंन अपने पति को कभी देखा था। अब तक मैं काफी समझदार हो गई थी और इस घटना ने मेरे मन पर बड़ा आघात किया। पिता जी मेरे दुख का कारण समझते थे। बचपन में मेरी शादी होने के पश्चात पिता जी स्थानान्तर के कारण मेरे ससुराल से दूर चले आये और लड़का अपनी पढ़ाई में लगा रहा –इसलिए उन्होंने कभी उसका मेरे से जिक्र तक न किया था। मैं विधवा होने के बाद हमेशा उदास और दुखी रहने लगी। पिता जी को इस बात का बड़ा सदमा पहुँचा। उन्हें पहिले से ही दिलकी बीमारी थी। दिन रात की उस चिन्ता ने उन्हें बिस्तर पर गिरा दिया और एक दिन उनके हृदय की गति रुक गई ...हा...!"– तितिक्षा का गला रुँध गया और आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। मुमुक्षु भी रो रहे थे, उनकी आँखों में

उनकी कन्या निवृत्ति की आकृति तैर आई थी। श्रीकिशनदास भी दुखित हो गए थे।

"पिता की मृत्यु के पश्चात मुझे लगा मैं इस संसार में अकेली रह गई हूँ क्योंकि मेरे चाचा मुझे बिल्कुल नहीं चाहते थे। जमीन जायदाद तो वे दबाए बैठे ही थे। मुझे विवश होकर उनके यहाँ रहना पड़ा। वहाँ चाचा चाची ने मेरे साथ जो व्यवहार किया वह एक असभ्य मनुष्य अपने पशु के साथ भी नहीं करेगा। वे मेरे से सुबह से शाम तक हर तरह का काम करवाते फिर भी मुझे मार, गालियाँ और अपमान सहना पड़ता। मेरे पिता ने मुझे अब तक इतने प्यार और आराम से पाला था कि मुझे ऐसा दुर्व्यवहार पूर्ण जीवन मृत्यु से भी दुखदायी लगा। मुझे अपने जीवन से ही घृणा हो गई और मैंने आत्महत्या करने की ठान ली।"

"वह अमावस का दिन था, आधीरात बीत चुकी थी। कड़कड़ाती ठंड थी और चारों ओर मौत का सा सन्नाटा था। उस दिन रात को मेरी चाची ने मुझे बिना किसी बात के पीटा था और मैं बिना कुछ खाए पिए आंगन में भूमिपर पड़ी थी। मेरी वेदना उस दिन फटी पड़ती थी। अचानक मैं दृढ़ निश्चय के साथ उठ खड़ी हुई। धीरे से दरवाजा खोला

और घर के बाहर हो गई। नदी किनारे पहुँच कर मैंने एक बड़ा सा पत्थर अपनी साड़ी से बाँधकर गर्दन में बाँधा और मैं पानी में घुस गई।

पर उफ!. पानी इतना ठंडा था कि मैं किनारे पर ही रुक गई। पानी में डूबे मेरे पैर शीत से जमने लगे। मुझे लगा –'मैं कैसी अभागिन हूँ, क्या मैं इसीलिए जन्मी थी कि मुझे एक दिन यूँ मर जाना पड़ेगा?"– और अचानक मुझे लगा कि मुझे जीवन के प्रति कुछ मोह हो गया है? मेरे पिता की तस्वीर मेरी आँखों के सामने घूम गई! आह कितने लाड़ प्यार से उन्होंने मुझे पाल पोस कर बड़ा किया ... यदि आज वे होते तो क्या मेरी यह दशा देख सकते ...... क्या मनुष्य जीवन का यही मूल्य है कि उसे इस तरह अत्याचार के सामने मिट जाना पड़ता है? . जीवन! मनुष्य का जीवन ..."मेरे मन में एक दिव्य विचार आया –"उसकी सफलता तो जीने में ही है, न कि आत्म हत्या में"–और मेरे सामने मीरा बाई का जीवन घूम गया। वह भी स्त्री थी, उसे भी उसके परिवार वालों ने दुखी किया था, यहां तक कि उसे विष देकर मार डालना चाहा पर वह जीवित रही और अमर हो गई। उसने सब कुछ भुलाकर भगवान से लौ लगाई, संसार को ठुकरा कर भगवान की शरण

गई तो धन्य हो गई ...... और ... और मैंने अपने गले से बन्धा हुआ पत्थर खोल दिया। पानी से निकल कर मैं रेल्वे स्टेशन की ओर चल पड़ी। मुझे मालुम था कि गाँव से रात के पिछले पहर एक सवारी गाड़ी मथुरा-वृन्दावन की ओर जाती है। मैं उसी गाडी में बैठ मथुरा आ पहुँची।"

"धन्य है तितिक्षा बहिन धन्य है आपका साहस प्रशंसनीय है।"- मुमुक्षु ने कहा-"पर बहिन इतने बड़े संसार में बिना किसी साधन या सहारे के आप अकेली निकल पड़ीं। आपको इसका भय नहीं लगा?"

"नहीं! मैं अकेली अवश्य थी पर ईश्वर का विश्वास और आत्मबल मेरे साथ था। मैं मौत को जीतकर भगवान की शरण में आई थी इसलिए मैंने एक नए जीवन को पाया था। यह सच है कि दुष्ट दुनिया वालों ने मुझे यहां भी दुखी करना चाहा, अनेक प्रलोभन आए' अनेक प्रकार के भय भी मुझे दिखलाए गए, पर मेरा मन ऐसा स्थिर, निर्दोष और दृढ़ हो गया है कि संसार की कोई शक्ति मुझे अपने व्रत और नियम से नहीं डिगा सकती। बड़े नियम और निगृह का जीवन बिताते हुए भगवान गोपाल जी के चरणों से लौ लगा रखी है।

साधु सेवा करके अपना उदर पोषण करती हूँ। बस यही अब मेरा जीवन है।"

"हा मुमुक्षु भाई ऐसी नियम और शील वाली स्त्री मैंने अपने जीवन में नही देखी। मै तो वैसे हर माह यहां आता हूँ। चाहे सर्दी हो चाहे वर्षा तितिक्षा बहिन का नियम कभी भंग न होगा। सूर्योदय के पूर्व जाकर वे जमना जी मे स्नान करेगी फिर भगवान का ध्यान पूजा और उसमे निपट कर भागवताश्रम पहुँच जाएगी। वहा रसोई का पूरा काम सभालती है।"

"वाह बहिन तितिक्षा जी आपका त्याग और सेवामय जीवन सराहना योग्य है। आप सचमुच ही तितिक्षा है।"

तितिक्षा ने मस्तक झुका लिया। उसके नेत्रो से अश्रु लुढक लुढक कर कपोलों पर बह चले। उसने गभीर स्वर मे कहा –"भाई साहब आपने जो आत्मीयता और सहानुभूति बतलाई है उसके लिए मै आभारी हूँ। आज से आप मेरे बडे भाई के समान हुए।"–तितिक्षा ने मुमुक्षु के चरण छू लिए।

"भाई के समान नही बहिन मै तुम्हारा भाई ही हुआ "–मुमुक्षु ने तितिक्षा के मस्तक पर अपना हाथ रखकर स्नेह पूर्ण शब्दो में कहा।

१०

बरसाना में श्रीकिशनदास जी का अपना एक छोटा सा कुटीर था, मिट्टी का सादा झोपड़ा, स्वच्छ लिपा पुता। एक ओर छोटे झूले पर राधाकृष्ण की मूर्ति झूलती हुई।– बाहर फूलदार वृक्षों की एक छोटी सी बगिया हरी हरी दूब चारों ओर मखमल सी बिछी हुई। मुमुक्षु का मन यहाँ आकर प्रसन्न हो गया।

यह भाद्रपद मास का प्रारम्भ था। इसी मास की कृष्णपक्ष अष्टमी को भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था। ऐसे समय बृजमण्डल के लोगों का आनन्द देखने योग्य था। मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, बरसाना और गोवर्धन सभी क्षेत्रों में कथा कीर्तन और रासमण्डलियों के आयोजन हो रहे थे। ऐसा लगता था जैसे सचमुच अष्टमी को मथुरा में भगवान जन्मेगें और उन्हें लेकर वासुदेव नन्द के घर आएगें ......और घर घर आनन्द का सागर उमड़ पड़ेगा। बरसाना के संकरी-खोर नामक स्थान पर, जहाँ भगवान श्याम सुन्दर ने श्री किशोरी और उनकी सखियों का दधिमाखन लूट लूटकर खाया और अपने ग्वाल बालों को खिलाया था, अष्टमी से चतुर्दशी तक मेला लगने वाला था। इस बीच श्रीकिशनदास जी ने मुमुक्षुराम को वृज-मण्डल के अन्य स्थानों के दर्शन करवाए। सबसे पहिले वे

मन्दिरों के नगर वृन्दावन गए । यमुना तट पर कालियादह जहाँ भगवान ने कालियनाग को नाथा था, युगल घाट पर युगलकिशोर जी और मनमोहन के मन्दिर आदि सभी स्थानों के दर्शन तथा साधुसग का लाभ उठाते हुए वे दोनों वृन्दावन में टिके रहे । फिर वे गोकुल आए, गोकुल से सहावन जहाँ क्षीरसागर सरोवर है, वहाँ से नन्दगाँव होते हुए वे लोग गोर्वधन गए । गोर्वधन एक छोटी पहाडी है । मार्ग में मुमक्षुराम ने देखा कि अनेक लोग पर्वत की परिक्रमा हाथ जोडे हुए दण्डवन की मुद्रा में कर रहे हैं । भगवान कृष्ण के प्रति श्रद्धा का यह एक उत्कट उदाहरण था ।

पर्वतीय ढलान पर बसा हुआ बरसाना वैसे भी बडा सुन्दर स्थान है । यहाँ की चप्पा चप्पा भूमि पर कृष्ण और राधा जी की लीला की स्मृतियाँ अकित है । वैसे तो सारे ब्रज में ही जन्माष्टमी का उत्सव बडे उन्माह से मनाया जाता है पर बरसाना में, भगवती राधा के गाँव में इस उत्सव का एक विशेष महत्व है । मुमुक्षुराम और श्रीकिशन दास उस दिन अपनी कुटिया पर वापिस आगए थे । रात्रि बारह के लगभग वह अमृत घड़ी आई जब भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था । मन्दिरों में घन्टे घड़ियाल बजने लगे, शंख नाद होने लगा तथा कीर्तन के स्वर वातावरण में भर उठे ।

रात अन्धेरी थी रिमझिम पानी भी बरस रहा था पर कीर्तन के स्वर इस प्रकार छाए कि रात भी दिन सी सजग हो उठी। कुटिया में कृष्ण जन्मोत्सव मनाने के लिए कुछ और भी भक्त आ गये थे। झूले पर झूलते हुए गोपाल कृष्ण की छबि बड़ी मनोहारी थी ऐसा लग रहा था जैसे सचमुच भगवान ने अभी जन्म लिया हो और वे झूले पर बैठे स्मित कर रहे हों। मुमुक्षुराम आनन्द मग्न हो गए और भजन कीर्तन में अपनी सुध–बुध भुला बैठे।

दूसरे दिन मुमुक्षुराम ने विदा चाही पर श्रीकिशन-दास जी ने उन्हें कुछ दिन के लिए रोक लिया। उनकी कुटिया से कुछ ही दूर पर एक टूटी–फूटी मन्दिरी में एक उदासी बाबा रहता था। मुमुक्षु ने देखा कि उसे देखकर बच्चे उसे 'जै सियाराम' कहकर चिढ़ाते हैं। बाबा बहुत चिढ़ता और बच्चों को डाँटता हुआ कहता–"जै श्री कृष्ण बोलो। मुरली मनोहर की जय बोलो। दुष्टों पर वह नाम न लो।"-- और बच्चे बार बार जैसियाराम की पुकार लगाते हा हा हू हू करते उसके पीछे भागते। जब श्रीकिशन-दास जी ने मुमुक्षुराम को बतलाया कि वे उस बाबा के पास कभी कभी सत्संग के लिए जाते रहते हैं तो सुनकर मुमुक्षु को हँसी आ गई।

"अरे हँसे क्यों ?"–श्रीकिशनदास ने आश्चर्य से पूछा।

"आप इनके पास सत्संग को जाते हैं जो राम और कृष्ण में भेद करते हैं"— मुमुक्षु ने स्पष्ट किया —"भला उनका ज्ञान कितना संकुचित होगा यह सहज ही जाना जा सकता है।"

श्रीकिशन जी मुस्कुराए बोले—"चलिए आज संध्या को आप को उनके ज्ञान की थाह लेने के लिए ले चलें।"

मुमुक्षु ने स्वीकार किया। सन्ध्या समय वे दोनों साधु जी के निवास पर पहुँचे। साधु जी बैठे माला फेर रहे थे। श्रीकिशनदास ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। मुमुक्षुराम के मुँह से अनायास ही निकला —"जै सियाराम महाराज।" और आश्चर्य कि साधु ने बिना कोई भाव व्यक्त किए प्रणाम का सहज उत्तर दिया—"प्रभू श्री हरि आपका कल्याण करें। आइए, बैठिए।"

उनके बैठने पर साधु ने श्रीकिशन जी से पूछा— सुनाओ भगत श्रीकिशन जो, आज ये नये भगवान कौन हैं ?"

"महाराज ये हैं हमारे मित्र मुमुक्षु जी, वृज में जन्माष्टमी मनाने आए हैं।"—श्रीकिशन जी ने उत्तर दिया

"आहा ! बड़े भाग्यवान हैं।" साधु जी आनन्दित हो गए —"प्रभू किरपा से ही जो है सो ऐसी बुद्धि उपजे

मुमुक्षु ने हाथ जोड़कर नम्रता से कहा–"महाराज जो मुझे आपके विषय में एक बड़ा आश्चर्य हुआ है।"

"अचरज ! हमार बारे में अचरज ?"–साधु ने अपनी ठेठ भाषा में आश्चर्य से कहा–"भला बोलो कहा बात को अचरज भयो।"

"महाराज मैंन सुबह सुबह देखा है कि आप जब भिक्षायाटन के लिए निकलते हैं तो बच्चे आपको 'जयसिया-राम' कह कर प्रणाम करते हैं और आप चिढ़कर उन्हें मारने दौड़ते हैं। बार बार उन्हें 'कृष्ण–राधाकृष्ण' कहने को कहते हैं। पर अभी जब मैने आप से जैसियाराम को तो आप न चिढ़े न आपको बुरा लगा।"

"वाह भगवान वाह ! बच्चन की बातन पै अचरज की कहा बात ?"–साधु ने हँसकर कहा–"काहू कारण ते मुखते बार बार भगवान को नाम उच्चारो, दूसरन के मुखते काढ़ो एहो पुण्य को काम और हमार उद्देश्य ! तो भैय्या याही कारण ते हम बच्चन के मुखते बार बार हरि नाम निकरवावें। वैसे तो कहा सिरी राम और कहा सिरी किसन सब बिसुन के औतारी, एक ही माया समझे न भगवान।"

"अच्छी तरह समझा महाराज।" मुमुक्षु ने साधु की भावना को समझते हुए नम्रता से कहा। फिर पूछा–"महाराज आप मुझे यह बतलाइए कि यह संसार क्या है ?"

"अरे भगवान ! बोलत कहत प्रशन पूछो हो, हम तो अपढ़ अज्ञानी बाबा ठहरे, पढ़े लिखे नाँय। इस संसा को हम कहा समझेगें ?"–साधु ने भोलेपन से कहा ।

"फिर भी महाराज आपने संसार का त्याग किया है तो कुछ सोच समझकर किया होगा। आपने क्यों सन्यास लिया ?" मुमुक्षु ने पूछा।

"आहा कहा पूछत हो–जो है सो हमने सन्यास काहे को लियो तो सुनो भैया जब हम बालक ही हते, हम अनाथ हते तो हमार पालन पोसन एक उदासीन बाबा ने कियो। वे बाबा जी बड़े भले हते। एक दिना बाबा जी ने हमारे से पूछ्यो के तुम अब सयाने भए, सो दुनिया में जायके सादो ब्याह रचाय के संसार करो। हमने कहो– 'महाराज तुम हमार गुरू, या संसार के दुख हमने कानन ते सुने और आँखन ते देखें। अब जब देखन सुनन में या इतनो बुरो है तो या में जाके हमें का मिलैगो। सो महा-राज हम तो दूरई भले। सो बाबा जी ने हमें दीक्षा दीनी और हम जो है सो बाबा जी होय गए।"

"अच्छा महाराज आपको देखने सुनने में संसार बुरा क्यों लगा ?" ऐसा आपने क्या देखा ?"– मुमुक्षु ने पूछा।

"अरे भैया जो वसतु कारी है काहे कारी कहवे को

कछु प्रणाम की चाहना नाय। सुनो हम अनाथ हते। हमें बाबा जी ने संभाल लियो दो अक्खर ज्ञान के सीख लीन्हें और जो हमें कोई चोर पालतो तो हम भी नम्बरो हो गये होते।"—साधु ने हँसते हुए कहा।

"अच्छा महाराज यह बतलाइए कि सच्चा सुख काहे में है?" —मुमुक्षु ने पूछा।

"जामें अपने का सुख मिले वाही में सुख है।"

"यह बात कुछ स्पष्ट नहीं हुई महाराज। मुझे यह' बतलाइए कि एक चोर को चोरी करने में सुख मिलता है तो क्या चोरी करने में सच्चा सुख है?"

"परन्तु चोरी में सच्चा सुख? समझनहार तो चोर अज्ञानी हैं न भगवन! सो अज्ञानी का सुख चोरो में है। पर पकड़े जाने पर यही चोर दुख पावे है, सो यह जो चोरे का सुख पकड़ा जाने पर दुख हो जावे है सांचा सुख नाँय! ऐसो सुख जामें कछु भय न होय, जो कबहुँ न बदले वोहो खरो सुख होय!"—साधु चुप हो गया।

सुख की यह सीधी साधी व्याख्या मुमुक्षु को बड़ी अच्छी लगी उन्होंने कहा —"तब तो महराज इस संसार में शायद ही ऐसा कोई सुख होगा जो स्थाई हो."

"है अवश्य है भगवन प्रेम में हमें जो सुख मिलता है वो कबहुँ मिले न मिटे, न बदले। सो हम कहत है कि

प्रभु से लौ लगाई लो तो सारे दुख सुख हो जावें अरे फिर तो हम स्वयं ही आनन्द स्वरुप हुई जायेंगे. समझे न?"

"हां स्वामी जो। मुमुक्षु ने कहा। साधु पढ़ा लिखा नहीं था पर सत्संग और मनन के कारण उसका अनुभव काफी सुलझा हुआ था।

रात हो चली थी अतः उन्होंने साधुजो से विदा मांगो और अपना कुटो की ओर चल पड़े।

२१

रात के भोजन से निवृत्त होकर जब मुमुक्षुराम और श्री किशनजी चर्चा करने बैठे तो श्री किशनजी ने कहा –मुमुक्षुजी कल आप चले जायेंगे सो मन में आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

"मुझे भी कुछ ऐसा ही अनुभव हो रहा है।" मुमुक्षुराम ने अपने हृदय की बात कही। उन्हें वृज भूमि में एक अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति हुई थी, जैसे दस पन्द्रह दिनों में ही उन्हें उस भूमि ने अपने आकर्षण में बांध लिया था। उन्होंने कहा –"श्रीकिशनजी स्थान स्थान की महिमा कुछ ऐसी होतो है कि मनुष्य को वह बरबस मोह लिया करती है। वृजमण्डल भगवान की लीला भूमि रही है। हजारों वर्षों से वृज की भूमि पर आततायी आक्रमणकारियों ने भीषण अत्याचार किए हैं बार-बार इस भूमि को पवित्रता नष्ट करने के प्रयत्न हुए हैं पर इसको पवित्रता, सुनील यमुना जल की निर्मलता क्या कोई हर सका है ? आज भी हजारों लोग वृज में भगवान कृष्ण की पावन लीला भूमि के दर्शन करने आते हैं और अपने आपको सफल बनाते हैं।"

"तुम सच कहते हो भैया, इसलिए तो हम यहां आ के पड़े हैं, यहां आकर हमारे मन की खोई हुई शान्ति फिर से मिल गई है, और संसार में रहने का सारा दाह, सारा कष्ट यहाँ आकर मिट गया।"

"पर श्रीकिशनजी आपको संसार से क्या कष्ट था। न किसी प्रकार का कोई अभाव था, न कोई समस्या। मैं तो समझता हूँ आप यहाँ अपनी स्वेच्छा से ही आए हैं।"

"न जी! यही हम मनुष्यों की विडम्बना है कि संसार को दुःखों से पूर्ण समझते हुए भी हम स्वेच्छा से इसे कभी नहीं छोड़ना चाहते। संसार में धन सम्पदा होने से ही तो मनुष्य सुखी नहीं हो जाता? आपका तो भी इतना बड़ा कारोबार है पर फिर भी आप इस प्रकार संसार में भटक रहे हैं।" श्री किशनदासजी ने व्यथित शब्दों में कहा।

"आप सच कहते हैं। धन सम्पदा में सुख कहाँ है? सुख तो मन को शान्ति में है और वह कैसे मिलती है, कहाँ मिलती है और मिलती भी या नहीं यह कहना कठिन है।"

"हाँ जी!" –श्रीकिशनदास जी की वेदना फूट पड़ी वे बोले–" मन की शान्ति और सन्तोष मिलना बड़ी कठिन बात है। कहा है न कि–

"गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान ।
जब आए सन्तोषधन सब धन धूरि समान ॥

"अब मैं तुम्हें अपनी ही सुनाऊँ, खूब सम्पन्न परिवार में मेरा जन्म हुआ। वापदादों का जमा हुआ कारोबार था. किसी बात की कमी न थी। तो जानते हैं क्या हुआ, मेरे मन में दूसरो प्रकार के अभाव जन्मे ओर मैं प्रारम्भ से ही महाकामी तथा भोगी बन गया। अपने भोग-विलास पर मैंने पानी की तरह रुपया बहाया। सुन्दरी पत्नी के घर होते हुए भी मेरी शैया पर हर रात नवीन-नवीन युवतियाँ आती रहती, और मैं अपने मद में भूला अपनी पत्नी की मनोदशा की चिंता किए बिना, इस विलास में डूबा रहता। आखिर हर बात की एक सीमा होती है, मेरी पत्नी की जाने मनको उस चिर वेदना के कारण या अन्य किसी व्याधि के कारण अकल मृत्यु हो गई। उस समय मैं कोई नवयुवक नहीं था। मेरी अवस्था पचास वर्ष के लगभग थी और मेरे बड़े बेटे की आयु तीस वर्ष थी. मुझे चाहिए था कि उस अवस्था मे पत्नी की मृत्यु के पश्चात दूसरी पत्नी की कामना न करता. भोग-विलास की मेरी शक्ति भी बहुत क्षीण हो गई थी. पर मेरे मन में तो प्यास थी, कभी न न बुझने वाली प्यास।

"कुछ लोग ऐसे होते हैं जो दूसरों की कमजोरी का लाभ उठाते हैं। मेरा मुनीम और मेरा सेवक मेरी मनस्थिति को जानते थे. मुनीम ने मेरा रुख देखकर दूसरी शादी का प्रस्ताव रक्खा। उसने एक अच्छे पर गरीब घराने की लड़की मेरे लिए देख ली। लडकी की अवस्था लगभग बीस वर्ष की थी और माँ बाप लडकी की बढ़ती हुई आयु के कारण चिन्तित थे। निर्धनता के कारण दहेज आदि देने में असमर्थ वे किसी भी प्रकार अपनी कन्या को ठिकाने लगा देना चाहते थे। मुनीम ने लडकी की बड़ी प्रशंसा की, उसका चित्र भी दिखलाया और मैं विवाह के लिए राजी हो गया।

"विवाह के पश्चात, प्रथम दर्शन में ही मैंने अपनी नवविवाहिता पत्नी की आँखों में एक विरक्ति देखी। मैं इस विरक्ति को पहिचानता था, यह अनिच्छा और विवशता की विरक्ति थी और प्रथम बार मुझे यह अनुभव हुआ कि मैंने अपने मद में एक खिलते कुसुम को मसल डाला है। पर इस तरह नये कुसुमों को मसल डालना मुझे आता था। वह मेरी पत्नी बन कर मेरे घर में आई थी सो मैंने उन्मुक्त होकर उसे पत्नी की तरह ही भोगा। पर उसकी मेरे प्रति स्नेह की भावना नहीं बनी सो नहीं ही बनी। उसने मुझे कभी अपने पति की तरह नहीं

चाहा। एक नई बात मुझे अनुभव हुई। वह यह कि मेरा बेटा भी उसे अपनी माँ न कह सका और मैंने देखा कि समाज के बन्धन और मर्यादाएँ आयु की सीमाएँ तोड़ने में असमर्थ रहीं।

मेरी नवीन पत्नी कमला नवयुवती थी और मेरी आयु ढल चली थी। कमला ने अभी अभी भोगविलास की दुनिया में कदम रखा था और मैं सारे खेल खेलचुका था। अब मुझ में नए साथी के साथ बराबरी का मुकाबला करने की शक्ति शेष न रही थी और मुझे पहली बार अपनी गलती का अनुभव हुआ। फिर भी मैंने अपनी कमजोरी को दूसरी तरह से पूरा करना चाहा। मैं कमला की हर इच्छा पूरी करता, उसे नित्य नई भेंटे देता और अभावों में पत्नी कमला को उनसे प्रसन्नता मिलती। उसके नए नए शौक और नये नये वस्त्रों, गहनों की मांग दिनों दिन बढ़ती जाती थी और मैं उन्हें उतने ही चाव से पूरा करता जाता। वह खूब बनाव-सिंगार करती और दिनों दिन बच्चों की तरह हठी और जिद्दी होती जा रही थी। पर मैं उसके सारे नखरे-सिर-आंखों पर उठाए रहता और उसे प्रसन्न देखकर मेरे मन को शांति मिलती।

"एक दिन मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे बेटे और

कमला के बोच कुछ असाधारण घनिष्टता बढ़ती जा रही है। कमला रमेश को बहुत चाहती और दोनों खूब हँसते बोलते। मेरे मन में अपने बेटे रमेश के प्रति एक ईर्षा का जन्म हुआ। मुझे लगा कमला हमेशा रमेश के लिए मेरी उपेक्षा कर देती है। अन्ततः एक दिन मैंने उससे कह ही दिया कि वह रमेश से ज्यादा हँसा बोला न करे। कमला को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने कहा कि–"वह तो आपका बेटा है और मैं आपकी पत्नी हूँ। आप इतने गिर गए हैं कि माँ बेटे पर शक करते हैं।" और उसने उस दिन भोजन तक नहीं किया। मुझे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा। पर मेरे मन में सन्देह का जो भूत भर गया था वह नहीं हटा। एक दिन रमेश की पत्नी मेरी बहू ने भी मेरे सन्देह की पुष्टि की और मुझे अपनी पत्नी और बेटे के गलत सम्बन्धों पर विश्वास सा होता गया।

"एक बार जब बहू नैहर गई हुई थी, मैं रात को देर से घर लौटा तो मैं ने कमला को रमेश के कमरे से अस्त व्यस्त सा निकलते देखा। मुझे अब कोई सन्देह न रहा, मेरे तन बदन में आग लग गई। मैं क्रोध से भरा, बेंत हाथ में लिए अपने कमरे में उसकी राह देखने लगा। काफी समय बीत जाने पर वह जब कमरे में आई

तो मुझे बेंत हाथ में लिए बैठे देख कर ठिठक गई। मैं उसे देखते ही बरस पड़ा—"कुलच्छिनी तूने खूब अपने कुल की लाज रखी ! भाई बेटे का ख्याल नहीं रखा।"— और मैंने उसे मारने को हाथ उठाया ही था कि उसने चीत्कार करते हुई कहा—"हाँ हाँ मारो मुझे, मगर बेंत से नहीं छुरे से मारो ताकि हमेशा के लिए सब कुछ मिट जाए।"

उसकी लाल लाल आँखों में कुछ ऐसी कातरता थी जैसी कसाई की छुरी के नीचे कटते हुए जानवर की आँखों में होती है। और मेरा हाथ जहाँ का तहाँ रुका रह गया। मैंने क्रोध से काँपते हुए स्वरों में कहा—"आज मैंने सब कुछ देख लिया है। अब तू अधिक दिनों तक मेरी आँखों में धूल नहीं झोक सकती।"

"हां ! हाँ !" वह फूत्कार उठी —"जिनकी आँखें बन्द हैं उनकी आँखों में कौन धूल झोंक सकता है। जिन्हें कभी यह न दिखा कि इस अधेड़ आयु में अपनी बेटी की उमर की लड़की को पत्नी कैसे बनाएँ और बनाने के बाद जिन्हें कभी उस पर विश्वास न हुआ। होता कैसे खुद की कमजोरियाँ जो काटती होंगी। जब देखो तब लाँछन ! लाँछन ! ...... और फिर सारा का सारा खानदानही ऐसा। जैसा बाप वैसा बेटा। बराबरी की

उमर के लड़के को बेटा समान प्यार किया तो वह आज स्त्री बनाने पर उतारू हो गया .. ... हा आज कौन है जो मेरे दुख को जानेगा ? किससे फरियाद करूँ ?"– वह सिसक सिसक कर रो उठो –"मेरा जन्म तो यूँ ही पशु के समान बीता"– और वह रोती हुई कमरे से भाग गई ।

..... किकर्तव्यविमूढ़ सा कुछ देर खडा रहा फिर निढाल होकर एक कुर्सी पर गिर पड़ा । मेरे मन मे एक तूफान सा उठ खडा हुआ .... ओह मेरा पाप मुझी को खाने लगा । इन सारो बातों के लिए मै ही जिम्मेदार था। मैने अपनी अवस्था का न ख्याल करते हुए कमला के जीवन को व्यर्थ कर दिया था। वह नवयुवती थी, उसकी भो यौवन जागृति–कामनाये रही होगी जिन्हें मैं पूरा नही कर सकता था। मैने कभी उस दुखिया लड़की को वेदना के बारे में नहीं सोचा । जब उसके बारे में सोचा तो उसे दोषी और दुश्चरित्र के रूप मे ही माना। हो सकता है, वह सचमुच निर्दोष रही हो, मेरी तरह मेरा बेटा था तो बदनियत हो सकता है। पर कुछ भी हो सारा दोप मेरा है । मुझे किसी पर क्रोध करने का अधिकार नही है। नही, मैं कमला को और अधिक दुखी नहीं करूँगा। कल प्रात काल होते ही उससे क्षमा माँग लूंगा ।

उस पर विश्वास करूंगा, उसेएक आत्मीय का निश्छलन नि स्वार्थ प्रेम दूंगा। ......"

......पर वह प्रातःकाल भी कैसा भयंकर हुआ, मुमुक्षु जी .... उफ ! रात में कमला ने गले में फांसी लगाकर आत्म हत्या करली थी ......ओह ! कमला एक असहाय और निर्दोष लड़की मेरी लिप्सा और वासना का शिकार हो गई थी।.....मैं आज तक अपने आपको उसका हत्यारा महसूस करता हूँ। मैं ऐसा हृदयहीन पर्वत और नीच व्यक्ति हूँ मुमुक्षुजो। उसी दिन से मुझे अपने आप से और इस सारी दुनिया से विरक्ति हो गई। मैं सब कुछ छोड़कर यहाँ चला आया। यहाँ बिलकुल अलग रहकर मन को कुछ शान्ति मिली है। पर आज जब बीती बातें याद हो आती तो हैं मन कराह उठता है।" –श्रीकिशन जी ने एक लम्बी साँस ली और भरे हुए गले से कहा–बस भैया जो अब अपने पापों का प्रायश्चित करता हुआ जी रहा हूँ।

मुमुक्षुराम काफो देर तव कुछ नहीं बोले। उनके मन में एक गहन वेदना उमड़ पड़ी। आखिर मनुष्य पाप क्यों करता है ? वह शक्ति संपन्न और समर्थ होता है तो क्यों उसकी आँखों पर पर्दा पड़ जाता है। क्यों वह स्वार्थी और मदांध हो जाता है ? आज श्री

किशन जी को पश्चाताप हो रहा है, काश कि उसी समय उन्हें यह ज्ञान हुआ होता। उसी समय ऐसी विरक्ति आगई होतो तो आज इनका व्यक्तित्व निष्कलंक रहा होता, और इन्हें अपने मन में ऐसी होनता का अनुभव न हुआ होता।

श्री किशनदास जी विषाद से काफी समय तक चुप्पी साधे रहे। उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी सी लगी हुई थी। अन्ततः किसी प्रकार अपने को संयत कर उन्होंने कहा—"अच्छा भैया जी, रात बहुत हो गई है अव आप विश्राम करें। कल आपको यात्रा पर जाना है।"

"जो।"—मुमुक्षुराम के मुँह से निकला। एक बात कहता हूं मित्र कि सुवह का भूला जो शाम को घर आजाए तो भूला नहीं कहलाता। आपने जो विकास का मार्ग अपनाया है उसमें दीनत्व और हीनत्व दोनों नहीं रहते। अतः भूतकाल की बातों का स्मरण न करके वर्तमान को साधिए।

श्री किशन जी की आँखों में समाधान की ज्योति झलक उठो।

११

मुमुक्षुराम मथुरा से इलाहाबाद-बनारस के लिए रवाना हो गए। श्री किशनदास जो उन्हें हाथरस जाने वाली गाड़ी में बैठालने आए थे। चलते समय हठ करके उन्होंने मुमुक्षुराम को व्यय के लिए पाँच सौ रुपये भेंट किए। मुमुक्षुराम ने स्वीकार नहीं करना चाचा पर श्री किशनदास जी के स्नेह और आग्रह के आगे उन्हें झुकना पड़ा। आँसुओं भरे नेत्रों से दोनों मित्र विदा हुए।

गाड़ी चली जा रही थी और उससे भो कहीं अधिक तीव्रगति से मुमुक्षुराम का चिन्तन चल रहा था। अब तक हुई उनकी यात्रा का एक एक प्रसंग उनके सामने रह रहकर आ रहा था। वह नवयुवक जो देखने में सभ्य, सुशिक्षित और सुशील लगता था उसका वह निकृष्ट चोरी का आचरण, लालची पुजारी हरिचरणदास और उसका वह स्वार्थी व्यवहार, बालक बामन का निर्दोष निस्वार्थ व्यवहार, साधु मस्तराम का पागलपन और मस्ती, शिष्य सहजानन्द का अपना सहज दर्शन, महात्मा नित्यानन्द का प्रभावशाली व्यक्तित्व और ज्ञान, स्वामी कृष्णानन्द की भक्ति, तितिक्षा बहिन की तितिक्षा-

पूर्ण जीवनी और भाई श्रीकिशनदास की विरक्ति और पश्चात्ताप–इन सभी लोगों ने इस जटिल संसार चक्र और उसमें निरन्तर चलने वाले जीवन प्रपंच को अपने अपने अनुभव और अपनी अपनी दृष्टि से देखा है, समझा है। दुर्भाग्य और दुख की मार ने किसी का पीछा नहीं छोड़ा सभी उनसे व्याकुल हुए हैं पर एक सीमा पर पहुँच कर उन्होंने एक समाधान निकाल लिया है। इस दुःख–भंडार में भी सुख के कण उन्होंने ढूँढ लिए हैं। उनकी अपनी अपनी जीवन मीमांसा है जिसके अनुसार ये बाह्य संसार को देखते परखते रहते हैं।..... मुमुक्षुराम की विचार तंद्रा अनायास टूट पड़ी, कोई वृद्ध यात्री अपने बूढ़े कण्ठ से गा रहा था।

"पुनरपि रजनि सायं प्रातः
शिशिर वसन्तौ पुनरायातः
कालः क्रीडति गच्छति आयु
तदपि न मुंच्यत्याशा वायु
भजगोविन्दम्, भजगोविन्दम्, मूढ़मतेः

आहा रात के इस शान्त वातावरण में जब केवल घर–घर चलती हुई रेलगाड़ी की ध्वनि भी स्तंभित होती सी लग रही हो जीवनदर्शन की सम्पूर्ण ज्ञान ग्रंथी खोलती हुई ये पंक्तियां कितनी सार गर्भित और समयोचित लग

रही थीं। संसार की निःसारता और निरर्थकता के विषय में मुमुक्षुराम अभी अभी चिन्तन कर रहे थे शायद यह उन्हीं अन्तःविचारों की अभिव्यक्ति थी। मुमुक्षुराम मुग्ध होकर सुन रहे थे। वृद्ध गा रहा था –

"पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्
पुनरपि जननि जठरे शयनम्
इह संसारे खल दुस्तारे–
कृपया पारे पाहि मुरारे।

'कृपया पारे पाहि मुरारि' –मुमुक्षुराम भी स्वतः गा उठे। वृद्ध का गला मधुर न था, पर उसके गाने में एक विचित्र सी गहराई थी जैसे उसके शब्द कहीं दूर से अनन्त गहराई से आती हुई ध्वनि की प्रतिध्वनि हों, गूँजती फैलती समस्त वातावरण में व्याप्त होती हुई सी……

"जटिलो मुंडी, लुंचित केशः–
काशायाम्बर बहुकृत वेषः।
पश्चयनपि च न पश्यति मूढ़ः–
उदर निमित्तं बहुकृत वेशः।
कोऽहम, कस्मात कुतआयातः
कामै जननि, कौमे तातः
इति परिभावै सर्वमसारम्
विश्वम त्यात्वः स्वप्न विचारम्
भज गोविन्दम्, गोविन्दम् !

'गोविन्दम् जय गोविन्दम् ! –मुमुक्षुराम ने इस क्षण जिस आनन्द को प्राप्ति की यह बड़ा अनोखा और अव्यक्त आनन्द था। संसार की सारी वास्तविकता, मानव मन की संपूर्ण जिज्ञासा और उसका समाधान जैसे वातावरण में उन स्वरलहरियों के रूप में व्याप्त हो रहा था। मुमुक्षुराम की विचारधारा फिर बह चली संसार ज्वालामय संसार दुःख से परिपूर्ण, विपत्ति के दाह से दग्ध संसार, इसका निर्माण ही संभवतः एक कुरूप तथा भयावह दुर्घटना है। संसार के सारे तथ्य, सम्पूर्ण भौतिक वस्तुएँ अपने वास्तविक प्राकृतिक रूप में, अपनी नग्नता में अत्यन्त कुरूप और भयावह हैं। प्रकृति ने इस धरती पर चारों ओर कष्ट और बिपत्ति के ही बीज बोये हैं। जिन ऋतुओं की प्रशंसा करते हमारे कवि थकते नहीं उनकी वास्तविकता देखें तो शीत की कड़कड़ाती ठंड, ग्रीष्म को जला देने वाली कड़ी धूप, वर्षा की कठिन बौछारें यदि मनुष्य इनसे अपनी सुरक्षा न करे तो बस वे विनाशक ही हैं। दूर से मनोहारी दिखने वाले सुरम्य धवल हिम-शिखर निकट पहुँचने पर मृत्यु के स्वरूप ही तो हैं। हरी भरी प्रकृति की मन-भावन गोद में अनेकों जीव एक दूसरे की घात लगाये बैठे हैं। कहां कौन पूर्णतः सुरक्षित है ? प्रकृति के समस्त

प्राणी एक दूसरे को खाने वाले, एक दूसरे के प्राणों के शत्रु, घात लगते ही एक दूसरे को निगल जाने के लिए तैयार बैठे हैं। बिना इसके उनका जीवन चल हो नहीं सकता। मनुष्य को भी प्रकृति ने इसी उद्देश्य से उत्पन्न किया है। वह तो शारीरिक रूप से संसार के सभी जीवों से अधिक कमजोर है, यदि वह अपनी नैसर्गिक स्थिति में ही रहता तो उसका जीवन सतत भयपूर्ण और संकट की अवस्था में ही बीतता, परन्तु नहीं मनुष्य ने अपनी परिस्थितियों पर विजय पाई है। उसने अपनी कमजोरी को जीता है। यदि उसने अपनी सुरक्षा के लिए उपाधान न ढूँढ़े होते, प्रकृति के कष्टों से बचने के लिए घर और वस्त्र न बनाए होते, शत्रु जीवों से बचने के लिए शस्त्र न तैयार किए होते तो उसकी भी आज अन्य पशुओं के समान दुर्दशा हुई होती। सारे प्राणियों में एक वही है जिसने अपने विवेक और परिश्रम से प्रकृति जन्य कष्टों का सामना किया है। एक वही है जिसने अपने और इस संसार के विषय में सोचा है, उसे समझने के प्रयत्न किए हैं। सुख और शान्ति की खोज के प्रति मनुष्य की यह आतुरता और उसके प्रयत्न यह बतलाते हैं कि उसकी अपनी आत्मा स्वयं सुखमय और आनन्द स्वरूप है। वह इस संसार के घोर अन्धकार में एक मात्र प्रकाश रूप है।

उसी की स्थिति के कारण मनुष्य को इस दुखपूर्ण संसार में अनन्त सुख का अनुभव हो सकता है। उसमें दुख को सुख में बदल डालने की अदम्य शक्ति है। इसी लिए अपनी आत्मा में लीन रहने वाले व्यक्ति को ही परम सुख की प्राप्ति होती है। सभी ज्ञानों का ज्ञान यही है कि हम बहिर्मुख न होकर अन्तर्मुखी बनें। सुख और समाधान को बाह्य भौतिकता में न ढूँढते हुए अपने अन्तर में, अपती आत्मामें खोजें। मुमुक्षुराम को अपने चिन्तन के इस निष्कर्ष से बड़ा समाधान प्राप्त हुआ। जैसे सम्पूर्ण सुखों की निधि, सारे ज्ञान की कुँजो उन्हें मिल गई थी।

वह वृद्ध अपनी मस्ती में गाये चला जा रहा था।–

"आत्मानन्दम् परमानन्दम्।
भजगोविन्दम् भज गोविन्दम्॥

२३

हाथरस से बनारस जाने के लिए गाड़ी रात को मिली। भीड़भाड़ बहुत अधिक थी। मुमुक्षु बड़ी कठिनाई से एक डिब्बे में घुस पाए। यात्रियों की धक्कम धुक्कम में वे बहुत घबराए। भीड़ में दबे वे किसी प्रकार एक कोने में खड़े थे कि तभी एक काला सा मोटा ताजा आदमी लोगों को धकेलता हुआ जबर्दस्ती डिब्बे मे घुस आया। उसके कन्धे पर एक बहुत बड़ी सन्दूक थी, उसने बिना किसी को परवाह किये उस सन्दूक को वहीं दरवाजे के पास रखदी। जो थोड़ी बहुत खड़े रहने की जगह थी, वह उस सन्दूक से रुंध गई......मुमुक्षुराम बड़ी कठिनाई से कोने में भिचे हुए खड़े थे। उन्होंने कुछ संकोच के साथ उस व्यक्ति से पूछा–"भाई साहब अगर आपको कोई एतराज न हो तो मैं इस सन्दूक पर बैठ जाऊँ।" उस यात्री ने अपनी बड़ी बड़ी लाल-लाल आँखों से मुमुक्षु की ओर देखा। मुमुक्षुराम को लगा जैसे उन आँखों में खून तैर रहा हो, वे सहम गए। उस व्यक्ति ने भर्राए कंठ से कहा–"हाँ हाँ खुशी से बैठो।"–स्वर बड़ा कर्कश था, जाने क्यों मुमुक्षुराम की उस सन्दूक पर बैठने

की इच्छा जाती रही। उन्हें खड़ा देख कर वह व्यक्ति कड़क कर बोला—"बैठजा भाई। एक बार कह दिया न तुझे।" मुमुक्षु अनिच्छा से उस सन्दूक पर बैठ गए पर उनको दृष्टि बराबर उस व्यक्ति पर ही बनी रही। वह व्यक्ति बराबर बाहर की ओर ताक झाँक कर रहा था जैसे किसी के आने की संभावना से आशांकित हो। गाड़ी छूटने के लिए गार्ड की सीटी बज उठी। उस व्यक्ति ने झुक कर मुमुक्षुराम से कहा—"भाई जरा सन्दूक देखना मेरे कुछ साथ वाले हैं, वे कहाँ रह गए, शायद कोई दूसरे डब्बे में चढ़ गए तो जाकर देखता हूँ।" और वह भीड़ चीर कर जल्दी-जल्दी गाड़ी में से उतर गया। थोड़ी देर में ही गाड़ी चल पड़ी पर वह व्यक्ति नहीं आया। मुमुक्षुराम को कुछ अटपटा सा लगा पर उन्होंने सोचा कि शायद वह अपने साथियों के साथ किसी दूसरे डब्बे में चढ़ गया होगा।

गाड़ी को तेज रफ्तार के साथ डब्बे में ठंडी हवा आने लगी और उमस कुछ कम हुई। भिचकर डब्बे में खड़े हुए लोग थोड़ी-थोड़ी जगह बनाकर झपकियाँ लेने लगे। मुमुक्षुराम सन्दूक पर बैठे बैठे ही एक ओर को टिक गए, गाड़ी के नियमित हिलने डुलने और घरघराहट को आवाज ने उन्हें उनींदा कर दिया। धीरे धीरे उनकी

झपकी लग गई। उन्होंने स्वप्न में देखा कि पृथ्वी से लेकर आकाश तक सारे संसार में पानी भरा हुआ है। वे और उनके आसपास बहुत से लोग उस पानी में मछलियों की तरह तैर रहे हैं। मुमुक्षु को लगा जैसे वे स्वयं भी एक मछली हों और वे पृथ्वीतल पर से उठकर ऊपर सतह की ओर तैरने लगे। तभी उन्होंने देखा कि एक बहुत सुन्दर सा लाल फल ऊपर से नीचे की ओर चला आ रहा है। जाने कैसी इच्छा जागृत हुई कि उन्होंने मछली की तरह लपक कर उस फल को मुँह में पकड़कर निगल लेना चाहा, पर वह गले में जाकर अटक गया। बहुत कोशिसें करने के बाद भी वह न बाहर निकल सका और न अन्दर ही जा सका। वे पीड़ा से छटपटाने लगे और तभी वह डोरी, जिसमें वह फल लटक रहा था, उन्हें ऊपर की ओर खींच ले चली। वे छटपटाते हुए जब पानी की सतह पर आए तो उन्होंने देखा कि किनारे पर एक भीमकाय काला आदमी रस्सी को खींच रहा है। मुमुक्षु को लगा जैसे उन्होंने इस आदमी को कहीं देखा है। इन्हें देखते ही वह मुस्कुराया और तेजी से रस्सी खींचने लगा। मुमुक्षुराम की छटपटाहट बढ़ गई और तभी उनकी नींद खुल गई। घबराहट से वे पसीना पसीना हो गए थे। वे सोचने लगे यह कैसा भयावह सपना था। यह संसार एक

सागर ही तो है और हम सारे प्राणी इसके जलचर हैं; पर वह मनुष्य कौन था जो मछलियाँ फँसा रहा था! ······ और अचानक मुमुक्षुराम को उस रात वाले व्यक्ति का स्मरण आया। काले रंग का, चौड़े जबडे वाला, लाल लाल खूनी आँखों वाला, इस सन्दूक का स्वामी······अरे वह अभी तक नहीं आया? जाने कितनी स्टेशनें निकल गईं! अजीब लापरवाह लोग हैं।

गाड़ी किसी स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई थी। कोई छोटा सा स्टेशन था, रात के कारण बहुत कम लोग नजर आ रहे थे। गाड़ी में भी भीड़ कम हो गई थी सन्दूक वाला यहाँ भी नही आया। मुमुक्षुराम उसके लिए चिन्तित थे, फिर मन में सोचा –"जिसकी वस्तु है उसे चिन्ता होना चाहिए।" पर उस दुःखद स्वप्न के कारण उनका मन जो भारी हुआ था सो भारी ही बना रहा। बड़ी देर तक वे बेचैन से रहे फिर उन्हें निद्रा सी आगई। वे काफी देर तक सोते रहे किन्तु अन्ततः फ़िर एक स्वप्न ने उन्हें आ दबाया। उन्होंने देखा कि वे एक बहुत बड़े मैदान में चले जा रहे थे, सपाट मैदान दूर दूर तक क्षितिज तक न कोई झाड़ झंकाड़ और न बस्ती के चिन्ह दिखलाई दे रहे हैं। वे चलते चलते घबरा रहे हैं। अचानक उनका पैर एक दलदल में घुस जाता है। वहाँ से निकलने

के लिए वे पैर उठाना चाहते हैं पर अन्दर दलदल में धँसने लगते हैं। धीरे धीरे वे कमर तक धँस जाते हैं। ध्यान से देखते हैं तो दलदल का सारा कीचड़ खून से सना हुआ है। वे घबरा कर हाथ पैर मारते हैं तो उनके हाथ भी खून से सन जाते हैं। वे घबराहट में बुरी तरह से छटपटा उठते हैं और उनकी नींद खुल जाती है।

नींद खुलते ही वे देखते हैं कि सबेरा हो चुका है और दो सिपाही उन्हें अपने डंडे से जगा रहे हैं। मुमुक्षु घबराकर उठ खड़े हुए। सिपाही ने दिखलाया कि सन्दूक के किनारों पर कहीं कहीं खून बहकर सूख गया है। सिपाही ने पूछा—"क्यों जी इस सन्दूक में क्या है?"

"मुझे नहीं मालूम!"—मुमुक्षु ने उत्तर दिया।

"अरे वाह तुम्हारा सन्दूक है और तुम्हें नहीं मालूम।" दूसरे सिपाही ने अपने डण्डे से सन्दूक को ठोंकते हुए कहा।

"नहीं, यह सन्दूक मेरा नहीं है।"—मुमुक्षु ने निर्भयता से कहा।

"तो किसका है?"

"एक आदमी का, जो हाथरस में इसे इस डिब्बे में रखकर गया था, मैं तो भीड़ में जगह न होने के कारण इस पर बैठ गया था।"

"तो फिर वह आदमी अपना सन्दूक लेने नहीं आया ?'

"न !"—मुमुक्षु ने कहा। किनारों पर लगे खून को देखकर उनका मन शंका—कुशंकाओ से भर उठा था। सिपाही ने कहा—"हमें कुछ शक हो रहा है। इस सन्दूक में अवश्य कोई गड़बड़ है। हम इसे खोल कर देखेंगे।"

सिपाही ने ताले में अपना डण्डा अड़ाया और एक झटके में ताला तोड़ डाला। सन्दूक का ढक्कन खोलकर देखा तो एक पोटली खून से तर—बतर अन्दर रखो हुई थी। उसमें से आती हुई एक तीव्र सड़ान्द से दिमाग भन्ना गया। सिपाही ने चट सन्दूक बन्द कर दिया। अभी तक डिब्बे के सामने बहुत सी भीड़ इकट्ठा हो गई थी। भीड़ को हटाकर सिपाही ने एक कुली को बुलाकर उस पर सन्दूक लदवाया और मुमुक्षुराम से साथ आने को कहा।

"पर मेरा तो इस सन्दूक से कोई सम्वन्ध ही नहीं है।"—मुमुक्षुराम ने दृढ़ता से कहा।

"सम्बन्ध है या नहीं यह बाद की बात है पर हमने तो आपको सन्दूक पर बैठे हुए देखा है सो आपको हमारे साथ चलना ही होगा।"—सिपाही आज्ञा देता सा बोला।

मुमुक्षुराम ने मन में सोचा—"हरि इच्छा बलवाना।"—और वे सिपाहियों के साथ चल दिए।

२४

मुमुक्षुराम ने पुलिस में दिए अपने बयान में सन्दूक पर बैठने की घटना ब्योरे वार कह सुनाई। पर जब उनसे उनके स्वयं के विषय में पूछा गया तो उन्होंने केवल इतना बतलाया कि वे बम्बई के एक व्यवसाई हैं और उनका नाम मुमुक्षुराम सत्यार्थी है। वे घर द्वार से विरक्त होकर तीर्थयात्रा पर निकले हैं। मथुरा से वे हाथरस होते हुए इलाहाबाद जा रहे थे तो बीच में यह दुर्घटना घट गई। अपना बम्बई का पता आदि जैसा कि उनका नियम था, वतलाना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस कारण उन्हें सन्देहात्मक व्यक्ति समझा गया। कानपुर अदालत में पुलिस द्वारा उन पर मुकदमा चलाया गया। शहर के लिए यह बड़ी सनसनी-खेज खबर थो, पहली पेशी पर बहुत से लोग केवल मुमुक्षुराम को देखने के ही लिए आए। सभो को जिज्ञासा थो कि भला ऐसा कौन सा आदमी है, जो लाश को सन्दूक में रखकर कहीं ले जा रहा था।

उस दिन पेशी के पश्चात जब मुमुक्षुराम पुलिस से घिरे अदालत से बाहर निकल रहे थे तो एक संभ्रान्त

व्यक्ति ने उन्हें पीछे से पुकारा–"सेठ जी ! सेठ मुमुक्षुराम जी !"–

मुमुक्षुराम ने चौंक कर पीछे की ओर देखा तो एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आया और सेठ के पैर छूने लगा। मुमुक्षुराम को उसे पहिचानते देर न लगी। वह सुबन्धुमल था, उनका बहुत पुराना सेवक जिसकी ईमानदारी और सेवाओं से प्रसन्न होकर मुमुक्षु जी ने उसे उसके शहर कानपुर में एक दूकान खरीदवा दी थी। पर ऐसे समय उन्होंने सुबन्धु को पहिचानना उचित न समझा। अनजान से बनते हुए उन्होंने कहा–"अरे आप यह क्या कर रहे हैं। कौन हैं आप ?"

सुबन्धु चौंका, उसने मुमुक्षुराम को ध्यान से देखते हुए नम्रता से कहा–"अरे सेठ जी आप अपने इस दास को भूल गए ? आपकी ही कृपा का फल है कि आज आपका सुब्बू सुबन्धुमल बना है।"

"शायद आपको कुछ भ्रम है"–मुमुक्षु ने कांपते हुए शब्दों में कहा और वे आगे बढ़। सिपाही शायद सुबन्धु को पहिचानते थे। एक सिपाही ने कहा–"सुबन्धु सेठ यह आपको नहीं जानते। आप बेकार धोखा खा रहे हैं। यह तो खून के मामले में पकड़े गए हैं।"

"मुझे मालुम है पर मैं जानता हूँ इनके हाथों ऐसा

कभी नहीं हो सकता। ये तो परम परोपकारी दयालू-व्यक्ति हैं। सेठ मुमुक्षुराम जो मैं आपकी जमानत देने को तैयार हूँ।"

सेठ मुमुक्षुराम ने जैसे सुना ही नहीं, सिपाही ने जरा रुखाई से कहा–"सुबन्धु ये तुम्हारे मुमुक्षुराम नहीं हैं।" और वे मुमुक्षुराम को साथ लिए आगे बढ़ गए।

मुमुक्षुराम जब पुलिस की गाड़ी में बैठने लगे तो उन्होंने देखा कि सुबन्धु अभी तक विस्मय से उनकी ओर देख रहा है। वे जल्दी से गाड़ी में घुस गए। उन्हें भय था कि कहीं सुबन्धु पर उनका वास्तविक परिचय प्रकट न हो जाए और घर तक उनके परिवार को इस दुर्घटना की सूचना न पहुँचे। वे तो उसी अज्ञात स्थिति में उस दुर्घटना का सामना करना चाहते थे।

वे जब लाशवाली सन्दूक के साथ पकड़े गए थे तो उन्हें कुछ समय के लिए व्यग्रता अवश्य हुई थी, पर हत्या से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, यह पूर्ण सत्य था और जब वे सच्चे थे तो उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। वे सत्य के इस संबल को पाकर निर्भय हो गए थे। उन्होंने इसे परीक्षा का समय माना। यह सत्य और उसकी शक्ति की परीक्षा थी। कोई असहाय व्यक्ति जो इस प्रकार की अनजानी परिस्थितियों का शिकार

हो जाए तो उसका परिणाम क्या होगा ? वह अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिए, सत्य को सत्य प्रमाणित करने के लिए कहाँ से प्रमाण लाए। मुमुक्षुराम यह अच्छी तरह से जानते थे कि यदि वे अपना पूर्ण परिचय बतलायें तो उनकी सामाजिक स्थिति देखते हुए अदालत उन्हें सन्देह का लाभ देकर अवश्य मुक्त कर देगी पर वे ऐसा क्यों करें ? सन्देह का लाभ तो उन्हें उस निरीह अवस्था में ही मिलना चाहिए। इसलिए उन्होंने बम्बई का परिचय गुप्त ही रखते हुए केवल वर्तमान का परिचय दिया। अदालत को इससे सन्तोष नहीं। वह तो व्यक्ति का पूर्ण इतिहास जानना चाहती है। मुमुक्षुराम ने मथुरा, बरसाना के स्वामी कृष्णानन्द जी और श्रीकिशनदास जी का सन्दर्भ दिया तो अदालत ने उनसे भी जानकारी मंगवाने के लिए पत्र भेजे। मुमुक्षुराम तो बस अपनी बात पर दृढ़ थे। उनका कहना था कि वे एकदम निर्दोष हैं। उनका उस सन्दूक के साथ सम्बन्ध बिल्कुल आकस्मिक है, पर उस बात का उनके पास कोई ठोस प्रमाण न था। इसी तरह उन्हें पूर्णतः दोषी ठहराने के लिए पुलिस के पास भी पर्याप्त प्रमाण न थे। अतः मामला यहीं अड़ गया था।

पर मुमुक्षुराम बिल्कुल निश्चिन्त थे। वास्तव में

उन्हें इस प्रकरण में एक आनन्द सा आ रहा था। वे अपने आपको इसके एक पात्र नहीं बल्कि एक दर्शक के रूप में अनुभव कर रहे थे। इसीलिए उन्हें मुकदमे की हर कार्यवाही में एक विशेष आनन्द मिलता था। वे देखना चाहते थे कि कि सत्य कितना शक्तिशाली होता है और अन्ततः विजय किसको होती है सत्य को या असत्य की ?

२६

दूसरे दिन जेल में मुमुक्षुराम को सूचना मिली कि एक सज्जन उनसे मिलना चाहते हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ उनसे कौन मिलने आ सकता है। जब वे मिलने के लिए गए तो उन्होंने देखा काले सूट में दुबले पतले सज्जन खड़े मुस्कुरा रहे हैं। वे मुस्कुरा अवश्य रहे थे पर उनके चेहरे पर संघर्ष और वेदना की रेखाएँ इतनी स्पष्ट थीं कि वे दयनीय से प्रतीत होते थे। मुमुक्षु ने उन्हें पहिले कभी नहीं देखा था इसलिए आश्चर्य से नमस्कार का उत्तर देते हुए कहा—"क्षमा कीजिए मैंने आपको पहिचाना नहीं।"

"मेरा नाम सत्यप्रकाश श्रीवास्तव है। मैं यहाँ के हाइकोर्ट का प्रसिद्ध एडवोकेट हूँ।"— उस व्यक्ति ने नम्रता से कहा—"मैं आपके मामले में आपकी वकालत करूँगा। लीजिए आप इस वकालत नामे पर अपने हस्ताक्षर कर दीजिए।"— वकील ने दस्तावेज निकाल कर मुमुक्षु के सामने रख दी।

मुमुक्षु अचकचा गए, उन्होंने वकील के पास बैठते हुए कहा—"सत्य प्रकाश जी क्षमा करना, मैं वकील नहीं

करना चाहता। वकील करने की मेरी हैसियत भी नहीं है।"

इसकी आप चिन्ता न कीजिएगा। आपके मुकदमे की पूरी फीस मुझे एडवान्स मिल चुकी है। आपके मित्र सुबन्धु सेठ ने मुझे सब कुछ समझा दिया है, आप तो बस इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दीजिए और अपना केस मुझे समझा दीजिए।"

मुमुक्षु की समझ में सारी बात आगई। सुबन्धु ने समझा होगा कि ऐसी हालत में मैं अपना असली परिचय नहीं खोलना चाहता इसलिए उसने चुप चाप वकील को भेज दिया है। मुमुक्षु ने कहा–"मुझे आश्चर्य है कि कैसे सुबन्धु सेठ ने आपको मेरे पास भेज दिया ?"

"विपत्ति में एक मित्र अपने मित्र की सहायता नहीं करेगा तो कौन करेगा ?" सत्यप्रकाश ने कहा–"आपके विषय में बहुत सी बातें उन्होंने मुझे बतलाई हैं। मैं भी समझता हूँ कि आप जैसी हैसियत के आदमी को ऐसी हालत में फँस जाने पर अपना वास्तविक परिचय छिपा लेना आवश्यक हो जाता है। पर आप बिल्कुल चिन्ता न करें। मैं आप पर जरा भी आँच नहीं आने दूंगा। बड़े बड़े खून के मुकदमें मैंने जिताए हैं; ऐसे ऐसे मामले कि जिनमें रंगे हाथों पकड़े जाने पर भी मैंने

अपने मुवक्किल को बाइज्जत बरी करवाया है। फिर आपके मामले में तो कोई दम ही नहीं है।"

"साहब सचाई तो यह है कि इस हत्या से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं है और इसीलिए मुझे किसी बात का भय नहीं है।"—मुमुक्षुराम ने निर्भयता से कहा।

"पर आपको यह अदालत में सिद्ध करना होगा।"

"सत्य तो स्वयं सिद्ध होता है वकील साहब"—मुमुक्षुराम ने हँसकर कहा—"उसे भी सिद्ध करने की आवश्यकता है क्या ?"

"यह सिद्धान्त की बात है सेठ साहब, पर अदालत तो प्रमाण चाहती है। आप रात को गाड़ी में चढ़े और अकस्मात उस सन्दूक पर बैठे, इसका क्या प्रमाण है आपके पास ?"

"मैं जो कह रहा हूँ क्या वह प्रमाण नहीं हो सकता?"

"न! आप आरोपी जो हैं। हाँ उस दिन डिब्बे में यात्रा करने वाले किसी व्यक्ति की यदि गवाही मिल जाए तो आपकी बात सिद्ध हो सकती है।"

"पर मैं उन यात्रियों में से एक को भी नहीं जानता। मुसाफिरी डिब्बे में क्या किसकी पहिचान और कौन आएगा मेरी गवाही देने ?"

"इसकी आप चिन्ता न कीजिए। हम आपके किसी

सहयात्री को ढूँढ़ लेगें।"

"ढूँढ़ लेंगे और नहीं मिला तो बना लेंगे, है न वकील-साहब।" मुमुक्षुराम ने रुखाई से कहा—"मेरा तो निवेदन आप से यही है कि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें। मैं जानता हूँ कि मैं दोषी नहीं हूँ और मैं यह देखना चाहता हूँ कि एक पूर्ण सत्य को विजय होती है या नहीं ?"

"पर मान लीजिए कि अदालत ने आपको दोषी ठहरा दिया तो !"

"तो मुझे उसकी सजा भुगतने में बिलकुल कष्ट न होगा।"—मुमुक्षुराम ने दृढ़ता से कहा।

वकील कुछ देर तक हैरान सा सेठ जी की ओर देखता रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अन्ततः वह क्या कहे। उसने आखिर पूछ ही डाला—"सेठ जी अगर आप सत्य के इतने हिमायती हैं तो आप अपना परिचय क्यों छिपा रहे हैं! आप सुबन्धु सेठ को अच्छी तरह जानते हुए भी उन्हें नहीं पहिचानने का नाटक क्यों करते हैं!"

मुमुक्षु मुस्कुराए बोले-" सत्य प्रकाश जी, आप सचमुच वकील हैं। आपने मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगा कर जो मैं नहीं चाहता वह कहने पर मजबूर कर दिया। सुनिए जिस दिन से मैंने अपना घर

परिवार छोड़ा है मैंने अपना वह पूर्व परिचय त्याग दिया था। मैं संसार में सत्य सुख को खोज के लिए निकला हूँ। आज के जमाने में यह बात बड़ो अटपटो सो लगेगी, पर मेरा यह अपना प्रयोग है। भाई, यदि मैं अपने पूर्व परिचय और पूर्व जीवन को याद रखूँ तो मेरा यह प्रयास सफल नही होगा। मैं झूठ नहीं बोलता और ऐसा झूठ जिससे किसी को हानि.न पहुँचे, झूठ नहीं कहलाता।"

"अच्छा यह बतलाइए कि आपको अपने इस प्रयोग में कहाँ तक सफलता मिली है!"—वकील ने उत्सुकता से पूछा।

"इसे मैं अभी कैसे बतलाऊँ जब प्रयोग चल ही रहा है।"— मुमुक्षु ने एक लम्बो साँस लेकर कहा—" अच्छा सत्य प्रकाश जो यह बतलाइए कि आप अपने धंधे में कितना क्या-कमा लेते हैं!"

"जी बस गाड़ी चल रही है।" वकील ने ससंकोच कहा—" वैसे वकालत मेरी खूब चलतो है पर खर्चे भो उतने ही बड़े हैं। महंगाई भी दिनों दिन बढ़तो ही जाती है।"

"हाँ हाँ पर फिर भी इतना तो आप कमा ही लेते हैं कि साधारणतः आराम से जीवन बिता सकें।"

"हाँ इतना तो हो ही जाता है।"— वकोल ने

सन्तोष की साँस लेकर कहा ।

"पर क्षमा करना सत्यप्रकाश बाबू ! आपको इससे तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ। आपके चेहरे पर जो तनाव उभरा है वह आपकी मानसिक वेदना और चिन्ता को प्रकट करता है। आप मानें या न मानें मैं कहूँगा कि धन-सम्पत्ति और व्यावसायिक सफलता होते हुए भी आप सुखी नहीं हैं।"

"हें हें।" फीकी हँसी हँसते हुए सत्यप्रकाश ने अपनी धंसी हुई आँखें मिचमिचाई और कहा—"ऐसा तो कुछ नहीं है सेठ साहब। पर हाँ मेरा काम ऐसा है कि हमेशा दिमागी उलझनें बनी रहती हैं। क्या किया जाय साहब, हमारा धंधा हो ऐसा है।"

"इसका मतलब तो यह हुआ कि आपको अपने धंधे से सन्तोष नहीं है ?"

"संतोष की क्या बात है ? करते हैं जनाब, यह भो भला कोई धंधा है ? दिन रात कानूनी दाव पेंचों में उलझे रहना, सच को झूठ और झूठ को सच बनाने के लिए परेशान रहना बस यही हमारे धंधे की उलझनें हैं। इतनी तिकड़मी से पैसा मिलता भी है तो क्या हमें उसका आनन्द थोड़े ही मिल पाता है ?"—वकील के हृदय की कुंठा सहज ही फूट पड़ी।

"हाँ तो यह आनन्द कहाँ है ?"–मुमुक्षुराम ने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया–"इसी आनन्द को सब पाना चाहते हैं, पर यह कितनों को मिलता है ? तुम इतनी मेहनत परिश्रम क्यों करते हो, सच को झूठ, झूठ को सच क्यों करते हो, इसीलिए न कि तुम्हें जिन्दगी में थोड़ा सा सुख और संतोप मिले और अगर वही नहीं मिला तो तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं ।"

"मैं इस बात से सहमत हूँ । सब कुछ पाकर भो जाने क्यों मन सुखी नहीं हो पाता। सेठ साहब कभी-कभो तो मुझे अपने आप से घृणा हो उठती है क्योंकि अपने काम-धंधे के दौरान मैंने जानते-बूझते अनेक निर्दोष व्यक्तियों को दोषी ठहरा दिया है । सत्य प्रमाण को गलत साबित करने के लिए रातों रात कब्रें उखड़वाकर मुर्दे बदलवा दिए हैं । जाली गवाह पेश करना, जाली दस्तावेजें तैयार करवाना आदि तो छोटो मोटो बातें हैं। मैंने यह सब केवल इसलिए किया कि मैं उनके प्रतिवादियों का वकील था। इन बातों से मेरी आत्मा को प्रायः कष्ट होता है पर मैं अपने पाप को वेशर्म की तरह ढोए जा रहा हूँ । मैं जानता हूँ कि मेरा धंधा बुरा है, पर मैं उससे छूट नहीं सकता । घर परिवार चलाने के लिए मैं और क्या कर सकता ?"

"सत्य प्रकाशजी, यहीं आप गलती कर रहे हैं। धंधा तो कोई भी बुरा नहीं होता, बुरी होती हैं सिर्फ भावनाएँ। फिर आपका धंधा तो सत्य की सहायता करना है। न्यायालय को सच्चाई दिखलाना है। सावधानी बस इतनी बरतें कि आप गलत रास्ते पर न जाएँ। जान–बूझ कर झूठे मुकदमें हाथ में न लें और असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए झूठे प्रमाण न बनाएँ।"

"पर इसके बिना क्या किसी वकील की प्रेक्टिस चल सकती है ?"

"क्यों नहीं चलेगी ? आप यह क्यों भूलते हैं कि संसार में असत्य और अन्याय बहुत बलवान हैं। अतः उनके विरुद्ध सहायता की आवश्यकता तो सत्य और न्याय की ही है। आपको ऐसे सच्चे और निर्दोष व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक संख्या में मिलेगें जो असत्य और अन्याय के जाल में फँस गए हैं और उसमें से निकलने के लिए आपकी सहायता चाहते हैं। वे आपको दो पैसे कम देंगे पर उन्हें जिता कर आपकी आत्मा को जो शान्ति मिलेगी क्या कोई उसका मूल्य आँक सकता है ?"

"आपने ठीक कहा सेठ साहब। ये बातें मैंने अब तक बहुत सुनी और पढ़ीं थीं पर आज आपमें प्रत्यक्ष देख लेने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि शान्ति

प्राप्त करने का यही एक रास्ता है। अब मैं आपसे निवेदन करूँगा कि मैं अपने धंधे में जो सचाई का व्रत लूँगा उसका प्रारंभ बस आपके मुकदमे से हो जाने दीजिए।"

सेठ जी मुस्कुराए, बोले—"अच्छा यही सही पर शर्त यह है कि मेरे मामले में एक भी बात आप मिथ्या नहीं लाएंगे।"

"सत्य का व्रत लेने वाले व्यक्ति को मिथ्या से क्या काम सेठ साहब।" सत्यप्रकाश ने दृढ शब्दो में कहा और वकालत नामा आगे बढाकर कहा—"लीजिए, कीजिए हस्ताक्षर।"

मुमुक्षु ने क्षणभर सत्यप्रकाश को मिचमिचाती आँखों में झाँका, वहाँ सचमुच दृढ़ निश्चय की छाप थी, और उन्होंने आश्वस्त होकर वकालतनामे पर हस्ताक्षर कर दिए।

२६

मुमुक्षुराम पर मुकदमा चल रहा था, इसलिए उन्हें जेल के 'कस्टुडी वार्ड' में रखा गया था उस समय वहाँ कुल चार ओर ऐसे आरोपी थे जिन पर मुकदमा चल रहा था। रनधावा घायल था और रोज मरहम पट्टी के लिए ले जाया जाता था। ठिगना कद, दोहरा शरीर, आयु उसकी पचास के लगभग थी पर स्वास्थ्य उसका नौजवानों जैसा था। चौड़े चेहरे पर बड़ी-बड़ी पैनी आँखें जिन्हें देखने मात्र से भयकप हो, और बड़ी-बड़ी झब्बेदार उमेठी हुई मूँछें सगीनों सी तनी हुई। रनधावा बड़ा नामी डाकू था। उस पर एक साथ अनेक मुकदमें चल रहे थे जिनकी उसे तनिक भी परवाह न थी। वह दिन भर अपने कम्बल पर आँखे बन्द किए पड़ा रहता था। मदन एक तरुण नौजवान आयु २५ वर्ष, छरहरा शरीर, पुछा सा चेहरा, बुझो सी आँखें। दिखने में बड़ा सीधा साधा पर बात चीत में तेज तर्रार। उसकी रनधावा से नई नई दोस्ती हुई थो और बड़े अदब से वह उसे चाचा कहने लगा था वह चाचा रनधावा की सारी जरूरतों को पूरा करने का ध्यान रखता। उसके

लिए बीड़ी और गाँजे की व्यवस्था, खाने के लिए फल आदि का इन्तजाम करना मदन के बाएँ हाथ की बात थी। उस पर जेब काटने का इलजाम था जिससे उसे बिल्कुल इन्कार नहीं था। उसे अपनी चोरी और ठगने की कला पर नाज था जिसे उसने बड़े परिश्रम और लगन से सीखा था।

बहराम एक दुबला पतला अर्ध विक्षिप्त सा आदमी था। ऐसा लगता था जैसे वह सिर्फ हड्डियों का ढाँचा मात्र हो—रक्त और माँस का तो पता नहीं। वास्तविक जीवन में वह एक ताँगे वाला था और उसे अपनी पत्नी और बच्चो को हत्या के अपराध में गिरफ्तार किया गया था। बहराम दिन रात अपनी छाती कूटता रहता और सिपाहियों को देखकर कहता कि—"मुझे फाँसी पर क्यों नहीं लटका देते। मैं कहता हूँ कि मैं खूनी हूँ, मैंने अपनी बीबी को मारा है, इन हाथों से अपनी बच्ची का गला घोंटा है, फिर क्यों मुझे सजा नहीं देते।"—और सिपाही उसे डाँटकर चला जाता, पर बहराम की हाय हत्या तभी बन्द होती जब रनधावा उसे डाँट देता। उसे यह चीं—चपड़ पसन्द न थी। वह गुर्रा कर कहता—"अबे बदजात मरना ही है तो अपने हाथों अपना गला क्यों नहीं घोंट लेता! यहाँ कोहराम मचाकर क्यों हमारी शान्ति भंग करता है।"

और बहराम रनधावा की गोल गोल लाल आँखों की तरफ देखता हुआ काँप कर एक कोने में दुबक रहता।

रामभजन एक दुबला पतला कमजोर आदमी था। आयु चालीस-पैंतालीस के लगभग पर देखने में पचास-पचपन का दिखता था। वह एक टूटा हुआ आदमी था। वह किसी सेठ का गुमाश्ता था और उस पर उसी सेठ के दो हजार रुपये चुरा लेने का आरोप था। रामभजन दिन रात अन्दर ही अन्दर घुलता रहता, वह एक कोने में चुपचाप बैठा ठंडी सांसे भरता रहता। कभी कभी आँखों में आँसू छलक आते तो उन्हे सुखा डालता।

मुमुक्षुराम जब वकील से मिलकर लौटे तो बहराम और रामभजन दोनों आपस में झगड़ रहे थे। मुमुक्षु के साथ सन्तरी को देखकर वे एकदम चुप हो गए। सन्तरी ने मुमुक्षु को अन्दर बन्द कर ताला लगाया और ज्यों ही वह आँखों से ओझल हुआ बहराम और रामभजन का झगड़ा फिर शुरू हो गया। मुमुक्षुराम को उन्हे लड़ते देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनों ही सड़े और कमजोर आदमी थे, उनके गम ने उन्हें और भी तोड़ रखा था पर आज यह कैसा झगड़ा !

बहराम का चेहरा लाल हो रहा था, नसें तन आई थीं। वह दाँत मींच कर कह रहा था—"देख

मुझे गुस्सा मत दिला ? मैं सख्त जल्लाद आदमी हूँ।"

"अरे बड़ा जल्लाद बना फिरता है।" रामभजन ने घृणा से कहा—"कमजोर और असहाय बीबी-बच्चे के गले घोट कर बडा बहादुर की दुम हो गया है।"

"ठहर बनिये के बच्चे ! चोर कहो का, सुअर।" बहराम गुस्से से रामभजन पर लपका और रामभजन अपना बचाव करता हुआ गुर्राया—"खूनी हत्यारे !"

मुमुक्षु उन्हे अलग करने को आगे बढ़े तभी दूर से रनधावा की कड़क आवाज सुनाई दी—"अबे ओ ! नापाक हस्तियों, तुम मानोगे या नही।"—जैसे बिजली कड़की हो, बहराम और रामभजन चौंक कर जहाँ के तहाँ रुक गए।

रनधावा ने फिर अपने कर्कश स्वर में मदन को आज्ञा दी—"अरे मदन बिटवा जरा इधर लइयो इन गधों को पकड़ कर। खामखाँ की तकरार खड़ी कर रखी है।"

इसके पहिले कि मदन उन्हे पकड़ने के लिए आगे बढ़े वे दोनों चुपचाप भीगी बिल्ली की तरह रनधावा के सामने जाकर खड़े हो गए। मुमुक्षु ने पास आकर कहा—"क्या बात है, क्यों बिला वजह झगड़ते हो भाई ?"

"आइए बाबू जी, बैठो"–रनधावा ने आदर के साथ कहा–"जब देखो तब ये लोग कुछ न कुछ हंगामा किये रहते है। सोचा था जेल में कुछ दिनों आराम मिलेगा सो इस बार साथ में ये गधे आ फँसे। कोरट अदालत में सुनवाई भी बड़ी देर से होती है। फैसला होते होते ससुरे आपस में मर मिटेंगे।"

"पर हुआ क्या ?"–मुमुक्षुराम ने रनधावा के पास बैठते हुए पूछा।

"होगा क्या इस बहराम के बच्चे को ! बक झक के मारे सब परेशान हैं। अभी कह रहा था मै बड़ा जल्लाद हूँ, खूनी हूँ। डरपोक इतना है कि अपने गुनाह से दिन रात डरता रहता है। जल्दी से जल्दी इसे फाँसी की सजा मिल जाय तो ...

"यही तो मै कहता हूँ, या खुदा !"–बहराम ने बीच में कहना शुरू किया–

"चुप रह"–रनधावा ने डाँटा–"यही कहता हूँ के बच्चे। मुट्ठी भर जान नही है, गुस्सा आसमान का लिए फिरता है। मारा भी तो अपने उन बीबो-बच्चों को जिनकी हिफ़ाजत करना चाहिए थी।"

"मारता न तो क्या करता ?"–बहराम रो उठा, बोला–"चाचा तुम मेरी जगह होते तो तुम भी शायद

यही कर डालते।"

रनधावा ने उसे गुस्से से घूरा तभी मदन पूछ बैठा–"ऐसा हुआ क्या था जो तेरी जान पर आ बनी थी।"

"क्या बतलाऊँ मदन भाई?"–बहराम की वेदना फूटी–"साला जमाना ऐसा मुश्किल आया है कि दुनिया में रहना जुर्म हो गया है। बाप दादों के जमाने से हमारे घराने में तांगा चलाने का पेशा रहा है। मैंने भी बचपन से वही सीखा। मेरे बाप के जमाने में घर में दो ताँगे थे, कमाई भी खूब होती थी। पर धीरे धीरे जमाना बदला। शहर में म्यूनिसपालटी ने बसें चलवा दीं और लोगों ने ताँगों में बैठना कम कर दिया, फिर हमें किराया भी बस के बराबर ही रखना पड़ता। आमदनी इतनी कम हो गई कि दो तांगों का खर्च संभालना मुश्किल हो गया। एक घोड़ा और तांगा जो भी दाम मिले उन पर बेंच दिया पर हालत इस कदर बिगड़ी कि दिन भर जुते रहने के बाद भी घर का खर्च नहीं निकल पाता। घर में बीबी थी एक बच्चा और एक बच्ची। पिछले साल पानी बहुत कम गिरा और बरसात का मौसम खतम होते–होते घास के दाम इतने ज्यादा बढ़ गए कि घोड़े की खिलाई निकाल कर मुश्किल से हमारे लिए कुछ बच पाता। जाड़े के दिनों में लड़का ठंड खा गया और

निमोनिया से चल बसा। धीरे धीरे मेरी हालत नाजुक होती गई। कमाई इतनी कम थी कि हम सब लोग शायद ही किसी दिन भर पेट खाना खा पाते हों। घोड़ा बेचारा बेजबान था उसे कभी पूरी खुराक न मिलती और दिन भर वह मशीन की तरह घिसटता रहता। ...ओह ...... कहते कहते बहराम पसीना – पसीना हो गया। वह निठल्लू सा होकर जमीन पर बैठ गया और बोला–"मेरी, मेरे घोड़े की और ताँगे की हालत इस तरह खस्ता हो गई थी कि मेरे तांगे पर कोई सवारी बैठना पसन्द न करती।...... और दिनों दिन मैं घुलता घिसता गया। घर में गरीबी की वजह से बीबी चिड़चिड़ी हो गई थी। बात बात पर तुनकती रहती बच्ची को बिला वजह मारती पीटती रहती। घर साला जहन्नुम बन गया था।

"कुछ दिनों से गर्मी बहुत बढ़ गई थी, घर में दो दिन से चूल्हा नही जला था। दो दिन का भूखा मैं अपने भूखे घोड़े को धूप से जलती हुई सड़कों पर पैसे पैसे के लिए घसीट रहा था कि एक जगह घोड़ा सड़क पर गिर पड़ा। मैं उसे उठाने गया तो देखा कि वह तड़प रहा था। मैं गुस्से से भरा हुआ था मैंने बिना कुछ सोचे समझे चाबुक उठा कर उसे सटा सट मारना शुरू किया ...

हा बेचारा वेजबान जानवर ! मेरा घोड़ा दम तोड़ रहा और मैं उसे बेदर्दी से मार रहा था ...... मेरा घोड़ा मर गया ... मैं अपने होशो हवास खो बैठा। घोड़े की लाश को सड़क पर से उठवाने के लिए भी मेरे पास पैसे नहीं थे। कर्ज भो इतना चढ़ चुका था कि किसी से मांगने की दम न थी और कोई देता भी कैसे मेरो आमदनो का जरिया ही टूटा पड़ा था। नाते – रिस्तेदार तो कभी के कन्नी काट चुके थे। मेरी आँखों के सामने अंधेरा सा छा गया। मेरा घोड़ा, मेरी जिन्दगी का सहारा न रहा तो मैं जिन्दा रह कर क्या करूँ ! ...... खुदकशी का ख्याल इस तरह मुझ पर छा गया कि मैं तांगा घोड़ा वहीं सड़क पर छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। मैं दिन भर शहर के बाहर भटकता रहा, मरने के लाख तरीके सोचे पर एक भी कामगर न लगा। रात पड़ गई तो घर की याद आई ...... हाय मैं चल बसा तो मेरी बीबी बच्ची का क्या होगा ? मैं घर लौटा तो देखा कि बोबी रास्ता देख रही थी। म्यूनिसपैल्टिी का आदमी कई चक्कर लगा गया था। आते हो बीबी मुझ पर बरस पड़ी–"कहां गए थे। घोड़ा तांगा सड़क पर छोड़ दिया, कमेटी का आदमी कित्ते चक्कर लगा गया।"

मैं गम जदा था, मैंने उसे चुप रहने के लिए कहा,

पर वह बकती गई–"घर में खाने को नहीं है, एक घोड़ा था उसे भी मार डाला।"

"मैंने मार डाला ?"–मेरी आंखो में खून उतर आया ।

"हाँ तुमने मारा ! तुमने !"–उसने कड़क कर कहा–"तुम्हारे निकम्मे पन ने आज ये दिन दिखलाया है ।"

"मैं निकम्मा हूँ ? अगर मुझे सवारी नहीं मिलती तो मेरा कुसूर है ?–"मेरे दिल में आग लग उठो।

"हाँ तुम्हीं को सवारियाँ नहीं मिलतीं ! एक तुम्हीं तांगे वाले नहीं हो, दूसरे भी हैं। वे भी कमाते हैं, अपने बोबी बच्चों को पालते हैं......पर तुम तो प्राणों पर रूठे हो। बच्चा गया, घोड़ा गया, अच्छा होता मेरा गला घोंट देते।"–और वह फफक फफक कर रोने लगी जैसे घोड़ा नहीं उसका बाप मर गया था। मेरा गुस्सा आपे के बाहर हो गया। मैंने चीख कर कहा–"चुप रह नहीं तो मैं तुझे भी मार डालूँगा।"

"क्या कहा ? ... मार डालिये ।"– चीख कर उसने कहा। वह भी अपने आपे में नहीं थी। मेरी ओर झपटते हुए बोली–"मार मार ले मार। एक जान ही लेना है तो ले ले।"

मैंने उसे किचकिचा कर पकड़ लिया और गला

दबाना शुरू किया। छोटी बच्ची जो डरी हुई देख रही थी, माँ को बचाने के लिए, रोती हुई मुझसे चिपट गई। मैंने बिना देखे उसे उठाकर फेंक दिया। वह धडधडाती हुई जीने से नीच जा गिरी। मेरी औरत चीखी, मेरी पकड़ से छूटने के लिए फडफडाई। पर मैने नही छोडा। शायद मै पागल हो गया था। मै जोरो से उसका गला दबाता गया। उसकी आँखे बाहर निकली आ रही थी, दम घुटा और हाथ पैर ढीले हो गए। . हाय मैने क्या किया, . मुझे चक्कर सा आगया और बेहोश होकर मै उसकी लाश के पास ही गिर गया। जब होश आया तो देखा कि पुलिस मझे पकड कर ले जा रही है और मेरी बीबी .. बच्ची " बहराम चीख चीख कर रोने लगा–"हाय मै खूनी हूँ मै हत्यारा हूँ . ।"

"कौन कहता है तू हत्यारा है ?" मदन चीखा, गुस्से से उसका चेहरा लाल हो गया था। बोला–"हत्यारा तो है यह समाज, यह हमारे चारो ओर की दुनिया जो इन्सानियत का ढोल पीटती है मगर जिसने इन्सानियत की हत्या की है। अपने को सभ्य कहने-कहलाने वाले इस समाज ने असलियत मे जगल के असभ्य कानून को अपनाया है, छीना झपटी का कानून, एक दूसरे को नोचने खाने का कानून !" मदन हँसने लगा, सब लोग उसे आश्चर्य

से देख रहे थे। वह बहराम के सिर पर इस तरह हाथ फेरता हुआ बोला जैसे कि वह छोटा बच्चा हो–"मत रो सपूत ! रोने से क्या ये जख्म पुरेगा। ये जख्म जो नासूर है, जमाने का नासूर। इसे कोई अच्छा नहीं कर सकता। जब हमारी इस काली सभ्यता का खात्मा होगा तभी यह मिटेगा।

"क्यों बेटे तुझे क्या हुआ"–रनधावा ने मदन का यह विचित्र व्यवहार देखकर आश्चर्य से पूछा–"आज तू बड़े-बूढ़ों जैसी बातें कर रहा है ?"

"सच ही तो कह रहा हूँ चाचा। अपन ने तो जबसे होश संभाला है, जमाने का यही रंग देखा है। बचपन से मैंने देखा था कि मेरी माँ चिथड़ों में लिपटी, चार आने की मजदूरी के लिए दिन भर कड़ी धूप में मिट्टी फेंकती रहती और मैं नंगा–भूखा एक तरफ बैठा दूसरे बच्चों को देखता रहता था जिनके पास पहिनने को अच्छे कपड़े थे, रहने को घर था, प्यार करने को माँ बाप थे, पढ़ने के लिए जिन्हें स्कूल नसीब थे और खेलने के लिए खुश-नुमा पार्क थे, वे हँसते खेलते थे और मुझे रोने भी न दिया जाता था। इस दुनिया में मेरी माँ के सिवाय और कोई मेरा न था। मेरा बाप कौन था यह मेरी माँ को भी मालूम न था। जैसे मेरा जन्म एक आकस्मिक दुर्घटना मात्र हो।"

"शुरू में मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता था कि आखिर ऐसा क्यों है ?... .. पर धीरे धीरे मैं सब समझने लगा। दुनिया में सभ्य और ऊँचे कहलाने वाले लोगों के पास अनाप शनाप दौलत है, घर जायदाद हैं, दुनिया के सारे सुख उन्हें इच्छानुसार मिल सकते हैं। पर यह धन सम्पदा आखिर उनके पास आई कहाँ से ? समाज के इन ऊँचे लोगों ने कानून की ढाल बनाकर अपनी ताकत से दूसरे कमजोर लोगों को लूट कर ही तो यह दौलत बनाई है..... और उन असहाय बेचारे लोगों को गरीब बना दिया। कौड़ी कौड़ी के लिए वे अपना तन और अपना ईमान बेंचने पर मजबूर हो गए।...... जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो काम की तलाश में निकला पर चाचा मुझे कोई काम देने को तैयार न हुआ। मैं सड़क पर पला था न, गरीब था न इसीलिए इस दुनिया के ऊँचे लोगों ने मुझे बेइमान और हरामखोर मान लिया था ... और तब मैंने दुनिया की असलियत को समझ लिया। दुनिया ने हम गरीबों और मजदूरों को चूसने के लिए एक कानून बनाया है मैंने उसे तोड़कर अपना एक कानून बनाया। अब मैं जीता हूँ और बड़ी शान से जीता हूँ। मुझे जिस चीज की जरूरत होती है, मैं उसे लोगों से छीन लेता हूँ। लोग कमाते हैं, पैसा जमा करते हैं, मैं उनकी जेब काट लेता हूँ। जब पकड़ा जाता

हूँ तो इधर आ जाता हूँ। पर मुझे यहां आराम ही मिलता है। खुली सड़कों पर सोने वाले को चलो इस तरह सिर पर छत तो नसीब हो जाती है। मैं तो कहता हूं कि यह जेल मेरा घर है और बाहर की सारी दुनिया मेरा कारखाना है।"—मदन पागलों की तरह हो हो कर हंसने लगा फिर बोला —"समझा मेरे तांगेवाले। तू तो और कुछ नही बस इस दुनिया की बेइन्साफो को ढोने वाला घोड़ा था। जैसे तूने अपने घोड़े को जोत जोत कर मार डाला उसी तरह इस दुनिया ने, इस समाज ने तुझे गरीबी की चक्की मे जोत जोत कर तेरा सत्यानाश कर दिया। ये दुनिया है मेरे भाई इसे ढोने वाला नही, इस पर सवार होने वाला चाहिए।"

"पर हाय मैने इस जमाने का क्या बिगाड़ा था जो मुझे तबाह कर दिया ?"—बहराम बिलबिलाया।

"अरे यह पूछ कि क्या नही बिगाडा था!—भूल गया कि तू गरीब था, ईमानदार था इससे बड़ी बुराई इस दुनिया में और क्या होगी ?"—मदन ने तीखे स्वर में कहा।

"आप सच कहते हैं भाई जी।"—मिमियाता हुआ राम भजन बोला—"मै भी गरीब हूं, मैंने भी अपनी सारी जिन्दगी ईमानदारी और सच्चाई में बिताई है। मैं सेठ

"शुरू में मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता था कि आखिर ऐसा क्यों है ?... .. पर धीरे धीरे मैं सब समझने लगा। दुनिया में सभ्य और ऊँचे कहलाने वाले लोगो के पास अनाप शनाप दौलत है, घर जायदाद हैं, दुनिया के सारे सुख उन्हें इच्छानुसार मिल सकते हैं। पर यह धन सम्पदा आखिर उनके पास आई कहाँ से ? समाज के इन ऊँचे लोगों ने कानून की ढाल बनाकर अपनी ताकत से दूसरे कमजोर लोगों को लूट कर ही तो यह दौलत बनाई है... . और उन असहाय बेचारे लोगों को गरीब बना दिया। कौड़ी कौड़ी के लिए वे अपना तन और अपना ईमान बेंचने पर मजबूर हो गए।...... जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो काम की तलाश में निकला पर चाचा मुझे कोई काम देने को तैयार न हुआ। मैं सड़क पर पला था न, गरीब था न इसीलिए इस दुनिया के ऊँचे लोगों ने मुझे बेइमान और हरामखोर मान लिया था ... और तब मैंने दुनिया की असलियत को समझ लिया। दुनिया ने हम गरीबों और मजदूरों को चूसने के लिए एक कानून बनाया है मैंने उसे तोड़कर अपना एक कानून बनाया। अब मैं जीता हूँ और बड़ी शान से जीता हूँ। मुझे जिस चीज की जरूरत होती है, मैं उसे लोगों से छीन लेता हूँ। लोग कमाते हैं, पैसा जमा करते हैं, मैं उनकी जेब काट लेता हूँ। जब पकड़ा जाता

हूं तो इधर आ जाता हूँ। पर मुझे यहां आराम ही मिलता है। खुली सड़कों पर सोने वाले को चलो इस तरह सिर पर छत तो नसीब हो जाती है। मैं तो कहता हूं कि यह जेल मेरा घर है और बाहर की सारी दुनिया मेरा कारखाना है।"–मदन पागलों की तरह हो हो कर हंसने लगा फिर बोला –"समझा मेरे तांगेवाले। तू तो और कुछ नही बस इस दुनिया की बेइन्साफी को ढोने वाला घोड़ा था। जैसे तूने अपने घोड़े को जोत जोत कर मार डाला उसी तरह इस दुनिया ने, इस समाज ने तुझे गरीबी को चक्की में जोत जोत कर तेरा सत्यानाश कर दिया। ये दुनिया है मेरे भाई इसे ढोने वाला नहीं, इस पर सवार होने वाला चाहिए।"

"पर हाय मैंने इस जमाने का क्या बिगाड़ा था जो मुझे तबाह कर दिया ?"–बहराम बिलबिलाया।

"अरे यह पूछ कि क्या नहीं बिगाड़ा था !–भूल गया कि तू गरीब था, ईमानदार था इससे बड़ी बुराई इस दुनिया में और क्या होगी ?"--मदन ने तीखे स्वर में कहा।

"आप सच कहते हैं भाई जी।"--मिमियाता हुआ राम भजन बोला --"मै भी गरीब हूं, मैंने भी अपनी सारी जिन्दगी ईमानदारी और सच्चाई में बिताई है। मैं सेठ

दमड़ीमल का कारिन्दा था। मेरा काम ऐसा था कि अगर मैं बेइमानी पर उतरता तो आज लाखों का आसामी होता पर मैंने ईमानदारी से एक कौडी इधर की उधर नहीं की। जब भी मुझे पैसे की जरूरत हुई मैंने सेठ से मांगा। पर दमड़ी मल के हाथ से कभी एक दमड़ी ज्यादा न छूटती। बढती हुई महंगाई, वतन कम और दिनों दिन आती हुई जिम्मेदारियों ने मेरी कमर तोड़ दो। जब जब सेठ से वेतन बढाने के लिए कहता तो वह चिढ़ जाता बोलता, –"मँहगाई बढ़ी गई तो म्हारे खर्च भी बढि गया है अब काम तो जो था सोई है कारिन्दानो उमें कौन बढोतरो भई है?"–और इस तरह वह मेरा मुँह बन्द कर देता। सिर पर कर्ज लदा चला जा रहा था। कर्ज करके हो जेसे तेसे बच्ची की शादी को तो पत्नी की बोमारो ने पकड लिया। बीमारी भी ऐसी वैसी नहो; राज महाराजों की बीमारी, तपेदिक। इलाज में पानी की तरह पैमा लगा। घर की एक एक कील तक बिक गई। उधर बच्चे की पढ़ाई का खर्च तो था ही उसको वडो परोक्षा होनी थो, बोरड की परोक्षा, फीस भरने को आखरो तारोख पास आ गई थी और मेरे पास दमड़ो नहो थो। मैंने अपनी सहो सही हालत दमड़ो मल सेठ को जा सुनाई और कुछ पैसा कर्ज पर मांगा। पर दमड़ोमल को मालुम था कि मेरे पर पहिले से ही

कितना कर्ज चढ़ा हुआ है उसने हमदर्दी बतलाने की जगह मुझे नौकरी पर से निकालने की धमकी दे दी।"

"उस दिन मैं तकाजे पर से लौट कर वापिस आया था और सेठ को रिपोर्ट सुना रहा था। तभी एक आसामी आया और सेठ को दो हजार नगद दे गया। सेठ ने रुपया लेकर अपनी डेस्क में रख लिया। आसामी के जाने के बाद सेठ किसी काम से थोड़ी देर को अन्दर गया फिर वापिस आ गया। मेरा काम होने पर मैं अपने घर चला आया। पर जाने कैसे और कब दो हजार रुपया चोरी हो गए। कौन ले गया किसे मालुम पर सेठ ने मुझ पर शक किया। मेरी सारी जिन्दगी भर की ईमानदारी और सेवाओं को भुला दिया गया और पुलिस ने मुझे चोरी के आरोप में पकड़ लिया। मैं जरूरतमन्द जरूर था पर चोर नही! पर सेठ दमड़ी मल ने तो सिर्फ रुपया ही देखा है आदमी को उसके लिए क्या कीमत। मुझे अपनी ईमानदारी की आज यह सजा मिली है। मैं यहां जेल में पड़ा सड़ रहा हूँ और उधर मेरी बीबी बच्चे का क्या हो रहा होगा? उनके पास एक कौड़ी भी खर्च चलाने के लिए नहीं है?"—रामभजन की आंखो से आंसुओं के झरने बह चले।

दुख न करो रामभजन भाई! सचाई और

ईमानदारी अपनी जगह है। उसे कोई हटा नही सकता। जैसे सूरज बादल छा जाने से कुछ देर को ऐसा लगता है, जैसे सूरज है ही नही, उसी तरह हो सकता है कि झूठ और बेईमानी कुछ समय के लिए सचाई को दबा ले, पर उसे खत्म नही कर सकते। समय आने पर सचाई अपने आप सामने आती है। भगवान के दरबार मे देर है अन्धेर नही।" मुमुक्षुराम ने रामभजन को सात्वना देते हुए कहा।

"भगवान का भी कोई दरबार है बाबूजी।"— रनधावा ने पूछा। उसके स्वर मे बडी रुखाई थी।

"हाँ हाँ!"— मुमुक्षुराम ने दृढ विश्वास के साथ कहा—"उसके जैसा न्यायाधीश और कौन होगा? वह सबको अपनी करनी का ठीक ठीक फल देता है। जैसी करनी वैसी भरनी।"

"ये सब कहने को बाते है बाबूजी।"— रनधावा के स्वर मे वेदना थी—"भगवान नाम की चीज अमीर और ताकत वालो ने गरीबो को डराने-धमकाने के लिए बना रखी है। अगर भगवान की कोई हस्ती होती तो आज दुनिया मे ये अन्धेर न होता। दुनिया के सारे गरीब और कगले क्या पापी और कमीने ही है जो आपका भगवान सारी कसर उन्ही से निकालता है और ये मोटी-मोटी

तोंदों वाले सेठ साहूकार जिनका पैसा ही भगवान है ऐंसे कौन से पुण्य करके आए हैं ? मै इन्हें खूब जानता हूँ। इधर धर्मशाला खोलेंगे, मंदिर बनवएंगे उधर गरीबो के झोपड़े भी उनसे जरा से मतलब के लिए छीन लेंगे। उनमें आग लगवादेंगे। उन्हें कोई कुछ कहने वाला नहीं। यदि वे कुछ कहने का साहस करेंगे या जिन पर इनकी निगाह टेढो होगो उनका जीना दूभर बना दगे। गरीब आदमी तो इनके लिए पालतू जानवरों के समान है, जिन्हें रोटी के टुकड़ों के बल पर वे खरीद लिया करते हैं......और भगवान के भूत से उन्हें डराते रहते हैं। लोग खुले आम दूसरे का गलाकाट लेते हैं, ताकतवर कमजोरों को लूट लेते हैं। अबलाओं को इज्जत दिन दहाड़े लुट जाती है पर भगवान कुछ नही करता। मैं कहता हूँ कि अव्वल तो वह है नही और अगर है भी तो बह भी अन्यायी और अत्याचारियों का पक्ष लेता है। मुझे तो रह रह कर आप पर तरस आता है बाबूजी ! कि आप खामोखां सचाई और ईमानदारी का नारा लगाए जा रहे हैं। आप पर खून का इल्जाम है और आप अगर इस बेमतलब की सचाई पर डंटे रहे तो वह दिन दूर नहीं जब अदालत आप को अपराधी ठहरा देगी।"

मुमुक्षुराम के होंठों पर मुस्कुराहट फैल गई, वे बोले

–"हो सकता है कि ऐसा ही हो ठाकुर साहब ! –और मुझे हत्या को सजा भुगतना पड़े। पर इससे मुझे कष्ट नही होगा। मै जानता हूँ कि मै निर्दोष और निरपराध हूँ और यही बात मेरे लिए गर्व तथा सन्तोष को होगी।"

"काहे का गर्व और काहे का सन्तोष। जव बिना कोई कसूर किए हो आपको उसकी सजा भुगतना पडेगा, जेल की तकलीफे उठाना होगा तब आपको मालुम पडेगा कि सचाई और ईमानदारी की कीमत क्या है। तब आप इस रामभजन को तरह ही अपनी सचाई और ईमानदारी पर पछनाएगे।"– रनधावा के शब्दों मे नग्न सत्य की कटुता थी।

"एसा नही होगा।"– मुमुक्षु ने दृढता से कहा। फिर उसे समझाने के लिए पूछा –"ठाकुर साहब आप पर भी ढेर सारे मुकदमे चल रहे है और आपको सजा होना भी निश्चित सा ही है पर मुझे बतलाइए कि आपको इस बात को कोई चिन्ता क्यो नही है ? क्या आपको जेल के दुखभरे कष्ट पूर्ण जीवन से भय नही होता ?

रनधावा हो हो हो कर हँस पड़ा –"भय ! रनधावा को भय ! मैं दुनिया की किसी बात से नही डरता बाबूजी ! मौत मेरे गले का हार है और मै उससे हमेशा खेलता रहता हूँ। जब बाहर को दौड़धूप भरो जिन्दगी से

थक जाता हूँ तो जेल में चला आता हूँ । जेल मेरा आरामगाह है। जब चाहता हूँ तव आजाता हूं जब तबियत होती है चला जाता हूँ । जेल को दीवारें फाँदना मेरे लिए घर की देहलीज फाँदने के बराबर है । आँधी और तूफान की तरह मुझे कोई नहीं रोक सकता । मै अपनी मर्जी का आप मालिक हूँ ।"

"अपनो मर्जी के आप मालिक हो ।"– मुमुक्षुराम ने बड़े समाधान पूर्वक दोहराया। फिर बोले –"यही बात तो है जो तुम्हे सुखो रखता है भाई। पर तुम्हे इसकी कीमत कितनो चुकानी पड़ती है ! दिन रात पुलिस तुम्हारे पोछे लगी रहती है। आज किसे लूटना है, कल किसका घर जलाना है परसों कहाँ डाका डालना है बस दिन रात तुम इसी चिन्ता में डूबे रहते हो। कोई धोखा न दे, कही पुलिम पकड़ न ले इसकी आशंकाएँ सदैव सिर पर मंडराती रहती हैं। एक क्षण कहीं सुख चैन से निर्भय निश्शक नही वैठ सकते इसीलिए तो जेल जैसी भयावनी जगह तुम्हे आरामगाह नजर आती है, क्यों कि यहाँ तुम्हें दो क्षण आराम से बैठने को मिल जाता है। तो भाई सिर्फ यह समभ्क का फेर है। तुमने अपनी मर्जी के मालिक आप होने में सुख मान लिया है। तो हमने सचाई और ईमानदारी पर चलने में माना है। सुख

सन्तोष तो आदमी के मनमें रहता है। नहीं तो तुम जिस काम को करते हो उससे जघन्य काम दुनिया में और क्या होगा ? तुम अपने काम से भले ही खुश हो पर सारी दुनिया तुम्हें घृणा और हिकारत की दृष्टि से देखती है।"

डाकू रनधावा तडप उठा। उसकी मुट्ठियाँ भिन्न गईं और वह कडकते हुए शब्दों में बोला –"यह तुम थे सेठसाहब जो इतना सब कह गए ! वर्ना जिसने मेरे बारे में घृणा का एक अक्षर भी निकाला उसके मुँह में मैंने जुबान नहीं रहने दी। मैं खुद इस दुनिया से नफरत करता हूँ। आज का इन्सान क्या इन्सान रहा है, अपने जरा से सुख के लिए वह कितने लोगों को तकलीफ देता है। जरा से स्वाद के लिए जिन्दा और बेकसूर जानवरों को काटकर खा जाता है। यह वह इन्सान है जिसने दिखाने के लिए बड़े बड़े कानून बनाए हैं, पुलिस बनाई है, जेल बनाए है कि लोग गलत काम न करें, अपराध न हों। पर सारे गलत काम खुले आम होते रहते हैं। खुद कानून बनाने वाले ही उन्हें तोड़ते हैं। मुझे बतलाइए कि सारे अमीर लोग अपने पैसे के बल पर गरीब आदमी को खुले आम लूटते हैं या नहीं ? दिन भर एक गरीब मजदूर कारखाने की धधकती भट्टी में तपता है, अपना खून पसीना एक करके वह माल तैयार करता है पर उसे क्या

मिलता है ? चन्द चाँदी के सिक्के, जिनसे न उसे पेट भर रोटी मिल पाती और न तनभर कपड़ा। क्या यही आज की इन्सायित है कि मेहनत कर माल तैयार करने वाला मजदूर नंगा भूखा रहे और कारखाने का मालिक उस खून पसीने की कमाई पर सिर्फ इसलिए गुलछर्रे उड़ाता रहे कि उसने चन्द चाँदी के टुकड़े लगा कर कारखाना खड़ा किया है। ··· क्या इस शोषण के खिलाफ कोई कानून नहीं ? लोग पूछते है कि मैंने कानून अपने हाथ में क्यों ले लिया ? पर मैं पूछूं कि कानून कम्बख्त आखिर है क्या ? ताकतवर लोगों ने अपनी सुविधा के लिए कानून बनाए हैं और तोड़े हैं। . ... और इसीलिए आज मेंने ताकत हासिल की है। मैं अपनी ताकत से उन लोगों से पैसा छीन लेता हूँ जो दूसरो को चूसकर पैसा कमाते हैं। सारे अमीर मेरे लिए मधुमक्खी के समान हैं जो इधर उधर से धनरूपी शहद मेरे लिए इक्ट्ठा करते हैं और मैं उनसे छीन कर उसे खुले हाथों गरीबों को बाँट देता हूँ। मैं मदन जैसे उन हजारों बेगुनाह बच्चों को पालता हूँ जिन्होंने सड़कों पर जनम लिया है और जो सिर्फ समाज की ठोकरें खाने के लिए जन्मे हैं। ...... आपने घृणा की बात जरूर की बाबू जी...... पर आपको नहीं मालुम कि मैं कितनों का देवता हूँ, कितने

लोग मुझे चाहते हैं।"– "कहते कहते रनधावा कांपने लगा। उसने अपना हृदय खोलकर सामने रख दिया था।"

मुमुक्षु को डाकू की बातो में तथ्य दिखलाई दिया। उसकी जैसी बुद्धि है जीवन ने उसे जैसी परिस्थितियां दी हैं उन्हीं के अनुसार उसने दुनिया और समाज को समझा है। उसी के अनुसार वह स्वय भी बन गया है। कॉटे से कॉटा निकालने के लिए तत्पर यह काँटा आज कितना कटु हो गया है कि सारी दुनिया में उसे कड़वाहट ही दिखलाई देती है। मुमुक्षु ने शान्त स्वर में कहा– "भाई रनधावा, मै तुम्हारी बातों से सहमत हूँ पर मेरी एक बात सुनो तुम्हारी यह समझ कि अमीरों ने गरीबों का सारा धन छीन लिया है और उस धन के सहारे अमीर बहुत ज्यादा सुखी हो गए है यह एक बहुत बड़ी गलत फहमी है। मै यह नही कह सकता कि अमीर अमीर क्यो है और गरीब गरीब क्यों है ? यदि सचमुच कोई दूसरों को ठगकर उनका खून चूस कर अमीर बना है तो वह तुम्हारी तरह ही डाकू है और जैसा कि तुम देख रहे हो डाकू, कभी सुखी नही रह सकते। धन–सम्पदा सुख का पैमाना कभी नहीं बन सकती। मुझे ही देखो मैं करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति का मालिक होकर भी सुखी नहीं हो पाया। सुखी होता तो आज यूँ दुनिया में मारा मारा न फिरता।"

रनधावा ने आश्चर्य से पूछा –"अच्छा तो आप करोड़ पति हैं! ओह, फिर भला मैं भी तो जानूं कि आपको क्या दुख है जिसे आपकी दौलत मिटा नहीं सकी !"

"ऐसा वैसा दुख नहीं, घोर दुख"– मुमुक्षु ने एक निश्वास लेकर कहा –"करोड़ों की धन संपदा घर में पर पुत्र नहीं। एक लड़की हुई सो विवाह के दिन वह भी विधवा हो गई। छोटी बहिन. पहले से ही वैधव्य भोग रही थी। क्या इस हृदय पर वज्रटूट जाने जैसी विपत्ति यह नहीं थी। मैं दुख से पागल हो उठा ...... पर भगवान को मुझ पर कृपा होनी थी सो मुझे साधुसंग मिला। निराशा के अंधकार में सचाई का प्रकाश दिखा। उस प्रकाश की पूर्णता देखने के लिए ही मैं इस भ्रमण पर निकला हूँ। महात्माजी ने जो कुछ कहा था मुझे उनकी एक एक बात सत्य मिली है। मैंने देखा यह सारा ससार दुख ही दुख से तो भरा पड़ा है। जो देखो वह दुखो है और उसने अपने दुख को कम करने के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल लिया है। कोई दुनिया और समाज को दोप देता है, तो कोई अपने भाग्य को दोषी ठहराता है। पर दोष तो हमारा अपना है भाई ! दुनिया तो हमेशा से दोरंगी है। उसका दोभाव कभी नहीं मिटा। अमीर–गरीब, कमजोर-ताकतवर, बुद्धिमान

दुखी होकर मैंने दुनिया को खूब सताया है, गिन गिन कर बदले लिए हैं। लोग रोए हैं, चीखे हैं और मैं उनपर हँसा हूँ। अपनी ताकत और निर्भयता के नशे में मैंने अपने आपको सुखी भी माना है ... पर कई बार जब रात भर की भाग दौड़ के बाद किसी भयावनी और कष्टप्रद जगह में मुझे जानवर की तरह छिपे दुबके दिन निकालने पड़े हैं और जरा से खुटके से पकड़े जाने के भय से कलेजा कांपता है तो मुझे लगा है कि मेरी जिन्दगी कितनी बदतर जिन्दगी है, मैंचैन से जी भी नही सकता......उफ ..उफ...

"हाँ हाँ यही कष्ट, यही वेदना, इस ससार में भरी पड़ी है। ··· पर जैसे रेगिस्तान की छाती में नखलिस्तान होता है, वैसे ही हमारे दुखों में सुखों का वास है। यदि हम इसे समझते तो हम अनायास ही सुखी हो सकते हैं। संसार में अनेक प्रकार के भोग सुख हैं और यह तो संभव नहीं कि वे सारे के सारे हरेक व्यक्ति को मिल जाएँ। किसी को किसी वस्तु का अभाव है तो किसी को किसी वस्तु का ······ और यदि इन अभावों से मनुष्य दुखी होता रहा तो वह बराबर दुखी होता जाएगा। अतः इस भंगुर जीवन में हमेशा यही सोचकर आनन्दित रहना चाहिए कि हम बहुत अच्छी स्थिति में हैं ; दुनिया में हमसे भी गए बीते लोग है फिर हम क्यों

दुखी हों। ··· और सबसे ऊपर आनन्द घन भगवान सच्चिदानन्द की स्थिति है। संसार की यह सारी माया उनकी ही बनाई हुई है पर उससे निर्लिप्त रहकर सभी जीवों में आनन्द का प्रकाश फैलाते हैं। भय, उत्तेजना, करुणा और वेदना आदि सभी भावनाएँ मनुष्य के मन को हैं पर मनुष्य की आत्मा का गुण तो आनन्द स्वरूप है। यही आनन्द भगवान का प्रकाश है इसीलिए हमें भगवत्भजन और कीर्तन में सहज आनन्द मिलता है।"

"वाह सेठजी, आपके ज्ञान को सुनकर धन्य होगए"–रनधावा ने बच्चों जैसी निर्दोष प्रसन्नता व्यक्त की।

"मेरे मन को भी बड़ी प्रसन्नता हुई भाई साहब! रामभजन बोला –"अब मुझे विश्वास हो चला है कि दुनिया में सच्चे और निर्दोष व्यक्ति को डरने की क्या जरूरत?"

"या अल्लाह! मेरा कुसूर माफ कर।"–बहराम एक कोने में जाकर नमाज पढ़ने लगा।

तभी दरवाजा खुला और सन्तरियों ने एक नये कैदी को अन्दर डाल दिया। वह व्यक्ति मैले-कुचेले और फटे कपड़े पहिने था। वह शक्लसूरत से भला लगता था पर हजामत बढ़ रही थी और चेहरे पर हवाइयाँ थी। अन्दर आते ही उसने इन लोगों की ओर देखा। वे सब

लोग भी इस नए मेहमान को देख रहे थे। अकस्मात वह युवक मुमुक्षुराम को ओर देखकर चौंका। मुमुक्षुराम भी उसे ध्यान से देख रहे थे। वह व्यक्ति कहीं देखा हुआ मा लगता था। शीघ्र ही वे उसे पहिचान गए। वह व्यक्ति भी पहिचान गया था, उसके चहरे का रंग उड़ गया।

',कहो भाई कैसे हो ?"—मुमुक्षुराम ने मुस्कुरा क पूछा।

"जो ......जी ...... मैंने आपको पहिचाना नहीं।"—उस व्यक्ति ने हकलाते हुए कहा।

"हाँ जी ! तुम मुझे क्यों पहचानोगे ? तुम्हारी पहचान तो रुपये से है, लोगों को जेबों से है। है न ?"—मुमुक्षु ने प्यार से पूछा।

"क्या मतलब ?"—वह व्यक्ति थोड़ा सा तना और बोला—"आप कहना क्या चाहते हैं ?"

"यही मेरे बेटे"—मुमुक्षु ने मधुरता मे कहा—"कि जिस पैसे को तुमने इतना चाहा आज उसी ने तुम्हें यहाँ जेल में ला पटका। काश कि तुम उन आदमियों को पहिचानते होते जिनकी तुमने जेबें काटी हैं तो आज इतने दुखो न होते।"

"किसने कहा कि मैं दुखी हूं। मुझे तो जबर्दस्ती

पकड़ लाया गया है। मैंने कुछ किया ही नहीं है।"—घबराहट भरे शब्दो में उस व्यक्ति ने कहा।

"हो सकता है कि इस बार तुम निर्दोष ही पकड़े गये हो पर बहुत पहले से तुम यह सब करते रहे हो न"—मुमुक्षु की दृष्टि में बड़ा तीखा पन था, वे बोले—"डरो नहीं, तुमने मेरी जेब काट कर मेरा उपकार ही किया था कि मैं धन—मम्पदा से अपना पोछा छूटा सका था। तुमने प्रभु इच्छा से छुटा दिया। मैं तो तुम्हें कभी का माफ कर चुका पर तुम अभी तक अपने गुनाह से भयभोत हो। नहीं मालूम था कि तुम से यहाँ ऐसी परिस्थितियों में मुलाकात हो जायगी। बोलो अब पहिचाना या नहीं?"

"हाँ जी हाँ"—हकलाते हुए वह व्यक्ति बोला—"आप द्वारका जा रहे थे तब मैंने आपकी जेब साफ की थी। पर आप यहाँ कैसे?"

"जैसे तुम वैसे मैं"— मुमुक्षु ने हँसकर कहा—"मुझ पर एक हत्या का आरोप है।"

"एँ!"—आश्चर्य से उस व्यक्ति ने कहा—"आप पर हत्या का आरोप! नहीं ऐसा नहीं हो सकता, आप जैसे देव पुरुष के हाथो ऐसा काम हो हो नहीं सकता।"

"पर आरोप तो है भाई।"—मुमुक्षुराम ने पूछा—"आपका नाम?"

"आस्तेयदास ।"

"तो आस्तेयदास जी आपका विश्वास सत्य है । मैं निर्दोष हूँ और मुझे विश्वास है कि एक दिन अवश्य सत्य प्रकट होगा और मैं निरपराध घोषित किया जाऊँगा ।"

आस्तेयदास ने सिर झुका लिया । मुमुक्षुराम के रुपये चुराकर भागने के बाद आज इतने दिनों बाद वह मुमुक्षुराम के सामन इस रूप में आ खड़ा हुआ था । इस बार उसने कोई चोरी नही की थी पर पकड़ा गया था । वह अपने आपको निर्दोष निरपराध अनुभव कर रहा था पर सहमा मुमुक्षु के सामने आकर उसे लगा वह अपराधी है । मुमुक्षुराम का अपराधी है । आज सत्य अपने आप प्रकट हुआ है और उमने उसे यहाँ ला खड़ा किया है । अनायास ही उसके मुख से निकला–"सत्यमेव जयते ।"

१७

एक सप्ताह भी नहीं बोतने पाया था कि मुमुक्षुराम पर लगा आरोप निरपराध मिद्ध हो गया। मथुरा और बरसाना से तो उनके विग़य में सूचना आही गई थी महात्मा कृष्णानन्द जी और श्रीकिशनदास जो ने इस विषय में बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा था कि मुमुक्षुराम जैमे साधु पुरुष के विपय मे वे काई ऐसी वैसो बात सोच तक नहीं मकते। मुमुक्षु जी के वकील सत्य-प्रकाश ने अपनी बहस के द्वारा यह पूरी तरह से सिद्ध कर दिया कि मुमूक्षुराम अकस्मात ही एक दुर्घटना के शिकार हुए हैं। चलती गाड़ी में जब ठसाठस भीड़ हो, किसी की सन्दूक पर वैठ जाना यह सिद्ध नही करता कि वे उसके मालिक हैं। फिर उनका अपना सामान भी तो उनके साथ था। ···· रात के समय की यात्रा में किसी सहयात्री से पहचान होना या ऐसे किसी सहयात्री को गवाह के रूप मे पेश करना, जो यह कह सके कि वह सन्दूक उनका नही है, हालात को देखते हुए सभव न था। सत्य प्रकाशजी ने अदालत को मुमुक्षुराम की निर्दोषता के प्रति आश्वस्त कर उन्हे सन्देह का लाभ देने की प्रार्थना की।

तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी ...... जिस हत्या का आरोप मुमुक्षुराम पर था उसका वास्तविक हत्यारा पकडा गया और उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। वह उत्तर प्रदेश का नामी गुण्डा था और हाथरस का रहने वाला था। उसकी बुरी आदतों और हरकतों से तंग आकर उसके परिवारवालो ने उसे अलग कर दिया था। बाप दादो की कुछ जमीन–जायदाद थी, उसकी देख भाल उसका बड़ा भाई करता था। नाम तो उसका फूलबाबू था। पर उसने अपने को 'बेदिल' के नाम से मशहूर कर रखा था। सचमुच ही वह क्रूर हृदय बेदिल था। वह शराब, जुँआ और चोरी में दिन रात व्यस्त रहता पर जब कभी उसे रुपया पैसे की कोई खास जरूरत पड़ती वह अपने भाई को दबा कर उससे रुपया वसूल कर लिया करता था। उस दिन बेदिल ने अपने भाई को रुपया लेकर अड्डे पर बुलाया था। भाई बिना रुपये के आया तो बेदिल उसपर बिगड़ पड़ा। भाई ने कहा कि जायदाद की देख भाल वह खुद करता है और उसने कुछ अपना व्यापार भी जमाया है तब बेदिल का उसकी कमाई पर क्या हक है?"– बेदिल बिगड़ा हुआ था, उसे बहस नही रुपया चाहिए था। दोनों भाइयो में झगड़ा होगया और बेदिल ने अपने भाई की हत्या कर

डाली। हत्या करने के बाद उसे जब लाश छिपाने का कोई और तरीका नहीं सूझा तो उसने उसे इस तरह सन्दूक में बन्द कर गाड़ी में रख दिया। उसने सोचा था कि इस तरह उसके खून का पता नही चलेगा। पर उसके भाई के गायब हो जाने के दिन से पुलिस उसकी खोज में थी। सन्दूक वाली घटना और मुमुक्षुराम की गिरफ्तारी उसी रात हाथरस से चली गाड़ी में हुई। यद्यपि लाश टुकड़े टुकड़े करें डाली गई थी, पर पहने हुए कपड़ों के चिन्हों से उसे पहिचान लिया गया। जब बेदिल पकड़ा गया तो उसने स्वीकार भी कर लिया कि असली कातिल वही है।

मुमुक्षुराम को निरपराध घोषित कर अदालत से बइज्जत रिहाई का आदेश दे दिया गया। इस बीच जेल के उनके साथी उन्हें बहुत चाहने लगे। सभी के मन में उन्होंने एक स्थाई प्रेम और शान्ति की भावना जागृत कर दी थी। सुबह शाम सबके सत्र भगवान के ध्यान और भजन – कीर्तन कर मन को शान्ति पहुँचाते थे। मुमुक्षुराम की निर्दोष रिहाई का आदेश सुनकर उन्हे जहाँ एक ओर सत्य की विजय का आनन्द हुआ वहाँ उनसे बिछड़ने का कष्ट भी। उन्होंने आँखों में प्रेम के आँसू भर कर मुमुक्षुराम को विदा किया।

१८

जब गाडी इलाहाबाद स्टेशन पर जाकर रुकी, उषा का नवीन प्रकाश खिलने लगा था। मुमुक्षुराम गाडी से उतर कर, स्टेशन के बाहर आए। उनका इरादा सीधा संगम पर जाने का था, पर घाट के पण्डों के आदमियो ने उन्हे वही घेर लिया। सबका एक ही प्रश्न था –"गगा स्नान को आए है ? तो चलिए हमारे साथ, हमारे घाट पर। हम आपका सारा प्रबन्ध करेगे। आपको जरा भी कष्ट न होगा।" "आपका नाम बतलाइए, आप किसके बेटे है"– कोई कोई नामावली का बही खाता लिए पूछता –"शायद आपका वश हमारे यजमानों में से हो। सारे भारतभर मे हमारे यजमान वर्तमान है।"

मुमुक्षुराम किसी के साथ जाना नही चाहते थे। तभी एक साधारण सा ब्राह्मण उनके पास आया और बोला, –"मेरा नाम केशव चन्द्र है। मैं लाल जी बाला जी पण्डा, जिनका चक्कर वाला है, झण्डा का प्रतिनिधि हूँ। कहिए आप किसके यजमान है।"

"अभी तक तो किसी के नही"– मुमुक्षुराम ने कहा– "हम तीर्थयात्रा पर निकले है और अपना परिचय गुप्त रखना चाहते है।"

"कोई बात नहीं, जैसी आपकी इच्छा" –केशवचंद्र ने मधुर शब्दों में कहा।

मुमुक्षुराम ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया– "दान दक्षिणा का विशेष प्रबन्ध भी हमारे पास नहीं है। यदि चाहते हो तो हम आप के साथ चल सकते हैं।"

केशवचद्र ने अर्थपूर्ण दृष्टि से मुमुक्षुराम को देखा, फिर कुछ सोचकर बोला –"अवश्य! अवश्य! यजमान! यह गंगा मैया का दरबार हैं। यहाँ गरीब अमीर का कोई भेदभाव नहीं। चलिए पण्डा जी के अतिथि गृह में ही आपके ठहरने की व्यवस्था हो जाएगी।"

मुमुक्षुराम ब्राह्मण केशवचंद्र के साथ हो लिए। उनके साथ कुछ अधिक सामान तो था नहीं अतः केशव ने एक साइकिल रिक्से वाले को बुलाया और उसमें बैठ कर वे चल दिए। प्रयाग बड़ा शहर हैं, यहाँ सभी प्रकार की सवारियाँ मिलती हैं पर साइकिल रिक्से बहुतायत से हैं। मुमुक्षुराम ने जब रिक्से वाले को ताकत लगाकर पेडिल घुमाते हुए देखा तो उनका मन उदास हो गया उन्हें उदास होते हुए देखकर केशव ने पूछा- "अरे यजमान! आप क्यों उदास हो गए?"

"मित्र तुमने कोई दूसरी सवारी क्यों नहीं ली?" मुमुक्षुराम ने अनायास ही पूछा।

"क्यों ? दूसरी सवारी की क्या आवश्यकता थो। हमारे पास न तो सामान ही अधिक था और हम केवल दो ही आदमी तो थे फिर यह रिक्सा वाला भी अपना आदमी है पैसा अधिक नहीं लेगा।" केशव ने समझाते हुए कहा।

"पैसे की कोई बात नहीं केशवजी।" मुमुक्षुराम ने दुखपूर्ण शब्दों में कहा–" वास्तविक बात यह है कि मुझे यह दुख हो रहा है कि एक आदमी मुझे खीचकर ले जा रहा है।"

केशवचंद्र मुस्कराया बोला– "आप दयावान हैं बाबू जी पर इस दुनिया में तो सभी कुछ होना है। यह तो सिर्फ साइकिल रिक्शा है, इसे चलाने में अधिक कष्ट नहीं होता पर उधर पूरब में कलकत्ते में तो आदमी रिक्शे में घोड़े की तरह जुतता है वहां की तो आम सवारी ही वह है। –"फिर वह रिक्शे वाले से बोला –" भैया मनमुखा देखा हमारे यजमान को बहुत कष्ट हो रहा है कि आदमी आदमी को खींच रहा है।"

"धन्य यजमान। जो उनके मन में दया उपजी है, मुझ गरीब को दो पैसे ज्यादा मिलेंगे।" पशु की तरह हांफ़ता हुआ मनसुखा बोला।

"पर यह मनुष्य के प्रति मनुष्य की बड़ी निर्दयता

है"– मुमुक्षुराम ने वेदना से कहा।
"न भैया जी निर्दयता नही यह तो पुण्य है पुण्य।" रिक्शेवाला बोला– "आप जैसे धर्मात्मा तीरथ यात्रियों की सेवा करके हम अपने बच्चों का पेट भरते है। हमारे करम में विधाना ने बोझा ढोना ही लिखा है उसमें हमारा सौभाग्य है कि हम यहाँ गगा के किनारे जन्में हैं जो पुण्यात्माओं को ढोते हे। उनका आधा पुण्य तो हमें यू भी मिल जाता होगा।

केशवचद्र ने मुस्कुराकर मुमुक्षुराम को ओर देखा। मुमुक्षुराम निरुत्तर से हो गए पर उन्हे समाधान नही हुआ। उनके करुणाद्र हृदय में जो प्राणिमात्र के लिए दया भावना उमड़ रही थी वह यह सहन करने में असमर्थ थी कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को पशु का तरह ढोए। पर उन्होंने कुछ और बोलना उचित न समझा।

लाल जी बाला जी पण्डा के दो बड़े-बड़े मकान थे, जिनमें से एक को उन्होंने अतिथिशाला बना रक्खा था, वहां यजमानों के ठहरने की समुचित व्यवस्था थी। मुमुक्षुराम को एक छोटे से कमरे में ठहरा दिया गया उनके गंगा स्नान और दर्शनादि की व्यवस्था का काम मोहन नाम के एक लड़के को सौंप दिया गया।

मुमुक्षुराम जब गंगा स्नान के लिए संगम पर पहुँचे

सूर्योदय हो चुका था। भगवान भास्कर की पीत किरणों से दूर-दूर तक पड़ी किनारों की रेती शुभ्र चाँदी के समान चमक रही थी। दूर किनारों पर से हर हर बम-बम, जै जै गंगा मैया और ब्राह्मणों के मन्त्रो की ध्वनियां गूंज रही थी। मुमुक्षु ने हाथ जोडकर गगा को प्रणाम किया•••••• सगम ! सभी तीर्थो का शिरमौर सगम ! जहां दो महान नदियों की परम पवित्र धाराएँ मिलकर एक हो गई है•• •' मुमुक्षुराम भावविभोर होकर दूर-दूर तक फैले हुए गगा यमुना के किनारो और तीव्र गति से बहती हुई उनकी धाराओ को देखते रहे। एक ओर से गगा की उज्वल धवल धारा दूसरी ओर से सहज श्याम आकाशी रग की यमुना धारा, दोनो एक दूसरे को आकर आलिंगन मे बाध लेती सी लग रही थी। उनकी गोद में अनेक छोटी–बडी नावे अस्थिर सी हिल–डुल रही थी जैसे वे उनके आभूषण हों ! किनारों पर बहुत से श्रद्धालु अपने मृतक पूर्वजो के अन्तिम क्रिया-कर्म करवा रहे थे। ब्राह्मणों के अपने स्वर थे, पण्डों की अपनी सजावट थी। वे ऐसे लगते थे जैसे मनुष्य न होकर गगा-यमुना के ही जलचर हों। आहा ! इस वातावरण की पवित्रता और मनोरमता का क्या कहना ? मुमुक्षुराम भावविभोर हो अपना अस्तित्व सा भूलने लगे। उन्हें लगा जैसे ये दोनों

महानदियाँ इस धरती पर बहने वाली सामान्य जल वाहिनी निर्जीव नदियाँ मात्र ही न हो बल्कि वे दो सजीव और सदेह देवियाँ वहाँ साक्षात प्रकट हो उठी हों। वे सहस्त्रों वर्षो से इसी प्रकार बहती आई हैं। उन्होंने हमारी सभ्यताओं के अनेक युगों को देखा है ...आह हमारे पूर्वजों के अस्थि-अवशेष अनादिकाल से यहीं इसी संगम पर लाकर डाले गये है। पुत्र ने पिता की अस्थियाँ यहाँ डाली हैं और एक दिन उसकी अस्थियाँ उसका पुत्र यहां लाकर डालेगा। मृत्यु के पश्चात अवशेषों के रूप में हमारे अपने पूर्वजों का यह मिलन - स्थल !.... कैसी कल्पना है.... मृत्यु के पश्चात आत्माओं का यदि कोई मिलन - स्थल है तो कदाचित यही संगम है। सहस्त्रों वर्षों से ऐसा होता चला आया है।

यहाँ आकर इन विशालधाराओं के मध्य खड़े होकर मनुष्य को अपनी नश्वरता का बोध होता है। उसका अस्तित्व पानी के एक बुलबुले की तरह मिटकर पंच तत्व में लीन हो जाने वाला है। यहाँ सहज ही यह भावना प्रकट हो उठती है। आहा ! इसीलिए यह तीर्थो का राजा महान 'प्रयागराज' है। -श्रद्धापूर्ण भावनाओं से भरे हुए मुमुक्षुराम के नेत्रों में आँसू भर आए।

"बाबू जी यही नहाएगें या बीच धारा में चलकर।"-

मोहन ने मुमुक्षुराम को भावविभोर देख कर पूछा ।

"हाँ बेटे ! हम यहीं नहा लेगें ।"–मुमुक्षुराम ने संभलते हुए उत्तर दिया ।

स्नान के पश्चात वे बेणीमाधव के दर्शन के लिए गए । वहीं अक्षय वट का पूजन कर फिर अपने निवास की ओर वापिस लौट पड़े ।

२१

मुमुक्षुराम को मोहन से ज्ञात हुआ कि जिस भवन में वे ठहरे हैं उसी भवन में एक महात्मा सरलानन्द जो भी टिके हुए हैं। मुमुक्षुराम के मन में सहज ही उनके दर्शन की भावना उत्पन्न हुई। भवन के पिछले भाग में एक बड़े कमरे में महात्मा जी विराजमान थे। चार छः और लोग वहाँ बैठे उनसे चर्चा कर रहे थे, एक अधेड़ अवस्था की महिला भी बैठी हुई थी। मुमुक्षु के प्रवेश करते ही सबको दृष्टि उनको ओर गई। मुमुक्षु ने महात्मा जी को प्रणाम किया।

महात्मा जी दुबले-पतले शरीर के, साधारण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। उन्होंने एक भगवा वस्त्र अपने शरीर पर ओढ़ रखा था। माथे पर त्रिपुण्ड था जिससे वे शैव नजर आते थे, पर सामने के ग्रन्थों में सबसे ऊपर विष्णु-सहस्त्रनाम रखा हुआ था। आयु में वे अधिक नहीं दिखते थे, यही कोई तोस-पैंतीस की युवा अवस्था होगी, पर विकार रहित चहरे पर उनके विशाल नेत्रों में दर्शक को अनायास ही प्रभावित कर लेने वाली शक्ति थी। उन्होंने मुमुक्षु के प्रणाम का उत्तर देते हुए बैठने का

इशारा किया और मुस्कुरा कर परिचय पूछा।

मुमुक्षु ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए बतलाया कि उन्हें सत्संग की बड़ी कामना रहती है। अध्यात्म में उनकी रुचि है इसीलिए महात्मा जी से मिलने का लोभ वे संवरण न कर सके।

महात्मा जी ने प्रसन्न होते हुए कहा—"सात्विक पुरुषों में और पुण्यात्माओं में ही ऐसी रुचि जागती है। अभी हम लोग सत्संग पर ही चर्चा कर रहे थे। सत्संग का लाभ अधिक से अधिक कैसे होता है यही हमारे कथन का विषय था।"

"आप कहते जाएँ स्वामी जी।"—मुमुक्षु ने नम्रता से कहा।

महात्मा जी ने अन्य लोगों की ओर देखते हुए अपना पूर्व–प्रसंग फिर शुरू किया—"सत्संग का वास्तविक अर्थ है "सत्य का संग।"

जैसा कि समझा जाता है कि चार आदमी मिल कर सत्संग करें इसका नाम सत्संग नहीं है। वह तो केवल सत्य की चर्चा होगी। वास्तविक सत्संग तो है बल का सदुपयोग और विवेक का आदर, जिसका फल होता है सत्य के प्रति सहज अनुराग और इस अनुराग का नाम ही है सत्संग। सत्य से अभिन्न होने का नाम ही सत्संग

है और उसकी प्राप्ति का साधन है असत्य का त्याग। असत्य हमें तीन रूप में प्रतीत हो रहा है। प्रथम विवेक विरोधी कर्म असत्य है, द्वितीय विवेक विरोधी विश्वास असत्य है और तृतीय विवेक विरोधी सम्बन्ध असत्य है। विवेक विरोधी कर्म का त्याग होने पर सही काम स्वयं होने लगता है, उसमें न तो कर्ता को कृतत्व का अभिमान होता है और न फल में आसक्ति होती है। इस प्रकार के कर्मों का फल कर्म के बाद सहज विश्राम देता है। विश्राम से कर्म करने की सामर्थ्य और सत्यदर्शन की योग्यता दोनों सहज प्राप्त होती है कारण कि विश्राम में जब दृश्य का चिन्तन नहीं होता है उस समय हम सत्य से अभिन्न ही होते हैं। कुछ काल सत्य से अभिन्न रहने का परिणाम यह होता है कि दृश्य की आसक्ति नष्ट हो जाती है और अपनी पूर्णता का बोध हो जाता है जो कि जीवन का चरम लक्ष्य है।

इसी प्रकार विवेक विरोधी विश्वास का त्याग करते ही वस्तु और व्यक्ति में जो ममता है वह टूट जाती है। ममता के नष्ट होते ही आसक्ति की जड़ उखड़ जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप वस्तुओं के प्रति लोभ और व्यक्तियों में मोह निवृत्त हो जाता है। लोभ, मोह निवृत्त होते ही व्यक्ति की सेवा और वस्तु का सदुपयोग सहज होने लग जाता हैं जिसके

परिणाम स्वरूप संसार सुखी होता है और साधक का अहं जो पहिले राग द्वेष से मलिन हो रहा था, वह अपने विश्वासास्पद भगवान को आस्था, श्रद्धा, विश्वास और आत्मीयता को प्राप्त करता हुआ क्रमशः प्रीति के रूप में परिणित हो जाता है। अब संसार नहीं रहा, अब रह गए प्रियतम के रूप में भगवान और स्वयं उनकी प्रीति और उसके बाद जो कुछ होता है, वह प्रियतम प्रभु और उनका लीला-विलास हीं है। उसके बाद जो कुछ है सो भगवान और जो कुछ हो रहा है सो वह उनकी लीला; इस लीला-रस का आस्वादन करते करते भक्त का रोम-रोम विभोर होता रहता है।

विवेक विरोधी संबन्ध का त्याग करते ही कामनाओं का सहज नाश और तादात्म्य की निवृत्ति होती है। सीमित अहं, परिछिन्न अहं गल जाता है और अपना स्वयं प्रकाश शुद्ध परिपूर्ण अहं प्रकट होता है जिस अहं में यह समस्त प्रतीयमान प्रपंच चित् स्वरूप अपने आप के चिन्ह विलास के रूप में भासित होने लगता है। अब तक जो यह मालुम पड़ता था कि मैं देखने वाला और यह दीखने वाला दोनों पृथक पृथक हैं यह भ्रम मिट जाता है और ऐसा स्पष्ट बोध होता है कि दृष्टा और दृश्य, भोक्ता और भोग्य, कारण और कर्म ये सब मेरे स्वरूप

के विवर्त हैं। दृष्टा रूप से मैं समस्त प्रपंच से असंग हूं। अधिष्ठान रूप से समस्त प्रपंच के भाव और अभाव दोनों का आधार हूं और चूंकि दृष्टा और अधिष्ठान दोनों एक हैं इसलिए अब तक जिसका नाम प्रपंच था वह प्रपंच नहीं, सच्चिदानन्द स्वरूप मेरे आत्मा का ही रूप है। जो प्रपंच है सो ही मैं हूं। जो मैं हूं सो ही प्रपंच है। अब प्रपंच प्रपंच के रूप में नहीं है। अब सीमित अहं अहं के रूप में नहीं है। अब सब कुछ शब्द और सब कुछ अर्थ, अविनाशी अखंड परिपूर्ण ब्रह्म है। इस अनुभूति में साधक की अहं मन्यता सदा सदा के लिए डूब जाती है।

"महात्मा जो साधक किसे कहते हैं? मुमुक्षु ने कहा।

"साधक उसे कहते हैं जिसका कोई साध्य है उसकी कोई माँग है, उस पर कोई दायत्व है। बोध प्राप्त करना है तो देह से सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा। भक्ति प्राप्त करना है तो संसार का विश्वास छोड़ना ही पड़ेगा और सही काम करने हैं तो गलत काम छोड़ने ही पड़ेंगे। यही है साधक के ऊपर अपना दायत्व। वह अपना पूरा करे, माँग अपने आप पूरी हो जाएगी।

"स्वामी जी मुझे एक शंका उत्पन्न होती है।"–एक वृद्ध व्यक्ति ने कहा–"हम यह कैसे जाने कि सत्य ज्ञान क्या है, उसकी कसौटी क्या है? यदि हम साधु महात्मा

के वचन को प्रमाण माने तो सच्चे साधु पुरुष की पहिचान क्या है ?"

"वाह वाह बड़ा सुन्दर प्रश्न पूछा है ?"—महात्मा जी प्रसन्न होते हुए बोले। क्षण भर के लिए उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए जैसे कुछ सोच रहे हों फिर बोले—"प्रथम तो हम यह बतलाएगें कि साधु पहिचान क्या है ? सत्य की साधना करने वाले को ही मै साधु मानता हूँ। वेष–भूषा से, जप तप से या अपने आपको साधु कह देने से ही कोई साधु नहीं हो जाता। वह तो सत्य के दर्शन से ही साधु होना है। अब सत्य क्या होता है, उसे हम कैसे जाने यह बतलाऊँगा। सत्य तो स्वय सिद्ध है उसे किसी प्रमाण या कसौटी की आवश्यकता नही होती और जैसा कि मै कह चुका हूँ श्रवण, मनन और चिन्तन के द्वारा हमें उसकी सत्यता का अनुभव होता है। वह महात्मा कहता है या उस ग्रन्थ में लिखा है इसलिए हम किसी बात को सत्य माने, यह ठीक नही जब तक हमें स्वयं उसकी सत्यता की अनुभूति न हो जाय हमें उसे सत्य मानना ही नहीं चाहिए। कहते है न कि कानों सुनी बात गलत हो सकती है पर आँखों देखी नहीं। दूसरों की कही–सुनी हुई बात को आप सत्य मानलें तो आपके मन में यही होगा न, कि उन्होंने कहा है या वहाँ लिखा है

इसलिए यह सत्य है, पर यदि स्वयं आपने अनुभव से उसकी सत्यता को जाना है तो आप दृढ़ता से कह सकेगें कि यह परम सत्य है। और सत्य तो सदैव प्रत्यक्ष होता है–ईश्वर और आत्मा का विषय कोई जटिल विषय नहीं है।"

मुमुक्षु महात्मा जी के ज्ञान मे बड़े प्रभाविन हुए, बोले–"स्वामी जी मुझे बतलाइए कि संसार में सुख कहाँ है ?"

महात्मा जो मुस्कुराए, बोले–"संसार में सुख है कहाँ ? जिसे संसार के लोग सुख मानते हैं वह भोग–विलास है, और भोग–विलास तो सारे दुखों का जड़ है क्योंकि उससे कभी तृप्ति तो होती नही बल्कि तृष्णा बढ़ती जाती है। इसीलिए भोग – विलास का त्याग ही वास्तविक सुख प्राप्ति की प्रथम सीढ़ो है। इसके लिए मन का शमन आवश्यक है, क्योंकि मन ही कामनाएं उत्पन्न करता है।"

"पर मन का शमन कैसे हो ?"–वहाँ बैठी हुई महिला ने सहमा पूछा।

"मन का शमन !"–महात्मा ने प्रश्न दोहराया–मन का शमन होता है आसक्ति और कामना के त्याग से। दोनों ही बातें कठिन हैं देवी ! हैं न ?"

प्रश्न सीधा महिला से किया गया था, उसके चहरे पर कुछ घबराहट सी आई, उसने कम्पित स्वर में पूछा—"इसका मतलब तो यह हुआ कि प्रत्येक मनुष्य संसार का त्याग कर सन्यासी हो जाए।"

"नहीं।"—महात्मा जी ने दृढता से कहा—"सन्यास एक बिल्कुल अलग अवस्था है। संसार में रह कर भी मनुष्य आसक्ति और कामना का नाश कर सकता है, क्योकि वे केवल भावनाएँ हैं, मन की अवस्थाएँ मात्र हैं। भोजन, शयन आदि अनक कार्य भोगविलास के अन्तर्गत ही आते है पर सन्यासी को भी उनकी आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में कर्म का नही बल्कि इन्द्रिय जनित भावनाओ का शमन करना पड़ता है। हमारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है इसोलिए हम किसी पदार्थ का सेवन करें न कि उससे भौतिक सुख पाने की कामना से उसे भोगें। ...... इस प्रकार हम निर्लिप्त भाव से सांसारिक वस्तुओं को भोगें। शास्त्र इसे उपरति कहते है।"

हम बुराई को बुराई जान कर भी क्यों नहीं छोड़ पाते? भलाई को भलाई समझ कर क्यों उसका अनुकरण नहीं करते?"— महिला ने अपनी दुविधा व्यक्त की।

"बुराई करने में उसके दो भाग हैं, एक भाग में है उसका परिणाम दुख और दूसरे भाग में है उससे मिलने वाला

सुख। बुराई करने से जब तक मिलने वाले सुख का प्रभाव रहता है तब तक बुराई नहीं छूटती किन्तु उस बुराई के परिणाम में उससे मिलने वाले दुख का परिणाम जब पड़ता है और जब वह असह्य हो जाता है तो बुराई छोड़ना सुलभ हो जाता है। यदि बुराई छोड़नी है तो उसके परिणाम में मिलने वाला जो दुख है, वह हमारे सामने आना चाहिए। इसी प्रकार सही काम करना चाहकर भी जो नहीं कर पाते, उसका कारण है कि उसकी कठिनाई तो दिखती है पर उसका परिणाम जो दुख है उस पर दृष्टि न जाने के कारण भलाई करना कठिन हो रहा है। यदि भलाई करनी है तो उसका परिणाम जो सुख है उसको महत्व देना चाहिए।

"संत के कर्म कैसे होते हैं?"– वृद्ध श्रद्धालू ने पूछा।

"संत बुराई नही करता है किन्तु किसी भय से नहीं। इसी प्रकार वह भलाई करता है किन्तु किसी प्रलोभन से नहीं। जैसे सूर्य से समस्त संसार को प्रकाश मिलता है किन्तु सूर्य को इसका भान नहीं है। इसी प्रकार संत के व्यवहार से उसके जीवन से सभी को प्रकाश मिलता है किन्तु उसको भान नहीं है।

"महापुरुष के क्या लक्षण हैं!"

"स्वस्वरूप में जिसकी स्थिरता और अभेद दृष्टि

की प्राप्ति और किसी भी देश में किसी भी कारण से, कभी भी चंचल न होने वाला धैर्य; धैर्य को शम: शीलता की, क्षमा की मानो वह गढ़ी हुई मूर्ति ही है। इन लक्षणों वाले पुरुष को यहाँ पुरुष के नाम से कहा जाता है।

वृद्ध महोदय ने पूछा–"महात्मा जी मन और आत्मा में क्या अन्तर है?"

"बहुत अधिक बाबू जी!"–महात्मा बोले–"मन बेचारा जड है इसलिए वह उपसाधन मात्र है। आत्मा शाश्वत है, जीवन का वास्तविक प्रकाश है। अन्य शब्दों में कहें तो मन आत्मा का साधन है। मन मे चेतनता जो है वह चेतन ब्रह्म की है।"

तभी पण्डा लाल जी बाला जी वहाँ आ गए। वहाँ सभी लोगों से उनका परिचय कराया गया। मुमुक्षुराम पण्डा जी से मिलकर प्रसन्न हुए। वह ज्ञानवान और श्रद्धालू ब्राह्मण थे। अभिमान रहित उनके व्यवहार में शालीनता थी। परिचय के पश्चात ब्राह्मणों पर चर्चा चल उठी तो लाल जी ने कहा–"धर्म की सेवा और ज्ञान की साधना हम ब्राह्मणों का वर्णधर्म है। वह हमारा सामाजिक कर्त्तव्य है पर आज के ब्राह्मण ने कर्त्तव्य और धर्म को ताक में रखकर पुरोहिती को अपना धंधा बना लिया। अब धधा – व्यवसाय किसी भी बात का हो, वैश्य की वृत्ति है, ब्राह्मण

की तो बिल्कुल नही। आज का ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं रहा, न उसमें वह ज्ञान रहा और न वह मन्त्र, इसीलिए आज उसका आदर–सम्मान भी उठ गया है।"

"पर ब्राह्मण को भी तो जीविका चलाने के लिए कुछ चाहिए, यदि वह अपने पूजा पाठ मे न कमाये तो खाए क्या ?" –वृद्ध महोदय ने कहा।

"ब्राह्मण को खाने कमाने की चिन्ता होना ही नही चाहिए।" –लालजी ने हंस कर कहा –"बिना माँगे देने वाले श्रद्धालुओ की कमी नही है, उससे सम्मान बना रहता है और आत्माभिमान की भी रक्षा होती है। श्रद्धा बनाए रखना ही बडी बात है, श्रद्धा ही न रही तो श्रद्धालु क्यो देंगे ? और फिर जिसने माँगा वह पूज्य न रहा, वह तो भिखारी हो गया। खैर यह जटिल बाते है, हम भला किससे कहे ? हमारा वंश पण्डो का है। अपने लालच और बुरी लतों के कारण पण्डे वैसे ही बदनाम हो गए है। यजमानों के माल पर गुलछर्रे उड़ाना वे अपना धर्म समझते है। आज लोग पण्डों और ठगों में अन्तर ही नही समझते।……और यह सब कुछ लालची ढोंगी दुर्जनों के कारण ही हुआ है। वे पुरोहित क्या जो यजमान की परिस्थिति न समझते हुए उसे नोचने-खसोटने लग जाएँ। यजमान केवल भावनावश ही आता

है, यदि उसकी यही भावना हमने तोड़ दी तो कौन आएगा। हमने तो अपना सिद्धान्त बना लिया है कि किसी के पास कुछ देने को हो तो दे, न हो तो न दे। यदि वह हमारा यजमान बनकर आया है, तो हम निस्वार्थ उसके धर्मकार्य पूरे करवा देते हैं।"

"पण्डा जी आप धन्य हैं।" –मुमुक्षु ने श्रद्धापूर्वक कहा।

"ऐसा होना भी चाहिए। – महात्माजी बोले "संसार क्या कहता है। ? दूसरे लोग क्या करते हैं ? इस ओर ध्यान न देकर अपने धर्म और कर्तव्य को देखना चाहिए। यही कल्याण का मार्ग है। पण्डा जी हम आप के आचार–व्यवहार से बड़े प्रसन्न हैं। ईश्वर आपका कल्याण करेगा।"

"आप जैसे महापुरुषों को कृपा के प्रताप से हो कल्याण होता है स्वामी जी।" लालजो ने नम्रता से कहा– "चलें अब भोजन तैयार है सब सज्जन प्रसादी पा लें।"

समय वहुत हो चुका था, सव उठ खड़े हुए। चलते समय महात्माजो ने अपने झोले से एक पुस्तक निकाल कर मुमुक्षुराम को देते हुए कहा –" श्री मान आप अध्यात्म-व्यसनो हैं, इसलिए आपको यह अपनी लिखी यह पुस्तक भेंट कर रहा हूँ। इसमें मैंने अध्यात्म सम्बन्धी

जो ज्ञान अभी तक प्राप्त किया है उसका सार अंकित है। आपको अवश्य लाभ होगा।"

मुमुक्षुराम ने आतुर प्रसन्नता से पुस्तक ग्रहण करली। पुस्तक का नाम था "अध्यात्म-चिन्तामणी"।

•

३०

भोजन के पश्चात कुछ गर्मी भी महसूस हो रही थी इसलिए मुमुक्षुराम अपने कमरे के बाहर आराम कुर्सी बिछाकर बैठे थे। तभी सामने के कमरे से एक स्त्री तश्तरी में पान लिए हुए आई और बोली– "आपके लिए मालकिन ने भेजा है।"

मुमुक्षु को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने कुछ विचार कर कहा– 'पान तो मै खाता नही, आप बेकार ले आई।"

"क्या न खाने की कसम खा रखी है ?" –सामने के कमरे के दरवाजे पर खड़ी हुई मालकिन ने पूछा। यह वही देवी थी जो सत्सग में महात्माजी के कक्ष में बैठी हुई थी।

'नही कसम तो नहीं खाई पर मै वैसे ही कभी भी पान नही खाता।' –मुमुक्षुराम ने टालते हुए कहा।

'चलिए तब आज तो खा लीजिए। हमने बड़ी भावना से बनाकर भेजा है।' –स्वर में कुछ ऐसा आग्रह था कि मुमुक्षुराम न नही कर सके। उन्होंने पान उठाकर खा लिया। महिला के मुख पर मुस्कुराहट खिल उठी। वह

वहीं दरवाजे पर खड़ी थी तो नौकरानी ने बैठने के लिए मुड्ढा रख दिया। उस पर बैठते हुए महिला ने पूछा– 'कहाँ के रहवासी हैं आप ?'

'बम्बई।' – पान चबाते हुए मुमुक्षु ने कहा।

'और धंधा क्या होता है ?' महिला का दूसरा प्रश्न था–

'बड़ा व्यवसाय है पर सब कुछ छोड़ छाड़ कर तीर्था-टन और साधुसंग के लिए निकला हूँ।' –मुमुक्षुराम ने नपे-तुले शब्दों में कहा। उनके मन में अभी तक महात्मा जी से हुई बातों का ही चिन्तन चल रहा था इसलिए महिला के इन प्रश्नों में उन्हें आनन्द नहीं आया, पर उसे चर्चा के लिए तत्पर देखकर वे बोले– 'आज का दिन बड़ा शुभ रहा जो इन महात्माजी से भेंट हुई। देखने में वे कम उमर हैं पर उनका ज्ञान बड़ा गहरा है।

'हां है तो।' – महिला को संभवतः साधु की बातों में रुचि न थी, उसने उदासीनता पूर्वक कहा– 'पर मुझे तो ये महात्मा कुछ चमत्कारी नहीं लगे। दो चार रटी ज्ञान की बातें छांट लेने से ही कोई महात्मा नहीं हो जाता।'

"सो तो नही होता, पर मेरा मतलब तो केवल इतना ही था कि उन्होंने जो कुछ भी कहा वह सब गूढ़

ज्ञान की बातें थीं। उनके कहने का ढंग भी बड़ा सुन्दर था।" मुमुक्षु ने महात्मा जी की प्रशंसा की।

"बातों में क्या रखा है जी" महिला जैसे महात्मा से चिढ़ी हुई थी। "बातें तो पचास बनाई जा सकती है पर आदमी का आचरण देखा जाता है भला। अब इन साहब की उमर कठिनाई से तीस-पेंतिस साल की है। कोई काम धन्धा नही बन पडा तो हो गए साधु। न कोई साधना की, न किसी गुरू से दीक्षा ली और बन गए सिद्ध। कहते है कि हम सत्य के शोधक है, इसलिए साधु है। उपदेश देते है कि कामना को छोडो, तृष्णा का नाश कर दो तो फिर स्वयं क्यों उसके पीछे भाग रहे है। उस दिन मैंने दस रुपये भेंट दिए तो बिना किसी आना-कानी के ले लिए। पण्डा जी के यहां पन्द्रह दिन से आश्रित की तरह आकर पड़े है। सच्चे साधु-महात्माओं को भला इन बातों की क्या जरूरत। वे तो सदैव देते है, लेते नहीं। उनके सामने संसार के सारे वैभव फीके पड़ जाते हैं. आप कभी बनारस आएँ और मदन मोहन के मन्दिर के महन्त महात्मा विशालानन्दजी की महिमा देखें तो जाने कि महात्मा क्या होते है? बड़े - बड़े राजा महाराजा भी उनके सामने कुछ नहीं। रोज पांच सौ आदमी तो उनके भण्डारे में भोजन करते हैं।"

"अच्छा तो आप बनारस की रहने वाली हैं।" मुमुक्षु-राम बीच में ही बोल उठे। महात्मा विशालानन्द के स्थान पर उन्हें इस वाचाल स्त्री के प्रति जिज्ञासा जागृत हो गई।

"न जी! रहने वाले तो हम जामनगर गुजरात के हैं पर आजकल निवास बनारस में ही है।" –महिला ने मुस्कराकर कहा।

"शायद आपके पति……"

"मेरे पति जामनगर के बहुत बड़े व्यवसायी थे, हार्टफेल से अचानक उनकी मृत्यु हो गई। मैं दूसरी शादी की थी,पहली शादी के उनके जो लड़के थे, वे बीबी बच्चों वाले थे। मेरी उनसे बनती न थी। रोज रोज के झगड़ों से तंग आकर मैं अपना जीवन धर्मपुण्य में बिताने बनारस चली आई। अब मैं शान्ति से विश्व-नाथ धाम में रहती हूँ।"

"बड़ी प्रसन्नता हुई, आप जैसी धर्मप्राण महिला से मिलकर। में यहाँ से बनारस ही जाने वाला हूँ।"

"अच्छा! कहाँ ठहरेगें आप?"

"अभी तो कुछ निश्चित नहीं, जहाँ सुविधा हो गई।"

"तब तो आप मेरे यहां ही रुकिए। आपको किसी

बात की तकलीफ न होगी ।" – महिला ने आत्मीयता से कहा ।

"पर आपको कष्ट तो नहीं होगा ?" – मुमुक्षु ने उसकी सहृदयता से प्रभावित होते हुए पूछा – "मेरा क्या है ? अकेला आदमी हूँ कही भी ठहर जाऊँगा ।

"न जी ! मेरे को काहे का कष्ट ! भगवान की कृपा से मैंने छह कमरे का एक छोटा बंगला वहाँ ले रखा है । फिर मैं वहां बहुत कम रहती हूँ । महात्मा विशालानन्द जी ने मेरे जिम्मे एक विधवाश्रम कर रखा है, उसकी व्यवस्था के लिए मुझे अधिकतर वही रहना पड़ता है ।"

"अच्छा तो आप विधवाश्रम चलाती हैं । बड़ा पुण्य का काम करती हैं । सेवा से बढ़कर और कोई धर्म नही होता बहिन !" मुमुक्षुराम भाव विभोर हो उठे ।

"मेरा नाम मोहनी है जी ।" महिला ने टोका

"अच्छा और मेरा नाम······" मुमुक्षु कहने लगे तो मोहनी ने बीच में ही कहा- "मुझे मालुम है आपका नाम ।"

३१

नव-प्रभात की प्रथम किरणों ने जब कक्ष में झांका, मुमुक्षुराम नित्यकर्म से निपट चुके थे। बनारस आए उन्हें यह दूसरा दिन था, वे बनारस में मोहनी देवी के ही मेहमान बने थे। नगर सीमा पर उनका एक छोटा सा बंगला था, बड़ी रुचि पूर्वक सजाया गया था। श्रेष्ठ कीमती फर्नीचर से सजा उस बंगले में आराम से रहने की सभी सुख सुविधाएँ उपस्थित थी। यह स्थान गंगातट से अधिक दूर भी न था और लगभग पन्द्रह मिनिट में गंगा स्नान के लिए पहुँचा जा सकता था। मुमुक्षु के लिए यही सबसे बड़ी सुविधा थी।

वे मन ही मन मोहनी देवी की इस कृपा के लिए आभारी थे। आज वे गंगा स्नान के पश्चात काशी विश्वनाथ के दर्शनों को जाने वाले थे और मोहनी देवी की राह देख रहे थे।

तभी मोहनी देवी ने कमरे में प्रवेश किया। उनके पीछे नौकरानी चाय की ट्रे लिए हुए थी। मोहनी के मुँह पर मुस्कराहट थी और प्रभात के दूधिया प्रकाश

में वे बड़ी मोहक लग रही थीं। उनकी अवस्था लगभग चालिस पैंतालिस की होगी पर दूध सी उज्वल सफेद साड़ी में वे इस समय आयु से कुछ कम ही दिखलाई दे रही थीं। उनके गोल चेहरे पर पतली नुकीली नाक, उन्हीं से मेल खाते पतले पर सुडौल अधर बतला रहे थे कि अपनी अवस्था में वे असाधारण सुन्दरी रही होंगी पर अब आयु की छाप उन पर लग चुकी थी। सुन्दर घन काले बालों के बीच स्वेत केशों की एक बड़ी लट झांक रही थी, साधारण से अधिक माँसल उनकी देह कुछ बेडोल सी हो चली थीं चेहरे की आभा फ़ीकी पड़ गई थी, बस उनकी आँखों में जो विशेष चमक थी वही अपना पूर्व आकर्षण रखे हुए थी।...... पर मुमुक्षु को लगा कि सौभाग्य चिन्हों से रहित होते हुए भी, प्रभात की इस आभा में वे बडी आकर्षक लग रही थीं। उन्होंने मुमुक्षुराम को नमस्कार किया और कहा– "क्षमा कीजिए मुझे कुछ विलम्ब हो गया। आप चाय ले लें तो हम लोग चलें।" – कहती हुई मोहनी वहीं सामने सोफे पर बैठ गई। नौकरानी ट्रे टेबुल पर रख कर चली गई

"नहीं ऐसी कोई अधिक देर नहीं हुई।" मुमुक्षुराम ने सौजन्य से कहा– "आज तो पहला दिन है। मैं यहाँ

से निकट का गंगाघाट एक बार देख लूँगा तब आपको बिल्कुल कष्ट नहीं होगा।"

"भला यह भी कोई कष्ट की बात है?" – मोहनी ने चाय बनाते हुए कहा– 'आप तो हमारे मेहमान है, आप को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसी बात की हमें चिन्ता है।"

"मैं आपकी कृपा का आभारी हूँ।" मुमुक्षुराम ने नम्र शब्दों में कहा। उत्तर में मोहनी अपने नेत्र उन पर स्थिर करते हुए मुस्करा उठी।

मुमुक्षुराम को एक विचित्र सी सिहरन का अनुभव हुआ। उनका मन निर्विकार था पर मोहनी की उस दृष्टि और मुस्कराहट में कुछ ऐसी मोहक शक्ति थी कि उन्हें रोमांच सा हो आया।

मोहनी ने चाय बनाई और प्याला मुमुक्षुराम की ओर बढ़ाते हुए मधुर शब्दों में कहा– "यहाँ से थोड़ी दूर परही मणिकर्णिका घाट है, वहाँ से दशाश्वमेध होते हुए विश्वनाथजी के दर्शन करने चलेंगे।"

मुमुक्षुराम ने चाय पीते हुए स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। "आप तैयार होकर आइए, मैं बाहर हूँ।" –कहती हुई मोहनी देवी चली गई। मुमुक्षु उन्हें जाते देखते रहे। कैसा आकर्षक व्यक्तित्व है इस स्त्री का?

विधवा होते हुए भी इसकी मुद्रा पर विकास का सम्मोहन अधिक है । एक विधवा तितिक्षा बहिन थी, इससे वह अल्पायु थी, सुन्दरी थी अधिक ही होगी पर उसे देखकर मनमें श्रृद्धा की भावना उमड़ती थी । देखने से ही लगता था कि वह त्यागमयी तपोपूत रमणी है और मोहनी ..... सचमुच उसका व्यक्तित्व ही विलासपूर्ण लगता है ? ...... क्या यह केवल इस धन-वैभव जीवित सुख सुविधा का परिणाम है अथवा मोहनी का नैतिक चरित्र........." इसके आगे मुमुक्षु नहीं सोच सके । उन्होंने सोचना नहीं चाहा । मन में विकार होते है तभी तो बुरे विचार उठते हैं ।" वे शीघ्र तैयार होकर अपने कक्ष से बाहर आ गए ।

मणिकर्णिका घाट दूर नहीं था, अत: मोहनी के साथ मुमुक्षुराम पैदल ही चल पड़े । थोड़ो दूर चलकर सड़क के एक ओर एक अधवनी इमारत थी नीचे का अगला भाग पूरा हो चुका था, ऊपर की मजिल बनना अभी शेष थी । दीवारें बिना रंग रोशन के काफी भद्दी दिखलाई दे रही थी, छत रहित मुंडेरों पर घास उग आई थी । पर देखने से लगता था कि इमारत बड़े सुन्दर ढंग से बनाई जा रहो थी । प्रमुख द्वार के ऊपर सुन्दर अक्षरों में खुदा हुआ था – "पुण्यधाम धर्मशाला" – द्वार अध-

खुला था, जिसमें से प्रमुख हाल दिखलाई देता था। हाल में आराम कुर्सी पर एक दुबली पतली वृद्धा स्त्री बैठी हुई सिगरेट पी रही थी, उसके शरीर का पीला रंग कुँदन सा दमक रहा था। उसके समने ही एक ओर एक बड़े पलंग पर विस्तर विछा हुआ था जिसपर एक वृद्ध व्यक्ति अधलेटा सा अपने ढीले चस्मे में से अखवार पढ़ रहा था।

"यह धर्मशाला पूरी नहीं बन सकी ?" – मुमुक्षुराम ने मोहनी से पूछा

"हाँ जी !"– मोहनी ने मुस्कुराकर कहा –"पाप की कमाई से कभी पुण्य के कामपूरे हुए हैं ?"

"पाप की कमाई ?"– मुमुक्षुराम ने आश्चर्य से पूछा "क्या मतलब ?"

"यह जो धर्मशाला बनी है न"– मोहनी ने मुमुक्षुराम के तनिक निकट सरकते हुए धीमे शब्दों में कहा –"इसे बनवाने वाली वही स्त्री थी जिसे आप ने अभी–अभी सिगरेट पीते हुए देखा है। वह अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध वेश्या थी। शायद आपने नाम सुना हो 'सिंगारा देवी।' बड़े बड़े राजामहाराजाओं से इसका सम्बन्ध था। सारा जनम पाप करते गया अब बुढ़ापे में पुण्य कमाने की धुन सवार हुई है। सदावर्त्त खुलवा दिया, धर्मशाला बनने

लगो पर कितना पैसा होगा गाँठ में ? इमारत आधीबनी कि गाँठ टें बोल गई। अब तीन साल हो गए। काम बन्द पड़ा है।"

"हरे ! हरे ! शुभ काम में ऐसी बाधा !"–मुमुक्षु राम ने खेद प्रकट किया।

"पर बाबूजी पाप की कमाई से कभी पुण्य काम सिद्ध हुए है ; यह तो वही बात हुई है कि नौ सौ चूहे मार बिल्ली हज्ज को चली।" – मोहनी ने व्यग पूर्वक कहा ।

"ठीक है मोहनी जी ! घर मै तो इतना कहूँगा कि सुबह का भूला अगर शाम को घर आजाए तो वह भूला नही कहलाता। मुमुक्षुराम ने गभीरता मे कहा, जाने क्यों उनके मन मे उस वेश्या के प्रति एक सहज सहानु-भूति उमड पड़ो –"अजामिल और बाल्मीकि जैसे भक्तों के उदाहरण हमारे सामने है।

"हाँ सो तो है ही।" मोहनी ने उपेक्षा से कहा। उसे मुमुक्षुराम को एक हीन वैश्या के प्रति यह सहानु–भूति रुची नही। पर वह मौन ही रही।

मणिकर्णिका घाट आगया था। मुमुक्षुराम पावन गंगा के दर्शन कर सहसा आनन्दित हो उठे। वे नौका से दशाश्व–मेध घाट की ओर चल पड़े। यहाँ गंगा का पाट काफी चौड़ा हो गया है। शीतल नील जल की छाती पर

तैरती हुई नौकाएँ बड़ी भली लग रही थीं। जब वे दशाश्वमेधघाट पर पहुँचे, वहाँ स्नानार्थियों की भीड़-भाड़ लगी हुई थी। यद्यपि बनारस के घाटों की अपनी अलग विशेपता है, पर मुमुक्षुराम को लगा जैसे सभी पवित्र नदियों के घाटों का वातावरण लगभग एक सा ही है। उन पर बैठने वाले पण्डों की अपनी एक ही किस्म, एक ही संस्कृति है। उनकी वही वेशभूषा, संस्कृत श्लोकों को बुदबुदाती उनकी वही पूजा पाठ की शैली, जहाँ जिस तीर्थ में चले जाइए आपको मिल जाएगी।...... और एक बात है, जो हर तीर्थ में स्वच्छ दिखाई देती है। वह है स्नानार्थियों की श्रद्धा, उनकी आत्मा में समाई पवित्रता की भावना! नहीं तो, वैसे हर तीर्थ में बहुत सारी गंदगियाँ हैं। सीधे साधे यात्रियों को ठगने वालेचोर गुंडे हैं, पुण्य और धर्म का ढोंग रचने वाले बहुरूपिये हैं पर इन तीर्थ यात्रियों की असीम श्रद्धा, उनकी जो अँधता की श्रेणी तक जा पहुँचती है, तीर्थ की इन कुरुपताओं को नहीं देखती। यह वह श्रद्धा है जिसने तीर्थ को तीर्थ बनाया है, जिसने एक साधारण पानी से भरी नदी को परम पावनी माता बना डाला है। इस श्रद्धा में किसी भी तीर्थ की सारी पवित्रता और महिमा समाई हुई है। मुमुक्षुराम ने उसी श्रद्धा से गंगा में स्नान किया।

काशी विश्वनाथ का मन्दिर, घन्टा – घंटियों के मंगल नाद तथा यात्रियों के कोलाहल से पूर्ण। प्रवेश द्वार के सामने दूर दूर तक दीन दुखी और भिखमंगे दर्शनार्थियो के दान की आशा लगाए बैठे थे। विश्वनाथ भगवान के दर्शनों तक पहुँचने से पहिले मुमुक्षुराम ने विश्व के इस रूप के दर्शन किए। कैसा कुरूप रूप था यह? किसी का शरीर कोढ से गल चुका था, कोई अधा था, किसी के हाथ पैर नहीं थे तो कोई विल्कुल ही लाचार था। कोई कांटे की शैया बनाए उस पर पड़ा था, तो किसी ने अपना सिर भूमि में धंसा रखा था। ... आह मानव शरीर की जो भारी से भारी दुर्दशा हो सकती है वह सब यहाँ उपस्थित थी। कीड़–मकोड़ो की तरह सड़ती हुई जिन्दगी भी वे जीना चाहते थे। मुमुक्षुराम वेदना से भर उठे–" हे महाकाल! इस नश्वर जीवन से आखिर मनुष्य को इतना मोह क्यों है, यह असीम कष्ट और वेदना से भरपूर जावन जिसका अन्त अकस्मात ही, एक दिन मृत्यु कर डालती है ..... आखिर ऐसा क्या है इसमें, जिसको आशा या आकर्षण में बंधे ये कातर मनुष्य जीना चाहते हैं ..... न ...... कौन दे सकेगा इसका उत्तर?"–मुमुक्षुराम आगे नहीं सोच सके। मन्दिर

में भगवान विश्वनाथ जी के ज्योतिर्लिंग के सामने जाकर सिर झुकाया तो मन ही मन प्रार्थना करते हुए कहा– “धन्य है भगवान तुम्हारी माया को जिसने इस संसार के सारे प्राणियो को भुलावे में डाल रखा है।”–

मुमुक्षुराम को लगा जैसे ठगनी माया के स्वामी भगवान विश्वनाथ मुस्कुरा उठे हों।

३२

चारों ओर से ऊंची ऊंचो दीवारों के अहाते से घिरी हुई "सुधा विधवाश्राम" की विशाल इमारत थी। बडे वड़े लगभग चालीस पचास कमरे थे, मध्य में एक विशाल हाल था। एक ओर खेलने का छोटा मैदान था, दूसरो ओर सुन्दर बगीचा जिसमें तरह तरह की साग–सब्जियाँ उगाई गई थीं।

मोहनी देवी मुमुक्षुराम को अपना विधवाश्रम दिखलाने लाई थीं। प्रमुख हाल में एक स्त्री का वहुत बड़ा आइल पोर्टेट लगा हुआ था। उसे मुमुक्षुराम को दिखलाते हुए मोहनी देवी ने कहा–"यह इस विधवाश्रम की सस्थापक सुधा देवी माहेश्वरी का चित्र है। ये वाल विधवा और बड़ी धार्मिक महिला थीं। महन्त विशालानन्द जी की प्रेरणा से ही उन्होंने इस विधवाश्रम की स्थापना की थो। उनकी मृत्यु के पश्चात से महात्मा जी ही इस आश्रम का सारा खर्च देते हैं।"

"अच्छा! फिर यहाँ की महिलाएं भो तो कुछ दस्तकारी काम करके कमातो होंगी?"

"हाँ जो!"– मोहनी ने कहा– "वैसे तो

आश्रम के हो काम बहुत से है फिर भी कुछ दस्तकारी के काम हम यहाँ करवाते हैं।

मुमुक्षुराम के स्वागतार्थ एक छोटे से जलसे का आयोजन किया गया था। प्रमुख हाल में जब सभी महिलाएँ उपस्थित हो गई तो मोहिनी देवी ने उठकर मुमुक्षुराम का परिचय देते हुए कहा –"आप बम्बई के बहुत बड़े सेठ हैं। व्यवसाई होते हुए भी वे बड़े हो धर्मात्मा और दानवीर हैं। हमारे आश्रम को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए हैं और उन्होंने आश्रम को एक वड़ी रकम दान में देने का वायदा किया है।"

कक्ष तालियों को गड़गड़ाहट से गूँज उठा। मुमुक्षु राम दान सम्बन्धी बात को सुनकर चौंके। उन्होंने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया था। चोरी हो जाने के बाद से ही उनके पास धन न के बराबर था। यह ईश्वर की ही कृपा थी कि उन्हे अभी तक धन की कमी महसूस नहीं हुई थी; ....पर उन्हे सचमुच इस आश्रम के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी वैसे भी वे भुक्त – भोगी थे और विधवाओं के प्रति उनके मनमें एक सहज करुणा व्याप्त थी। अतः जब उनसे बिना पूछे ही मोहनो देवो ने दान की घोषणा करदी तो उन्होंने विरोध नहीं किया बल्कि निश्चय कर लिया कि बनारस छोड़ते समय वे आश्रम के

लिए दान को रकम भेजने के लिए अपने मुनोम को लिख भेजेंगे ।

मोहनी देवी के भाषण के पश्चात उनकी सहयोगिनी कृष्णादेवी ने पुष्पहार भेंट किया। फिर मुमुक्षुराम ने उठकर धन्यवाद देते हुए कहा –"इस मानव मन्दिर को देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। हाँ इसे मैं मन्दिर ही कहूँगा। यह मानवता का मन्दिर है। भाग्य और समाज की व्यवस्था ने आपके जीवन में जो अंधकार उत्पन्न किया था उसे इस मन्दिर ने प्रकाशित कर दिया है! आपका त्यागपूर्ण पुनीत और परिश्रमी जोवन देखकर मैं धन्य हो गया हूँ और उसके लिए मोहनी देवी और आप सब धन्यवाद की पात्र हैं।"– सेठजी इतना कह कर चूप हो गए, तालियों की गड़गड़ाहट में जलसा समाप्त हो गया।

मुमुक्षुराम मोहनीदेवी के साथ आश्रम की इमारत से बाहर निकल ही रहे थे कि तभी बाहर सड़क पर एक विशेष प्रकार की दो घोड़ों वाली फिटन आकर रुकी। फिटन में से एक वृद्धा स्त्री ने निकल कर मोहनी देवी को नमस्कार किया। उसे नमस्कार का उत्तर देते हुए मोहनी देवी ने

मुमुक्षुराम से कहा–"आप तांगे में बैठिए। मैं अभी चलती हूं।" और मोहनी देवी शीघ्रता से उस वृद्धा के पास चली गईं। वृद्धा ने उनके कान में कुछ फुसफुसाया औरउन्होंने वहीं खड़ी हुई अपनी सहायक कृष्णादेवी के कान में कुछ कह दिया। कृष्णादेवी शीघ्रता से अन्दर चली गई। कुछ ही देर में वे वापिस आईं, उनके साथ एक नवयुवती सुन्दरी महिला थी, वह सहमी सकुची सो कृष्णादेवी के पीछे खड़ी थी। मोहनी देवी ने उसे एक ओर लेजाकर कुछ समझाया। उस महिला के चेहरे पर विचित्र प्रकार के भाव आजा रहे थे जिन्हें दूर से मुमुक्षुराम ध्यान पूर्वक देख रहे थे। मोहनी देवी ने उसे समझाने के बाद उस वृद्धा महिला के साथ फिटन में बैठाल दिया। फिटन जिधर से आयी थी उधर चल पड़ी।

मोहनी देवी मधुर मधुर मुस्कुराती हुई मुमुक्षुराम के साथ तांगे में बैठीं। तांगा घर की ओर चल पड़ा, पर मुमुक्षुराम को जाने क्यों उस फिटन का आना और उस महिला का जाना कुछ रहस्यमय सा प्रतीत हुआ।...... पर उस विषय में वे मोहनी देवी से पूछ नहीं सके। मोहनी देवी भी संभवतः मुमुक्षुराम की मनोदशा को समझ रही थीं। वे रास्ते भर चुप ही बैठी रहीं।

३३

रात्ति के भोजन के पश्चात मुमुक्षुराम 'अध्यात्म-चिन्तामणि' पढने लगे। बंगले के अगले भाग में कुछ लोगों के हँसने बोलने की आवाजें आ रही थी। मुमुक्षुराम को लगा कदाचित मोहनी देवी के यहाँ कुछ मेहमान आए होंगे। अध्यात्म चिन्तामणि बड़ी सुन्दर पुस्तक थी। उसमें अध्यात्म सम्बन्धी गहन गूढ बातें बड़े सरल ढंग से, आधुनिकतम उदाहरण देकर समझाई गई थी। मुमुक्षुराम पढ़ रहे थे तभी कमरे में मोहनी देवी ने प्रवेश किया। रात को इस समय उन्हें अपने कमरे में आया देख कर मुमुक्षुराम को बड़ा आश्चर्य हुआ।

मोहनी देवी मुस्कुराती हुई सामने वाले सोफे पर बैठ गईं। उन्होंने बड़े संकोच से पूछा—"इस समय मेरे आने से आपको कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"नही कष्ट काहे का ?" मुमुक्षुराम के मुँह से निकला। वे स्थिर नेत्रों से मोहनी की ओर देख रहे थे। उन्हें लगा जैसे हर समय मोहनी में एक विशेष प्रकार का आकर्षण रहता है यद्यपि इस समय भी वह बिना किनारी वाली सफेद साड़ी पहने थी पर उसमें भी एक विशेष सजावट

थी। साड़ी इस प्रकार शरीर पर कसकर पहनी गई थी कि उसकी मांसल देह का एक एक उभार स्पष्ट झलक रहा था। खुले हुए घने केश सामने की ओर वक्ष पर डले थे। मुमुक्षुराम ने ध्यान से देखा तो उन्हे लगा कि मोहनी को आँखों की कोरें काजल की झीनी रेखाओं द्वारा स्पष्ट की गई थी। होंठों और गालों की लालिमा भी साधारण से विशेष कृत्रिम लगती थी। कदाचित उनपर हल्के रूप में रूज और लिपस्टिक मला गया हो।

अपनी ओर मुमुक्षुराम को एक टक देखते देखकर मोहनी ने सस्मित कहा –"मेरा मन नहीं लगा, आँखों में नींद बिल्कुल नहीं। सोचा देखूं आप क्या कर रहे है ?"– उसने अपने तीखे नेत्र जो मुमुक्षुराम के नेत्रों पर गड़ाए तो हटाए ही नहीं।

मुमुक्षुराम सहम उठे, उन्हे प्रथम बार मोहनी देवी के चरित्र पर शंका हुई। पर उन्होंने उसे मनमें ही दबाते हुए पूछा –"मैं तो समझा था कि आपके यहाँ कोई मेहमान आए हैं।"

"हाँ जी मेहमान तो आते ही रहते हैं।"– मोहनी ने लापरवाही से कहा फिर पूछा –"पर यह कहिए आपको मेरा निवास स्थान पसन्द आया ?"

"बहुत सुन्दर है।"– मुमुक्षुराम ने सहज ही कहा–"पर

आपके विधवा आश्रम की क्या प्रशंसा करूँ, आप बड़ी पुण्य शीला हैं जो ऐसी संस्था चला रही हैं।"

"मुझे तो इसमें आनन्द मिला है बाबू जी। विधवा होने के बाद मेरा जीवन तो बड़ा भार बन गया था। वैसे तो विवाह के समय से ही मैं सुखी न थी क्योंकि मेरे पति दुजवर थे, पहली शादी के उनके तोन बेटे थे, फिर मेरी आयु से बहुउनत कम थी, उन्हें हृदयरोग था और मैंने दुनिया का कोई सुख नहीं देखा था कि मैं अकस्मात विधवा हो गई। मुझे लगा मेरी सारी दुनिया सूनी हो गई है, सभी घृणा करने वाले, मेरी ओर हिकारत से देखने वाले, किसी को कोई सहानुभूति नहीं, और तब धन्य बनारस नगरी जिसने मुझे अपनी शरण में लेकर सुखी कर दिया। महन्त श्री विशालानन्द जी ने मुझे गुरुदीक्षा देकर जो ज्ञान दिया उससे वैधव्य का मेरा सारा दुख जाता रहा।"–मोहनी देवी भावविभोर होकर बोली।

"हाँ आप मुझे कब महन्त जी से मिला रही हैं ?"–मुमुक्षुराम ने पूछा।

"कल ले चलूंगी आपको गुरू जी के पास।"–मोहनी ने कहा।

मुमुक्षुराम को प्यास लग आई थी, उन्होने उठकर कोने में रखी सुराही से गिलास में पानी उडेलते हुए पूछा"–आप जल पिएगीं।"

"नहीं ! पर आपने मुझसे क्यो नहीं कहा ? मैं आपको पिलाती ।"–मोहनी ने उठते हुए बड़े स्नेह से कहा।

"भला आपसे कैसे कहता ? आपने वैसे क्या कम कष्ट किए है मेरे लिए ?"–मुमुक्षुराम ने पानी पिया और फिर सोफे पर आ बैठे। इस बार मोहनी सामने वाले सोफे पर न बैठते हुए उनकी बराबरी से आ बैठो। उसके शरीर से भीनी गुलाब की महक आ रही थी, जैसे सेन्ट लगाया हो। मुमुक्षुराम को जाने क्यों वह सुगन्ध भली नही लगी। उन्होंने पूछा–"आपने मुझसे बिना पूछे आज आश्रम को दान देने की घोषणा क्यों कर दी ?"

"तो क्या हुआ ?"– कनखी से देखते हुए मोहनी ने कहा–"मैं जानती थी कि यदि मैं न कहती तो आप कहते ।"

मोहनी कुछ पास सरक आई फिर अपनत्व मे बोली –"अगर सुविधा न होतो कोई बात नहीं। घोषणाएँ तो होती ही रहती हैं।"

"नहीं नही"– मुमुक्षुराम ने कहा –"भला ऐसी संस्था के लिए दान देने से किसे संकोच हो सकता है।"

"मुझे आप से ऐसी ही आशा थी।" मोहनी ने सस्मित कहा और वह तिलभर और निकट सरक आई। मुमुक्षुराम को जाने कैसा अनुभव होने लगा। उनकी

अवस्था इस समय पचास के ऊपर थी, फिर अध्यात्म और ईश्वर ज्ञान के कारण संसार के सारे भौतिक आकर्षण उनके लिए निरर्थक हो चुके थे पर मोहनी देवी के वे हाव–भाव, उनकी इतनी निकटता उनके मन को चंचल बनाए दे रही थी। उन्होंने अध्यात्म चिन्तामणि ग्रंथ खोलते हुए कहा –"आपका जीवन बड़ा पवित्र है बहिन। रात अधिक हो गई है। अच्छा हो अब आप जाकर बिश्राम करें।"

"कहाँ अभी सिर्फ दस हो तो बजे हैं"– मोहनी ने हठ पूर्वक कहा –"क्या आपको नींद आ रही है ?"

"नहीं मैं अभी एकाध घंटे तक पुस्तक पढ़ूँगा।" मुमुक्षुराम ने गंभीरता से कहा।

"आखिर ऐसा क्या है इस पुस्तक में ?"– छोटी बच्ची की तरह मोहनी ने मुमुक्षुराम के हाथों से पुस्तक झपट ली और बिजली की तरह उसका शरीर उनके शरीर से छू गया। वह हँसते हुए बोली –"जीवन की पुस्तक पढ़ने वालों को कागज की पुस्तक से क्या काम ? कैसी सुहानी रात है। बाहर आकाश में चाँद खिला है, रातरानी महक उठी है मैं आपके पास आई हूँ, भला मुझसे दो घड़ी हँसिए बोलिए।"– वह हँसे जा रही थी।

मुमुक्षुराम ने उसे स्थिर दृष्टि से देखा। उसकी

हरेक हरकत नैतिकता के बांध तोड़े जा रही थी। उनसे अब न रहा गया, वे गंभीरता से बोले –"क्षमा कीजिए। आप अब बच्ची नहीं रही हैं। इस आयु में मेरी जैसी उम्र के व्यक्ति से आपका यह हंसी मजाक शोभा नहीं देता। फिर इतनी रात गए आप अकेली मेरे कमरे में, मेरी बगल में बैठी हैं यह भी लोगों में शंका उत्पन्न करने वाली बात है। कुछ भी हो मनुष्य को अपने आचरण का सदैव ध्यान रखना चाहिए। मैं चाहूंगा अब आप चली जाएं, हम सुबह मिलेंगे।"

मोहनी भौचक सी मुमुक्षुराम की ओर देखने लगी। जैसे उसे इस बात की बिल्कुल आशा नहीं थी। जैसे उस पर वासना का एक गाढ़ा नशा छाया हो जो मुमुक्षु की उस बात से एक दम उड़ गया हो। अकस्मात उसके चेहरे पर एक विशेष प्रकार की कटुता उभर आई। वह उठी और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चली गई।

मुमुक्षुराम स्तब्ध से देखते रह गए। उनके मन में मोहनी के चरित्र के प्रति जो बात अभी तक बड़े अस्पष्ट रूप में उठ रही थी, वही अब अत्यधिक स्पष्ट होने लगी। अचानक विधवाश्रम का दृश्य उनकी आँखों के सामने घूम गया। जब वह विशेष फिटन आयी और उसमें एक सुन्दरी विधवा बैठालकर भेज दी गई थी। ..... कहाँ

भेजी गई ...... क्यों भेजी गई ? ...... और तभी एक बात और उनके मस्तिष्क में स्पष्ट हो उठी, जो आश्रम देखते समय उन्होंने जितनी महिलाएं देखी थीं वे प्रायः सभी नवयुवतियाँ, स्वस्थ तथा सुन्दरी थीं। उन्हें स्मरण नहीं आया कि कोई वयोवृद्ध सी असुन्दरी महिला भी उस आश्रम में थी। जैसे आश्रम में महिलाएँ चुनकर रखी गई हों। कहीं ऐसा तो नहीं ..... और मोहनी देवी का जो उज्वल चित्र उनके मन में अंकित ही था वह अचानक धुंधला पड़ गया। शंका-कुशंकाओं के बीच मुमुक्षुराम उस रात सो नहीं सके।

३४

गंगातट पर मदनमोहन का विशाल मन्दिर था। चारों ओर से ऊँचे - ऊँचे परकोटों से घिरा हुआ वह किसी पुराने किले की तरह दिखलाई देता था। मन्दिर के गगनचुम्बी स्वर्ण शिखर पर फहराती हुई लम्बी ध्वजा मन्दिर की संपन्नता का दूर से ही परिचय देती थी। यह मन्दिर वहुत पुराना था। बनारस के राजाओं ने सदैव उदार होकर इस मंदिर को बड़े-बड़े दान दिए थे। इस मन्दिर के महन्त अनेक महान चमत्कारी पुरुष हो गए हैं। मुसल्मानों के काल में जब इसे अपवित्र करने की कोशिसें की गई तो इसके महन्तों के चमत्कारों ने ही इसकी रक्षा की। कहते हैं चैतन्य महाप्रभु वनारस आए थे तो इसी मन्दिर में रहे थे, यहीं उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हुआ था।

मोहनो देवी के साथ भुमुक्षुराम जब मन्दिर पहुँचे तो सचमुच वहाँ का वैभव देखकर दंग रह गए। संग-मरमर के फर्श पर सोने चाँदी के सिक्के गड़े हुए थे। दीवारो और स्तम्भों पर भगवान की अनेक कथाओं के चित्र खुदे हुए थे। मुख्य गर्भगृह में सोने की कड़ियों वाले

झूले में मुरली बजाते हुए भगवान कृष्ण की काले पत्थर की मूर्ति रखी हुई थो। नीचे अन्य अनेक देवताओं की मूर्तियां थीं। देव दर्शन के पश्चात मोहनी देवी मुमुक्षु-राम को महन्त विशालानन्द से मिलाने ले गयी।

प्रमुख मन्दिर से कुछ हट कर एक बड़ा भवन बना था जिसमें मन्दिर के महन्तों का आवास स्थान था। विशाल प्रवेश द्वार था जिसपर एक दरबान खड़ा हुआ था। बाहर के भाग में एक ओर गोशाला थी दूसरी ओर घुड़साल। वहीं चार पांच तरह तरह की घोड़ा गाड़ियां और फिटन रखे हुए थे। एक ओर एक बड़ी काली मोटर गाड़ी रखी हुई थी।

अन्दर लोगों की बड़ी चहल - पहल थी। एक ओर से तरह - तरह के पकवानों की मीठी सुगन्ध आ रही थी, दूसरी ओर से पूजापाठ के अस्पष्ट मन्त्रोच्चारण सुनाई दे रहे थे। एक बड़ा सा आंगन पार कर वे भवन के भाग में आ पहुँचे। मोहनी ने बतलाया कि महन्त यहीं इसी भाग में रहते हैं। प्रमुख कक्ष का द्वार बन्द था। मोहनी ने दरवाजे पर लगी 'कॉल बेल' का बटन दबाया। थोड़ी देर बाद दरवाजा थोड़ा सा खुला। एक स्त्री ने झांक कर देखा, मोहनी को देखकर वह मुस्कराई और उसने दरवाजा पूरा खोल दिया। मुमुक्षुराम ने मोहनी

के साथ अन्दर प्रवेश किया। वह एक बड़ा कक्ष था, दीवारों पर भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं के बड़े बड़े तैलचित्र टंगे हुए थे। छत में रासलीला का दृश्य अंकित था। कक्ष में मधुर धूप गंध महक रही थी। बीच में बैठने के लिए बड़े आराम प्रद सोफे रखे हुए थे। उस स्त्री ने उन्हें और मोहनी देवी को वहां बैठाल दिया और वह महन्त जी को उनके आने की सूचना देने गई। थोड़ी ही देर में उसने आकर मोहनी से कहा – "महन्त जी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

मोहनी मुमुक्षुराम को अन्दर की ओर खुलने वाले एक दरवाज की ओर ले गई। दरवाजा खुलते ही एक दूसरी स्त्री वहां थी। वह अत्यधिक सुन्दरी थी, उसने सिर से पैर तक श्रृंगार कर रखा था। दोनों हाथ सोने की चुड़ियो से भरे थे, माथे पर शीशफूल था। कानों में मोतियों के कुन्डल, नाक में जडाऊ स्पर्ण नथ, कमर मे स्वर्ण की करधनी और पैरों में छनछन बजती हुई पैंजनियाँ स्वर्ण से लदी रेशम के पीत वस्त्रों में वह सुन्दरी साक्षात लक्ष्मी सी लग रही थी। उसने मोहनी देवी को नमस्कार किया और अपने पीछे आने का इशारा किया। एक छोटा सा बरामदा पार कर उसने एक कक्ष का द्वार खोला। यह कक्ष 'एअर कन्डीशन्ड' था और बड़े आधु-

निक ढंग से सजा हुआ था। एक ओर रेडियोग्राम रखा हुआ था दूसरी ओर एक डबल वेड बिछा हुआ था।

एक चमचमाती टेबिल पर पीतल का एक शो पीस रखा हुआ था जिसमें अर्जुन मत्स्य - वेध की मुद्रा में खड़ा था, ऊपर एक छोटा चक्र घूम रहा था जिस पर मछली लटकी हुई थी। दीवार पर एक ओर रासलीला का चित्र अकित था, दूसरी ओर चीर हरण लीला की छबि अंकित थी। एक कोने में डाइनिग टेबिल थी जिस पर तरह तरह के मेवा और फल कलापूर्ण प्लेटो में सजे रखे थे। मध्य में सिर पर गगरी लिए हुए एक अर्धनग्न स्त्री की छोटी मूर्ति रखी थी, जिसके खुले हुए स्तन विशेष प्रकाश व्यवस्था के कारण चमक रहे थे। मध्य में एक सुन्दर सोफा सेट करीने से सजा हुआ था।

सामने वाले बड़े सोफे पर, एक शेर की खाल बिछी हुई थी जिसपर महन्त विशालानन्द विराजमान थे। उनके हाथ में बड़े रुद्राक्ष की स्वर्ण तार में पिरोई माला थी। स्वेत धोती और वासन्ती रंग का कुर्ता वे पहने थे, गले में चार लड़ों की सोने की पतली सांकली डलो हुई थीं। नेत्र आधे मूँदे हुए थे। सामने टेबिल पर एक गिलास में मोसम्मी का रस भरा रखा था और

'एशट्रे' पर रखी हुई एक अधजली सिगरेट धुँआ छोड़ रही थी।

निकट पहुँचकर मोहनी देवी ने महात्मा जी के चरण छूकर उन्हे प्रणाम किया। विशालानन्द ने अपने विशालनेत्र खोले और मोहनी के शिरपर हाथ फेरते हए स्नेह से कहा – "चिरायु हो देवी।" – और शीघ्र ही उनकी दृष्टि मुमुक्षुराम पर टिक गई, जिसमें जिज्ञासा भरी हुई थी।

मुमुक्षुराम ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मोहनी देवी ने कहा – गुरुदेव ये बम्बई के एक बड़े सेठ मुमुक्षु जी हैं, तीर्थयात्रा पर निकले हैं। आजकल ये मेरे मेहमान है।

"अच्छा ! अच्छा ! यही हैं वह जिनके बारे में तुम उस दिन बतला रही थी ?"– महन्त ने पूछा।

"जी हाँ।"

"बैठो ! बैठो !" विशालानन्द ने कहा और वे तनिक तनकर बैठ गए।

मुमुक्षुराम और मोहनी देवी सामने सोफे पर बैठ गए। वह स्त्री खड़ी रही, महन्त की दृष्टि उस पर गई तो वे बड़े मधुर शब्दों में बोले –"तू क्यों खड़ी है सुनयना ! बैठ जा।"

वह स्त्री मुस्कुराई और सकुचाती हुई सोफे पर बैठ गई।

महन्त ने टेबिल पर लगे बटन को दबाया और फिर पूछा –"सुनाओ मोहनी जी कैसा चल रहा है आप का काम काज ?"

"आपकी दया से सब भला है गुरू महाराज।" मोहनी ने हाथ जोड़कर कहा।

"यही चाहिए।"– महन्त ने मोहनी को सस्नेह देखते हुए कहा, फिर बैठी हुई सुन्दरी को देखा और बोले– "बस ऐसा हो सुन्दर सुन्दर काम होता रहे, हमारा आशीर्वाद है।"

मुमुक्षुराम भी उस सुन्दरी को ध्यान से देख रहे थे। उन्हें रह रह कर लग रहा था कि उसे उन्होंने पहिले भी कहीं देखा है। कहाँ देखा है ! ·····कब देखा है ! याद नहीं आ रहा था। महन्त ने उन्हें सुन्दरी की ओर देखते ताड़ लिया। वे बोले – "और कहिए सेठजी कैसी लगी आपको हमारी बनारस नगरी।"

"यह तो पुण्य धाम है महाराज।"– मुमुक्षुराम ने चौंक कर कहा –"भला तीर्थ में आकर कौन धन्य न होगा।"

"हाँ ठीक कहा ! सुन्दर कहा"– महन्त फूहड़ पने से

बोले, तभी एक दुबलापतला सा लड़का वहाँ आकर खड़ा हो गया, बोला –"महाराज घंटी बजाई थी !"

"हाँ बेटे।"– महन्त ने उसे देखकर कहा –"मेहमानों के लिए जलपान ला।"

जलपान तो रहने दीजिए महाराज।" मुमुक्षुराम ने कहा –"मोहनी जी ने......"

"अजी उसने तो कराया ही होगा"– महन्त मोहनी की ओर देख कर बोले –"हमारे आनन्दाश्रम से भी कोई मेहमान ऐसे ही नहीं जा पाता। फिर जलपान कोई भोजन थोड़े ही होता है। ही ही कर महन्त हँस उठा। मोहनी और उस स्त्री ने भी उनकी हँसी में साथ दिया।

जाने क्यों मुमुक्षुराम को हँसी नहीं आई। वहाँ का सारा का सारा वातावरण ही उन्हे पाखंडपूर्ण लग रहा था। महन्त के बोल चाल और रहन सहन को देखकर ही उनको उससे अरुचि हो गई थी। फिर भी उसके मानसिक स्तर को जानने के लिए उन्होंने पूछा – "महाराज मैं आपसे ज्ञान की दो बातें सुनने आया हूँ।"

"ज्ञान।"– महन्त विशालानन्द उपेक्षा से हँसा। फिर बोला –"भला किस प्रकार के ज्ञान के बारे में आप जानना चाहते हैं ?"

मुमुक्षु ने गंभीर होकर कहा –"यही कि संसार क्या

है ? संसार में सच्चा सुख क्या है ? अध्यात्म क्या है ? उससे ईश्वर की प्राप्ति कैसे होनी है !"

"ओह ! ओह !"– महन्त जैसे घबरागया हो, बोला– "तुमने तो एक साथ कैसे कैसे प्रश्न कर डाले !" उसके सामने रखे मोसम्मी के रस के गिलास को उठाकर दो चार घूंट पिया फिर भर्राए स्वर में बोला –"बड़ों ने कहा है और शास्त्रन मे भी लिखा है कि संसार माया का बन्धन है, उससे छूटने में सच्चा सुख है भैया ! और छूटने के अनेकानेक मार्ग हैं। उनमें से हम तो भक्ति मार्ग को ही श्रेष्ठ समझते हैं।"

"अच्छा ! तब आप मुझे भक्ति मार्ग के विषय में ही कुछ बतलाइए !"– मुमुक्षु ने पूछा ।

"भक्ति के विषय में क्या बतलाना ! भक्ति भक्ति होती है । वह मन में अपने आप उपजती है । तन मन धन से भगवान कृष्ण पर अपने आप न्योछावर कर देना हो परम भक्ति का एक मात्र मार्ग है ।"– महन्त ने कांपते स्वरो में कहा और पूरा गिलास खाली कर दिया । ऐसा लगता था जैसे उसे इस प्रकार के लोगों से ज्ञान चर्चा करने की आदत न थी ; उसने आँख मिचमिचाते हुए कहा–"अगर तुम्हें अपने भविष्य के बारे में कुछ जानना हो तो पूछो ।"

"हाँ महन्त महाराज त्रिकालज्ञ हैं। बिल्कुल सही सही भविष्य बतलाते हैं।"–मोहनी देवी ने मधुर शब्दो में कहा।

"भविष्य के स्थान पर मुझे वर्तमान के विषय में जानने की अधिक इच्छा है, महाराज"–मुमुक्षुराम फिर उसे अपने विपय पर खींच लाने को दृष्टि से बोले–"आपने कहा कि तन मन धन से न्योछावर हो जाना ही भगवान की परम भक्ति का एकमात्र मार्ग है सो मुझे यह स्पप्टत: वतलाइए कि ऐसा करने के साधन क्या हैं और ऐसे भक्त के लक्षण क्या हैं ?"

महन्त ने नेत्र बन्द किए और वे सोफे से टिक गए। फिर भावावेश में आकर बोले–"भक्ति का मार्ग कोई कठिन नहीं है भाई ! बहुत सरल है इसीलिए कोई भी इसका साधन कर सकता है। भावना से ही सारी बातें बनती हैं। हमें देखो। हमारा तो सारा जीवन हो कृष्णमय हो गया है। हम दिन रात भगवान के चरणों का गुणगान करते रहते हैं। उनके आचरणों का अनुकरण करते हैं, उनकी सारी अमृत लीलाएँ स्वयं करते और कराते हैं। अपने आपको हम उनकी छाया के समान अनुभव करते हैं। हम उनमें खो गए हैं, वे हम में समा गए हैं। उन लीलामय महाप्रभू की सारो छबियाँ हमारे रोम रोम में

"उफ······उफ······"– मुमुक्षुराम मानसिक वेदना से छटपटा उठे –"तो यह है महन्त विशालानन्द का भक्ति मार्ग और मोहनी देवी की पुण्य भावना। लीलामय भगवान श्रीकृष्ण की अनुपम लीलाएँ चिन्तन के योग्य हैं, अनुकरणीय नहीं। उनकी लीलाओं में निष्काम पवित्रता तथा भक्त वत्सलता का विशुद्ध प्रेम–रस–परिप्लावित है, किन्तु महन्त विशालानन्द ने भोली भाली स्त्रियों की भावुकता का लाभ उठाते हुए उन लीलाओं के निकृष्ट अनुकरण की ओट से अपनी क्षुद्र कामना पूर्ति का साधन ढूँढ़ा है। मुमुक्षुराम अपनी घृणा को छिपाने में असमर्थ हो रहे थे। मोहनी देवी ने उसे भांप लिया और महन्त जी को इसका ज्ञान हो इसके पूर्व ही उन्होंने वहाँ से विदा ली और मुमुक्षुराम को वहाँ से ले आई।

३६

मुमुक्षुराम के सामने सत्य अपने नग्न रूप में प्रकट हो चुका था। पुण्य कार्यों की आट में यह पापाचार, भगवान कृष्ण के नाम पर यह दुराचार मन और आत्मा को कंपा देने वाला था। तो मोहनी देवी के प्रति उनका संदेह मिथ्या न था। उनकी चरित्र हीनता का पता तो उन्हें गत रात्रि ही लग चुका था, अब यह भी ज्ञात हो गया कि सुधा विधवाश्रम वास्तव में क्या है ...... एक संगठित अनैतिकता का अड्डा मात्र ! .. ऐसी स्थिति में वे अब एक क्षण भी मोहनी देवी के घर नहीं ठहर सकते थे। सन्ध्या होने आई थी, पर घर पहुँचते ही उन्होंने अपना सामान समेट कर अटेची में रखा और चलने की तैयारी की तो देखा कमरे के द्वार पर मोहनी देवी खड़ी हैं।

"आप जा रहे हैं ?"–मोहनी देवी ने कंपित स्वर मे पूछा।

"जी हाँ।"–मुमुक्षुराम ने गंभीरता से उत्तर दिया।

"पर इस प्रकार अचानक जाना तो ठीक नहीं। संध्या हो गई है, कल सुबह चले जाइए।" मोहनी देवी ने उदासीनता से कहा।

"अब और एक क्षण भी मैं यहां नहीं रुक सकता"–मुमुक्षुराम ने द्वार की ओर बढ़ते हुए कहा–"हटिए मुझे जाने दीजिए ।"

"मैं आपको नहीं रोकूँगी ।"–भर्राए स्वर में मोहनी ने कहा–"पर मुझे इस तरह जलील करके न जाइए। आखिर ऐसा मैं ने क्या किया है, जो आपकी दृटि से इतना गिर गई ।"

मुमुक्षुराम ने स्थिर दृष्टि से मोहनी की ओर देखा फिर कहा--"मैं कुछ नहीं कह सकता मोहनी जी। मैं बस इतना जानता हूँ कि मैं इस वातावरण में अब और नहीं रह सकता ?"

"पर इस आकस्मिक घृणा का कारण तो बतलाइए?"-मोहनी ने दुखित स्वर में पूछा ।

मुमुक्षुराम को आश्चर्य हुआ, सीमा है इस महिला के दुस्साहस को कि जान –बूझकर वह उनके मुख से अपने पाप का लेखा –जोखा सुनना चाहती है। उन्होंने दृढ़ता से कहा –"मोहनी जी मेरे मुख से न कहवाओ तो अच्छा है। तुम भला अपने आप ही से पूछो, जाकर आइने में अपना मुख तो देखो। सब साफ साफ नजर आजाएगा। दुनिया में बुरे –भले सभी तरह के काम होते हैं पर भलाई की आड़ लेकर बुरे काम करना सबसे बड़ा पाप

है। तुम विधवा हो अगर विधवा को तरह जीवन नहीं बिता सकतो थीं तो किसी एक से पुनर्विवाह कर लेती पर यह जो तुमने विधवा धर्म का ढोंग रचकर वासना का जीवन अपनाया है, यह तुम्हारे नारीत्व पर एक धब्बा मात्र है।"

"हो सकता है आप की बात सही हो"-- मोहनो ने कठोरता से कहा। आप सहृदय हैं, समाज सुधारकों स' बात करते हैं। हमारे समाज में विधवाओं की दशा सुधारने के लिए वहुत प्रयत्न हुए है, पुनर्विवाह के नारे लगे हैं पर समाज ने इन प्रयत्नो को कितनी मान्यता दी है। कितने है जो विधवा स्त्री के साथ विवाह करने को तैयार होते हैं। विधुर भी होते है तो उन्हें दूसरे विवाह में अछूती अविवाहित कन्या चाहिए। फिर वही कन्या जब खिलकर युवती वनती है तो विधवा हो जाती है। उसका यौवन वैधव्य की मार से, लोगो की घृणा से उजड़ जाता है, ऐसो दशा में यदि समाज और धर्म की मर्यादा रखते हुए मेरी जैसो कोई दुखिया स्त्री अपना जोवन सुख से बिता लेने का रास्ता निकाल लेतो है तो उसमें बुरा क्या है ? फिर यह सब मैंने अपनो मर्जी से भो नहीं किया है। दुनिया के लोग जिनकी कृष्ण के समान पूजा करते हैं उन महाराज विशालानन्द जी के निर्देश के

अनुसार किया है। वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं, अवतार पुरुष है।"

"अवतार पुरुष !"– मुमुक्षुराम विशालानन्द का नाम सुनते हो फिर घृणा से भर उठे, बोले– "सीधे – साधे स्त्री पुरुषों को बहका कर भला कोई अपने वैभव के बल पर अवतार पुरुष बन सका है ? भगवान कृष्ण के नाम पर विलासता का राग रग भोगने वाले तुम्हारे महाराज विशालानन्द में एक भो महानता भगवान कृष्ण को नही है ...... पर वे तुम्हारे प्रिय है। मुझे न तो उनको निन्दा करनो है न तुम्हारी। मै रागद्वेष से रहित हूँ। मुझे तो बस जाने दीजिए।"

"मै कह चुकी हूं कि आपको नही रोकूँगो। पर न जाने क्यो मुझे आपके प्रति कुछ अपनत्व को भावना का अनुभव हाता है और यह जानकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है कि आप मुझे कलकनी समझकर यहाँ से जा रहे है।"–मोहनो का गला वेदना से भर गया--"मैने जान–बूझ कर कोई अनाचार या पाप नहो किया है। जब मै बनारस आई थो तब मुझे भी ये बाते पतित दिखलाई देती थी, पर यहाँ तो शास्त्रों में भी यहो लिखा है कि भगवान कृष्ण ने भो पराई स्त्रियों के साथ लीला को, फिर

काशी में तो कोई भी पाप पाप नहीं रहता। महन्त महाराज के वचनों पर विश्वास कर मैं जो कुछ कर रही हूँ वह सब उन आनन्द घन सच्चिदानन्द भगवान कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए कर रही हूँ।"

"और उनकी प्रसन्नता तुम्हें अपने कृष्णावतार महन्त जी के माध्यम से ज्ञात होती है। मोहनो देवी मैं व्यर्थ तर्क करके तुम्हारे विश्वास नहीं तोड़ना चाहता। एक दिन आएगा जब तुम्हें स्वयं ही यह ज्ञात हो जाएगा कि तुम्हारे महन्त जी क्या है और क्या नहीं हैं। ...... जहाँ तक मेरा प्रश्न हैं मैं अपनी आत्मा की बात मानता हूं उसके अनुसार न तुम्हारे महन्त ही निर्दोष हैं और न तुम ही। अच्छा अब मुझे विदा दीजिए।

"अच्छा"– मोहनी दरवाजे पर से हट गई। मुमुक्षुराम के जाने का उसे सचमुच क्षोभ था। मुमुक्षु के वचन इतने सारर्गभित थे कि मोहनी देवी का विवेक जाग उठा। आज अचानक ही अपनी भूल दिखलाई दी। जिन महन्त जी को उसने एक आदर्श महापुरुष के रूपमें समझा था आज मुमुक्षुराम के एक छोटे से संकेत से उसके प्रति घृणा हो गई। मोहनी देवी के मन में अपने जीवन के इस पथ को सुधारने का संकल्प जाग उठा।

३६

संध्या रात्रि के अंधकार में बदल चली थी। मोहनी के घर से निकल आने के पश्चात मुमुक्षुराम को शान्ति का अनुभव हुआ। अब उनके मन में किसी प्रकार की कोई वेदना न थी। क्षणभर के लिए नाटक के पात्र की तरह वे मोहनी देवी के माध्यम से महन्त विशालानन्द के रहस्यपूर्ण जीवन नाट्य के साक्षी बन गए थे। मसार की इम अति विस्तृत रंगशाला में ऐसे अनेकानेक निकृष्टतम नाटक छपते रहते है। उनकी चिन्ना या घृणा लेकर कोई कब तक अपने मन को बिगाड़े।

चलते चलते मुमुक्षुराम ने अपने अगले कार्यक्रम पर विचार किया। आज वहीं रुक कर, कल उन्होंने बनारस छोड़ने का निश्चय किया। सामने ही उन्हें पुण्यधाम धर्मशाला की अधबनो इमारत दिखलाई दो। उन्होंने रात वही ठहरने का निश्चय किया और धर्मशाला के द्वार पर आकर कुंडी खटखटाई। अन्दर से वृद्धा को आवाज सुनाई दी –"कौन है भाई। अभो आती हूँ।"

बुढ़िया किसी दूर के कमरे में थी, वहाँ से हाल में आगई। मुमुक्षु को द्वार पर खड़े देखकर बोलो –"कौन हो भैया, क्या काम है?"

"मैं एक मुसाफिर हूँ ! धर्मशाला में रात को सोना चाहता हूँ।"– मुमुक्षु ने अन्दर हाल में घुसते हुए कहा।

वृद्धा के पोछे से दुबला-पतला सा एक वृद्ध आदमी निकला और खाँसते हुए आकर कुर्सी पर बैठ गया।

"अभी यह धर्मशाला पूरी नही बनी भैया, इसलिए हम किसी को ठहराते नही है।" वृद्धा ने संकोच से कहा।

मुमुक्षुराम मुँह लटका कर चलने ही वाले थे कि वृद्धा ने पास आकर पूछा –"बहुंत परेशान दिखते हो। पहले कभो बनारस आए थे ?"

"न !"– मुमुक्षुराम ने नम्रता पूर्वक कहा–" इसीलिए अगर रात भर ठहर लेने देतीं तो –..."

"ठहरने तो दे सकते हैं" – वृद्धा ने दबी जबान से कहा – "पर तुम्हें धर्मशाला के नाम पर कुछ दान देना होगा।"

"कितना ?" – मुमुक्षुराम ने पूछा।

"जो तुम्हारी श्रद्धा और हिम्मत हो। सौ, पचास, पच्चीस, दस, पांच।" वृद्धा ने एक सांस में कहा – "पर हम तुम्हें रसीद नहीं देगें।"

मुमुक्षुराम रुक गए। उन्हें वृद्धा बहुत दिलचस्प लगी। उन्होंने कहा – "पर मैं तो गरीब हूं तुम्हें एक रुपया भी नहीं दे पाऊँगा।"

"इतने गरीब दिखते तो नहीं।" – वृद्धा ने एक लम्बी साँस लेकर पूछा – "क्या सचमुच कुछ भी नहीं दे सकते ?"

इससे पहले कि मुमुक्षुराम कुछ बोले, कुर्सी पर बैठा हुआ वृद्ध बोल पडा – "अरे काहे को लगो है गरीब के पीछ, पहले ही उसे किसी बनारसी पण्डे ने लूट लिया होगा, और अगर उसके पास कुछ बचा भी होगा तो रहने दे उसके पास काम आयेगा। रात रह लेने दे उसे वह तेरी टूटी - फूटो धर्मशाला में रात गुजार के दुआएँ देता जाएगा।"

"तुम फिर बीच में बोले ;" – वृद्धा तुनक कर बोली – "मैने लाख बार कहा है, अपनी जबान न हिलाया करो। न कुछ जानते, न समझते बस बीच में कूद पडते हो। तुम्हीं हो जिसने मुझे बरबाद किया है।"

"अरे फिर बक झक लेती महारानी, अभी तो उसे धर्मशाला में सो जाने दे।"– वृद्ध ने प्यार से कहा।

"चाहे जिसको सो जाने दे। देखने भी न दोगे, जाने कैसा आदमी है ?"

"आदमी सब एक से होते हैं" – वृद्ध गुर्राया। "यहां पर कौन सी अर्शाफियां रखी हैं जो ले भागेगा। – चल आजा भाई आजा, मेरी चारपाई

के पास पड़ रहना।"

"ठीक हैं दो पैसे भी न बनने देना। तकदीर ही मेरी हरामी है जो धरम करम के काम में भी रोड़े पड़े हैं।" वह बकती - झकती अन्दर चली गई। मुमुक्षु-राम ने अन्दर आकर अपना सामान रखा और वृद्ध के सामने कुर्सी पर बैठ गए।

"कहां से आ रहे हो भाई ?" - वृद्ध ने पूछा ।

"बम्बई का हूँ, मुमुक्षु नाम है। तीर्थयात्रा पर निकला हूँ।" - मुमुक्षुराम ने संक्षिप्त परिचय देते हुए ध्यान से वृद्ध को देखा। उसके सारे केश श्वेत हो चुके थे, चेहरा भी सूखा हुआ सा था, पर फिर भी स्फूर्ति दिखलाई देती थी।

"बहुत खूब भाई" - वृद्ध ने सिगरेट निकालते हुए कहा - "किस्मत के धनी हो जो तीर्थों में घूमने को निकले हो। यहाँ तीरथ से निकलने के लिए फड़फड़ाते फड़फड़ाते अपने राम बुढ़ा गए! - लो दम लगाओगे ?"

"नहीं मैं सिगरेट नहीं पीता !" - मुमुक्षु ने कहा, फिर पूछा - "मैं जान सकता हूँ आप कौन हैं ?"

"मेरा नाम महाकवि अक्षर है" - उस व्यक्ति ने सिगरेट जलाते हुए कहा - "वैसे अपने माँ - बाप का दिया नाम है कल्पनाकुमार पर मैंने अक्षर नाम चुना।

अक्षर माने जो कभी नाश नहीं होता।"

"तो आप कवि हैं।" – मुमुक्षु ने अदा से पूछा।

"हाँ शायद मैं कवि हूँ।" – अक्षर ने इस अन्दाज से कहा जैसे उन्हें अपने आप पर शक़ हो।

"शायद क्यों ?"– मुमुक्षु ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिए कि तुम मुझे नहीं जानते, सारा दुनिया मुझे नहीं पहिचानतो। जिसे लोग न जाने-माने उसके कवि होने में सन्देह तो होता ही है।" अक्षर हँसा फिर बोला – "अगर मैं झूंठ नहीं बोलता तो मैंने इतना लिखा है जितना शायद ही आज के किसी कवि ने लिखा होगा, पर आज की दुनिया में कविता करने से कोई कवि नहीं होता कवि केरूप में अपने आपको थोपने से ही आदमो कवि जनता है, महाकवि होता है। कहिए क्या मैं गलत कह रहा हूँ ?" – अक्षर ने अपने बड़े-बड़े श्वेत केश फटकारते हुए चश्मा ऊपर की ओर चढ़ाकर पूछा।

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ। – मुमुक्षु ने कुर्सी अक्षर के पास सरकाते हुए कहा –" अक्षर जी आप मुझे एक विशिष्ट व्यक्ति दिखलाई देते हैं। क्या मैं आपकी रचनाओं के विषय में कुछ जान सकता हूँ ?"

आह! मुमुक्षु जी! धन्यवाद! बहुत - बहुत धन्यवाद! – प्रसन्नता से उछलते हुए अक्षर जी ने

कहा– "आज युगों बाद मुझे वह व्यक्ति मिला है जिसने यह जानना चाहा कि मैं क्या लिखता हूँ, कैसा लिखता हूँ। आप कोई भी हों मैं निस्सकोच आपको अपना आत्मीय मानने को तैयार हूँ।"

"मैं धन्य हुआ।" मुमुक्षुराम ने कवि को उत्साहित किया।

"तो सुनो मैंन क्या नहीं लिखा है? एक ओर तो मैंने संसार की सम्पूर्ण कमनीयता पर लिखा है, उसकी सुन्दरता को शब्दों की सुकुमार शैया पर सजाकर उसे सराहा है, उसकी चित्र विचित्र रमणीयता को उभार कर गीतों मे पिरोया है। जितनी भी संसार की मधुरता है मैंने उसे अपनी कल्पना में निचोड़कर एक इन्द्र धनुषी काव्य की रचना की है। दूसरी ओर इस संसार की कुरूपता को मैंने कविता के फावड़े से उघाड़ा है, इसके फूहड़पन को बारीकी से कुरेदा है और जितनी भी कटुता इस ससार की है व जितनी भी बुराइयाँ है उन्हें अपने असली नग्न रूप में काव्य के कटघरे में ला खड़ा किया है। मैंने इतना लिखा है, इतना लिखा है कि सामने जो मेरी शैया देख रहे हो न, वह किसी चारपाई पर नहीं मेरी रचनाओं के ढेर पर ही बिछी है। आओ तुम्हें दिखलाऊँ।" –अक्षर ने लालटेन उठाई और

बिस्तर पर से चद्दर और गद्दा हटा दिया। रिमों लिखे हुए कागजों का ढेर एक पर एक तह कर रखा हुआ था। मुमुक्षुराम आश्चर्य से डूब गए। उन्होंने पूछा– "आप इस सारे साहित्य को प्रकाशित क्यों नहीं करवाते ?"

"प्रकाशित करवाऊँ ? क्यों करवाऊँ ?" – अक्षर ने सनकते हुए कहा – 'मैं नहीं चाहता कि यह प्रकाशित हो। अक्षर की रचना इतनी सस्ती नहीं जो चाहे जिस को प्रकाशित करने को दे दी जाय।"

"पर फिर ! इस तरह तो यह नष्ट हो जाएगी।"–

"चुप रहो अक्षर कभी नष्ट नहीं होता और न अक्षर की लिखी कविता नष्ट होती।" कवि ने ऊँचे शब्दों में कहा फिर वह आराम कुर्सी पर जा लेटा। मुमुक्षुराम आश्चर्य से उसे देख रहे थे। कुछ देर पश्चात वह धीरे से बोला– "आओ आओ यहाँ बैठो। मेरी बात का बुरा न मानना मित्र ! हम बहुत बुरे युग में जी रहे हैं। यह नकली युग है। सारी बातों का बस दिखावा मात्र रह गया है। रहना भी चाहिए, क्योंकि बुद्धि और विवेक का तो दिवाला निकल चुका है, असली नकली का भेद मालुम कैसे हो ? आज जो सनकी हैं और अपनी सनक में एक विशेष प्रकार का प्रलाप कर लेते हैं, वे ही कवि कहलाते हैं। उनकी बकवास पढ़ने और सराहने

वाले भी तो आज के युग के छिछली बुद्धि वाले मनकी पाठक हैं। कविता या साहित्य ही क्या किसी भी कला को ले लीजिए। आज की विकृत पीढ़ी ने उसकी यह दुर्दशा की है कि उसकी मिसाल किसी युग में मिलना कठिन है। आड़ी - तिरछी रेखाएँ, रंगो के भदरंग धब्बे आज श्रेष्ठतम पेन्टिग मान लिए जाते हैं ओर बुद्धि के दिवालिए अध्ययन से ही न समालोचक उनकी प्रशंसा करते थकते नहीं। जितनी भी तरह की मूर्खतायें हैं, फूहड़-पन भरी हरकते हैं वे आज के कलाकारों के लक्षण मान लिए गए हैं। अव आप ही बतलाइए कि ऐसे गड़बड़ युग में अक्षर जैसा बुद्धिवादी कबि कैसे अपने आपको प्रकाशित करे।"

"पर आप जैसे जागरूक और बुद्धिवादी साहित्यिक को इन गलत प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज उठाना चाहिए।" मुमुक्षुराम को अक्षर को प्रतिभा में आस्था हो चली थो।

"आवाज…… ही ही ही……" अक्षर हँसने लगा, बोला – भैंम के आगे बोन बजाए, भैंस खड़ी बौराए। अरे कौन सुनेगा जब सभी अपने - अपने ढोल पीटने में व्यस्त हैं। वे केवल उनकी सुनेंगे जो उनके स्वर में स्वर मिला-एगें। साहित्य की अलग - अलग शैलियों के नाम पर

इन ओछे साहित्यकारों ने अपने अलग-अलग गुट बना लिए हैं। वे खूँख्वार राजनीतिज्ञों की तरह ही साहित्यिक क्षेत्र मे भी दांव - पेच करते हैं। ठीक हो या गलत हमेशा अपने - अपने गुट वालों का ही जय जयकार करेंगे। साहित्य के नाम पर निकलने वाले पत्र-पत्रिकाएँ तथा ग्रंथादि सभी गुटबाजी के खेमें हैं। बड़े-बड़े तथा कथित जनप्रिय मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों को उठाकर देखिए आपको घूम–फिरकर वे ही लेखक पढने को मिलेंगे। यह खुले आम साहित्यिक व्यभिचार है या नहीं ? भाषा और साहित्य के उत्थान और विकास का नारा बुलंद करने वाले ये धुरधर गुटबाजी के दायरों में बन्द हैं। प्रसिद्ध साप्ताहिक भरमयुग के अपने लेखक हैं, 'नखलिस्तान' का अपना साहित्यकार दल है, मासिक नदिया के अपने गुट वाले हैं। कहाँ तक गिनाएँ जनाब ओचित्तानन्द कात्यायन भरमवाले कान्ती के मित्र. भरमवाले कान्ती कामाचारी पिन्नकर के साथी और कामाचारी पिन्नकर महाकवि कक्कन के सगे, सब एक दूसरे के प्यार में पगे बड़े-बड़ पदों पर विराजमान बस साहित्य का सारा आकाश इनका, ये ही उसके पखेरू, ये ही उसके तारे। सो वहाँ अक्षर की क्या बिसात ? वह तो इन सभी सितारों के आकर्षण से अलग अपनी ही धुरी पर घूमने वाला ग्रह है·..." – अपनी हो धुनमें बोलते - बोलते अक्षर को

मुमुक्षु का ध्यान आया, पूछा – "हम अपनी - अपनी ही कहे जा रहे है, भला आप ऊबे जा रहे होंगे ?"

"नहीं ! मेरे लिए तो यह बिल्कुल नई है सो रुचि-पूर्ण लग रही है। मैं नहीं समझता था कि साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसी भ्रष्टता चल रही है ?" – मुमुक्षु ने अपना आश्चर्य व्यक्त किया।

"आपको कैसे पता चले। आप पाठक लोग तो इनका बाहर का मुखौटा देख पाते हैं पर अन्दर से ये सब दौलत के पिस्मू है, ढोंगो ! यहाँ इस दुनिया में एक दूसरे का फतवा देने वाले ये चुकन्दर ही चल पाते हैं। हम जैसे अक्खड़ अपने आपको कला पर भरोसा करने वाले तो रोटी कमाने की बात तो छोड़ो इतना कलम घसोटने पर भी कवि या लेखक नहीं बन पाते।"

"अनर्थ ! हरे हरे घोर अनर्थ ! " – मुमुक्षुराम ने निःश्वास लेकर कहा।

"अब अनर्थ कहाँ भैया चाहे दुनिया की चाल कहो, हम तो चुप्पी साधे बैठे हैं। अपने आप में लीन अपनी साधना का आनन्द लेते रहते हैं।"

"आप कवि सम्मेलनों में भी अपनी कविता नहीं सुनाते ?" मुमुक्षुराम ने सहसा पूछा।

"कवि सम्मेलनों की कुछ न पूछो ! मंच पर हम

सदा जमते हैं, पर कुछ दिनों से कवि सम्मेलनों के पण्डे भी हमसे नाराज हो गए हैं। खरी बातें सुनाने वाले उन्हें नहीं रुचते। अभी कुछ ही साल बीते होंगे महान साहित्यकार तथाकथित महाकवि कामाचारी ने एक महाकाव्य छपवाया। तुमने पढ़ा होगा नाम था "मेनका।"

"नहीं पढ़ा!" – मुमुक्षुराम ने कहा।

"कोई बात नहीं पढ़ने योग्य उसमें कुछ था भी नहीं पर उसका खूब ढोल पीटा गया। यहाँ बनारस में भी उस पुस्तक और कवि के सम्मान में एक समारोह हुआ। कवि सम्मेलन भी रखा गया। अब नगर वाले कवि अक्षर को कैसे छोड़ दें, सो बुलाया गया। जब मैंने कविता सुनाई तो जानते हो क्या हुआ?

"क्या?" मुमुक्षु की उत्सुकता बढ़ गई।

"जनता हँस-हँस कर दोहरी हो रही थी और कामाचारी महोदय पसीने से गले जा रहे थे। मेरी कविता का शीर्षक था – मेनका या मेंढकी?" लो जनाब कविता सुनने में श्रोतागण को खूब आनन्द आया पर कवि सस्मेलन वाले नाराज हो गए। यद्यपि हमने मेनका नाम की पुस्तक के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा था, मेनका तो अप्सरा मेनका थी पर उन्हें वह भी सहन नहीं

हुआ सो उन्होंने हमें नगर के कवि सम्मेलनों में भी बुलाना बन्द कर दिया। करदें। इससे क्या हमारी कविता बन्द हो गई?"

मुमुक्षुराम के मन में इस परित्यक्त साहित्यकार के प्रति एक सहज सहानुभूति उमड़ पड़ी। साथ ही उसके विषय में कुछ और जानने की जिज्ञासा भी जागी।

सो उन्होने पूछा –"अगर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूँ?"

"अवश्य, अवश्य!"– अक्षर ने दूसरी सिगरेट जलाते हुए कहा।

"आपका और इन धर्मशाला वाली माता जी का क्या सम्बन्ध है?"

"वही जो आदम का ईव से, राम का सीता से, रावण का मंदोदरी से था।"– एक सांस में अक्षर ने कहा।

"पर मैंने तो सुना था कि······"मुमुक्षु ने कहना चाहा।

"तो तुम सब कुछ सुन चुके हो! वाह री दुनिया तेरे जैसा कहने वाला और कौन होगा?"– अक्षर ने कुढ़कर कहा –"पर तुम तो कहते थे कि बनारस में तुम नए हो।"

"हाँ नया ही हूँ। कुछ दिन पूर्व प्रयाग में एक देवी से मुलाकात होगई, वे बनारस की थीं सो उन्होंने मुझे

अपना मेहमान बना लिया। आप जानते होंगे मोहनी देवी को, आपकी पड़ोसिन हैं।"

"हाँ हाँ अच्छी तरह जानता हूँ सुधा विधवाश्रम वाली न ?"

"हाँ ! आज अचानक वहाँ से चला आया ?"

"चले आए या निकाल दिए गए।"

"कुछ भी कह लीजिए। वह सब मेरी सहन शक्ति के बाहर था। एक क्षण भी ठहरना कठिन था।" मुमुक्षु राम सहज ही कह उठे –"मैंने तो समझा था कि बड़ी पुण्यशीला धर्मात्मा देवी हैं, पर बाद में जो कलई खुली तो मैं आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा।"

"अच्छा ही हुआ तुम वहाँ से चले आए। तुम्हें नहीं मालुम सुधा विधवाश्रम तो महन्त विशालानन्द का हरम है महाशय और मोहनीदेवी उनकी खास चेली हैं।"

"मैं सब जान चुका हूँ अक्षर जी।"

"हूँ तो उन देवीजी ने ही आपसे हमारी तारीफ की होगी"– अक्षर जी बोले –"वैसे भी हमारे विषय में कोई छिपाने लायक बात है ही नहीं। वे वृद्धा बनारस की एक समय की अति प्रसिद्ध वेश्या सिगारा देवी हैं। दुनिया की निगाह में ये वेश्या ही हैं पर पिछले तीस साल से मेरी

निगाह में मेरी धर्म पत्नी हैं। नहीं पत्नी से भी बढ़कर मेरी जीवन सर्वस्व हैं।"

"पर यह आश्चर्य की बात है कि आप यह जानते हुए भी कि ये वेश्या हैं इन्हें इतना प्यार कैसे कर सके?"

अक्षर हँसा, बोला—"तुम बुद्धिमान होकर आश्चर्य करे रहे हो। मैं कहता हूँ दुनिया में यदि कोई सच्चा प्यार कर सकता है तो वह वेश्या ही है"।

•

"पर शरीर और वासना का व्यापार करने वाली वेश्या जिसका धंधा ही दिखावटी प्यार करना है, भला उससे सच्चे प्यार की आशा आप केसे कर सके?" मुमुक्षुराम ने शका व्यक्त की—"हाँ वह दिखावटी प्यार का धंधा करती है, पर इसका मतलब यह नही कि उसके पास सच्चा प्यार करने वाली औरत का दिल नहीं। एक होटल वाला खाना खिलाने का धंधा करता है इसका मतलब यह नही कि उसे खुद खाना नहीं चाहिए। मुमुक्षु जी धंधा अपनी जगह होता है और धंधा करने वाले का व्यक्तित्व अपनी जगह। वेश्या के व्यक्तित्व में जो स्त्री होती है उसे अन्य स्त्रियों की तरह अपने एक पुरुष की भी चाह होती है। उसे भो कोई सच्चा प्यार करने वाला चाहिए। खोटा प्यार वह पैसे के लिए बाँटती है पर सच्चे प्यार के लिए वह अपना सर्वस्व लुटा देती

है। मैंने सिगारा की इस जरूरत को पूरा किया है। मैंने उसे पति का सच्चा प्यार दिया है और बदले में उसने मुझे तहे दिल से चाहा है। इन तीस सालों में मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि वह वेश्या है।"

"मैं आपकी बात का सम्मान करता हूँ।"–मुमुक्षुराम ने गम्भीरता से कहा। इस विचित्र कवि के प्रति उनके मन में अनायास ही श्रद्धा उमड़ पड़ी। दुनिया भले ही इसे पागल कहे पर यह एक भोला भाला सहृदय कवि ही है जो हृदय की भाषा जानता है, जो भावनाओं के मोल बिक जाता है। जिसे दुनिया के छलछिद्र से न कोई सरोकार है, न कोई भय। कोई उसकी बात माने या न माने, उसका सम्मान करे या न करे, इसकी उसे चिन्ता नहीं। उसने जीवन की अपनी एक परिभाषा बना ली है और जिसके अनुसरण में वह किसी की परवाह नहीं करता।

"अरे कवि जी !" अन्दर से वृद्धा की आवाज सुनाई दी–"चलिए खाना तैयार है।"

"आए साहब अभी आए ?"–अक्षर ने उत्तर दिया और मुमुक्षु से कहा–"चलो बन्धु भोजन तो न हुआ होगा ?"

नहीं ! भोजन में आज मेरी रुचि नहीं।"

"ऐसा नहीं होगा जी ! आज तुम मेरे मेहमान हो, तुम्हारे बिना मैं खुद नहीं खाऊँगा ।"–अक्षर ने आग्रह से कहा ।

मुमुक्षु टाल नहीं सके । उन्हें अक्षर के साथ भोजन करना ही पड़ा । भोजन के पश्चात मुमुक्षुराम के लिए रचनाओ की शैया के पास ही एक खाट लगा दी गई । उस पर बैठ कर वे अक्षर से चर्चा करने लगे । सिंगारा देवी पान लगाने बैठी । मुमुक्षुराम ने संक्षेप में अपनी कहानो अक्षर को सुनाई तो उसकी आँखो से आँसू बहने लगे । गद-गद कंठ से उसने कहा–"आह मुमुक्षु जी ! आपकी आप बीती अनोखी है । इस पर एक महाकाव्य लिख डालूंगा ।"

सिंगारा देवी ने पान की तश्तरी बढ़ाते हुए मुस्कुरा कर कहा–"अजी तुम जिन्दगी भर महाकाव्य ही लिखते रहना और लिख लिख कर अपने नीचे दबाते जाना । कभी तुमने कोई काम की बात की है ?"

"बस जी तुम बीच में मत बोला करो"–कवि ने चिढ़ते हुए कहा –"तुम बोलीं कि हुआ रंग में भंग । लीजिए मुमुक्षु जी पान ।"–मुमुक्षु जी ने पान उठाया तो कवि ने भी एक बीड़ा अपने मुख में दाब लिया ।

"सत्यानाश जाय तुम्हारे इस रंग का । तुम अपने

इसी रंग में डूबे रहे और जमाने ने हमें भून डाला। आज तुम दुनिया के आदमी होते तो क्या यह धर्मशाला अधूरी रहती। दिनों दिन मौत नजदीक आती जा रही है और मैं अपने धर्मशाला बनवाने के अरमान लिए ही चल बसूँगी।"–सिगरा देवी ने एक ठंडी सांस ली तो अक्षर दुख से पानी पानी हो गया।

वह दुखी स्वर में विलपते हुए बोला–"हाय मैं भी ऐसा नाकारा आदमी निकला और ऐसा निकम्मा धंधा अपनाया कि दान और दुनिया दोनों से गया।"

मुमुक्षु ने सहानुभूति से कहा--"पर मेरी समझ में यह नहीं आया कि आखिर धर्मशाला बनते बनते अधूरी कैसे रह गई ?"

'अजी बिना दामों के कभी कोई काम पूरा हुआ है।"--सिगारा ने तुनक कर कहा।

"पर जब आपको मालुम था कि आप के पास इतने दाम नही हैं, जो इतनी बड़ी इमारत बनवा सकें तो छोटी इमारत का प्लान बनवातीं। भला नक्शा बनवाकर इन्जीनियर से खर्चे का एस्टीमेट तो लगवाया होगा न!"

"अजी सब किया था मगर किसे पता था कि कमबख्त दुनिया वाले पुण्य के काम में ही बेइमानी करेंगे।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ? जिन्दगी भर पाप का धंधा किया सोचा मरते वख्त कुछ धरम - करम करती चलूं सो इस धरमशाला का पलान बनाया। बड़े इनजीनियर से नकशा पास कराया, लाख रुपया का एस्टीमेट था। मैने नाच नाच कर अपने जिसिम की बोटी बेंच बेंच कर उस हरामी बनिए लालचीमल गुदड़ीलाल के यहाँ रुपया जमा करवाया था। भरोसे की बात थी सो रसीद तक न ली। एक किताब थी जब लेन देन होता उसे भेज कर उसमें लिखवा लेती थी। बरसों से ऐसा चला आ रहा था, कभी कमीने ने बेइमानी नहीं की पर धर्मशाला जब आधी बन चुकी थी तो उस बेइमान साहूकार ने पैसा देने से इन्कार कर दिया। कहने लगा आपकी रकम खत्म हो गई, जबकि मेरी किताब में तीस हजार और बाकी निकलता था। मैं गरीब औरत जात उस कमीने का क्या करती। मेरे पास तो मुकदमा लड़ने तक को पैसा नहीं था वह लालची गीदड़ बड़ा भगत बना फिरता है, मेरे से इस धर्मशाला को अपनी गोदाम बनाने के लिए मांगने लगा। कमीना--कुत्ता कहीं का।"--वृद्धा गुस्से से कांपने लगी--गालो पर आँसू लुढ़क चले।

"घबराओ नहीं बहिन।"– मुमुक्षुराम ने सांत्वना

कुबड़ी लकड़ी जिसमें छोटी छोटी घंटियां कसी हुई थीं वहीं रखी थी।

कुली ने दोनो हाथों को ठोक ठोक कर गाँजे के तैयार होन का संकेत किया तो साधुने झोले में से एक चिलम निकाली। अच्छी लम्बी पतली चाँदा के तारों से जड़ी हुई चिलम थी। कुली ने उसे लेकर उसमें गाँजा भर दिया, फिर एक कपड़े को फाड़कर उमको गोली सी बनाई और उसे जलाकर चिलम पर रख दिया और चिलम साधु के सामने पेश की। साधुने दोनों हाथों में चिलम पकड़ी और धीरे से एक नारा लगाया–"बम शंकर, कांटा लगे न कंकर !"–और तेजी से चिलम को सुड़टा। बाबा को ठसका लगा, उसकी बुझी बुझी आँखों में कुछ चमक सी आई और उसने चिलम बगल वाले जवान की ओर बढ़ा दा। फिर इस हाथ से उस हाथ, उस हाथ से उस हाथ तानों में चिलम चल पड़ी। मुमुक्षुराम काफी देर उन्हें देखते रहे। उन्हें आश्चर्य इस बात का था कि इतनो देर से उनमें आपस में बिल्कुल बात नहीं हो रही थी तोनों अपने आप में खोए दम लगा रहे थे। पास में एक ओर देहाती बैठा था, उससे न रहा गया, उसने साधु से कहा --"महाराज एक फूँक मैं भी लगा लूँ ?" साधु ने बिना उसको ओर देखे चिलम बढ़ा दी और आवाज लगाई "ओ चाय वाले ! एक चाय लाना !"– और झोले

में से एक रुमाल निकाल कर, उसकी गांठ जिसमें पैसे वन्धे थे, को खोलने लगा। देहाती ने फूंक लगाकर जब चिलम लौटानी चाही तो साधु ने कहा-"बस खत्म कर दो हम निपट चुके।" देहाती खुश होकर जल्दी जल्दी जला हुआ गांजा फूंकने लगा।

चायवाला लड़का चाय लेकर आया। साधु ने लेकर कप से बशी में आधी चाय डालकर साथ वाले जवान की ओर बढ़ाई तो वह रुखाई से बोला -"न मैं तो पूरा कप पिउँगा।"- उसने चायवाले से कहा-"जा एक कप और ले आ।"

साधु ने बशी कुली की तरफ बढ़ा दी और प्याला नीचे रखकर रुमाल में से दो कप चाय के पैसे निकाल कर चायवाले को दिए। फिर तीनों चाय पीने लगे।

साधु ने नौजवान से पूछा -"क्यों हीरा हमें पठान कोट गाड़ी बदलना पड़ेगी ?"

"हाँ पठानकोट से बैजनाथ पपरोला लाइन पकड़नी होगी।" हीरा ने कहा

"पहुँचते पहुँचते सुबह हो जाएगी। सबेरे ही गाड़ी मिल जाएगी। आप लोग दोपहर के पहले ही ज्वाला मुखी पहुँच जाएँगे।" कुली ने कहा

"हूँ !"- बाबा ने आँखें बन्द कर ली -"मेले में बड़ी बहार होगी।"

"मजा आ जाएगा ।"– युवक के चेहरे पर प्रसन्नता खिल उठी ।

मुमुक्षुराम से रहा नहीं गया, उन्होंने बाबा से पूछा– "मेले में जा रहे हैं आप लोग ?"

बाबा और उसके साथी चौंके जैसे कोई धमाका हुआ हो, फिर प्रश्न को समझकर होरा बोला –"ज्वाला मुखी देवो का मेल. है, हम उसके दर्शनों को जा रहे हैं ।"

"हाँ !" बावा ने आँखें बन्द कर लीं –"वह हमें बुला रही है । हमें जाना होगा ।"

मुमुक्षुराम समझ गए कि नशा इन पर सवार है अत: उन्होंने कोई बात नहीं की । गाड़ी आने पर कुली ने साधुको गाड़ी में चढ़ा दिया । युवक हीरा भी साथ में जा बैठा । भोड़ अधिक नहीं थी मुमुक्षुराम भी उसी डिब्बे में सवार हो गए । उन्हें ऊपर वाली एक सीट मिल गई जिस पर उन्होंने अपने सोने की व्यवस्था करली । गाड़ो चलदो । साधु और उसके साथ वाले युवक आँखें बन्द किए चुपचाप बैठे थे । मुमुक्षुराम सोचने लगे–"इस सन्यासो की उम्र तीस से अधिक नहीं है । फीका चेहरा, धँसो हुई आँखें, नंगे बदन पर पसलियाँ झाँकती हुई । गले में चार छः मालाएँ हैं । वस्त्र के नाम पर केवल एक

भगवा तेहमत बाँध रखा है। संसार की ठोकरो से घबरा कर, जब मन ऊबा होगा, तो इस व्यक्ति ने सन्यास ले लिया होगा। सोचा होगा साधू सन्यासी के जीवन में सुख मिलेगा, सम्मान मिलेगा...... पर वह कुछ न हुआ, होता भी कैसे? केवल वेश बदल लेने से ही कोई साधु थोड़े हो बन जाता है। दुख से घबरा कर, संसार से भाग कर, जो व्यक्ति साधु बनता है, वह तो कमजोर मन का व्यक्ति होता है। साधु बन जाने पंर उसकी कमजोरियाँ उसका पोछा नहीं छोड़तीं। मन एकाग्र नहीं होता, दौड़ दौड़ कर संसार की भूल भुलैया में जाता है। फिर उसे रोकने के लिए ऐसे लोग गांजा–भाँग आदि का सेवन करते हैं। नशापत्ती करके गुम रहने का रास्ता इन्होंने खूब ढूंढ़ निकाला है। जब देखो तब होशो हवास गुम, पर लोगों को लगे कि भगवान के ध्यान में मस्त हैं।...... खैर"–मुमुक्षुराम ने निश्चय किया –"जब ज्वालामुखी देवी का स्थान बीच में पड़ता ही है, तो क्यों न वहाँ होते चलें, ये साथी मिल ही गए हैं।"–मुमुक्षूराम ने देखा बाबा और उसका साथी खुर्राटे भरने लगे थे। वे भी आँख बन्द कर पड़ रहे।

प्रात:काल गाड़ी पठानकोट पहुँची। यहां गाड़ी खत्म होतो थी। बर्थ से उतर कर मुमुक्षुराम अपना सामान

समेटने लगे। साधु भी अपनी झोली झंगी संभालकर नीचे उतर रहा था। उसका साथी पीछे रह गया था, मुमुक्षु ने उससे पूछा–"क्यों जी ! ज्वालामुखी जाने वाली गाड़ी कहां मिलेगी ?"

"नीचे उतरने पर पता लगेगा।" हीरा ने उतरते हुए लापरवाही से कहा।

हाँ सो तो है ही, मुझे तो टिकिट भी खरीदना है।" मुमुक्षु राम ने उसके पीछे पीछे चलते हुए कहा

"अरे तुम जहाँ से रेल में बैठे थे तुमने वहीं से सीधा टिकिट क्यों नहीं कटा लिया ?"

"भूल हो गई !"– मुमुक्षुराम ने कहा

"अच्छा ! अच्छा ! हम अभी दिला देंगे। हम भी ज्वालामुखी जा रहे हैं।"– हीरा ने कहा। रात की कोई भी बात उसे याद नहीं थी।

"अरे हीरा! मेरी छड़ी अन्दर रह गई।"– बाबा ने प्लेटफार्म पर से आवाज लगाई।

"ओहो ?" हरी जल्दी से पीछे लौटा और सीट के नीचे रखी बाबा की चाँदी मढ़ी छड़ी ले आया। उसने छड़ी बाबा को देते हुए कहा –"अपनी मस्ती में कहीं हमें न भुला देना। आप यहीं ठहरो हम इन साहब को ज्वालामुखी का टिकट दिलवाय देते हैं।" हीरा मुमुक्षुराम को टिकिट घर की ओर ले गया।

शीघ्र ही वे लोग बैजनाथ पपरौला वाली गाड़ी में सवार हो गए। मुमुक्षुराम ने साधु और हीरा को भजिया पुरी का नाश्ता कराया और चाय पिलाई तो वे उनके मित्र हो गए।

हीरा मेरठ के पास के एक गाँव का लड़का था। उसे घूमने फिरने का बड़ा शौक था। ज्वालामुखी तो वह कई बार हो गया था। साधु से वह बड़ा प्रभावित था और अपने खर्चे पर उसे ज्वालामुखी ले जा रहा था।

गाड़ी चली जा रही थी। साधु अपनी धुन में बैठा खिड़की से बाहर झाँक रहा था और हीरा कहे जा रहा था –"बाबूजी महात्मा जी को चौंसठ जोगनियाँ सिद्ध हैं। वे तीनों कालों की बातें जानते हैं। हाथ देखकर सभी बातें सही सही बतलाते हैं।"

मुमुक्षुराम ने कहा –"तब तो महात्मा जी हमारे बारे में भी कुछ बतलाएँगे।"

"जरूर।" हीरा ने खुश होकर मुमुक्षुराम का हाथ साधु के आगे करते हुए कहा – "बाबा जरा इनका हाथ तो देख दो।"

"हमें हाथ - वाथ देखना नहीं आता।" – साधु ने लापरवाही से कहा।

"कृपा करो गुरु! मैं दिखलाने का वायदा कर चुका

हूँ।" होरा ने अपनो मजबूरी बतलाई तो साधु ने मुमुक्षु का हाथ अपने हाथ में ले लिया। बड़े घ्यान से उलट-पलट कर, दबाकर देखा फिर बोला – "तुम साधारण आदमो नहीं हो – हो नहीं मकते।"

"क्या मतलब?" – हीरा ने चौंक कर पूछा।

"यहो कि लाखों रुपये की दौलत के मालिक, धनवान, भाग्यवान, दयावान होना चाहिए इसे।"

मुमुक्षु भी आश्चर्य से साधु की फीको और निस्तेज आँखों में देखने लगे। उन्होंने सहमा कहा – "पर मैं सुखो नहीं हो सका।"

"ऐं।" – साधु ने आश्चर्य से फिर हाथ देखा, "इतनी धन-सम्पदा और ऐश्वर्य वाला हाथ सुखी नहीं रह सका! ताज्जुब! हो नहीं सकता…………" साधु काफी देर तक हाथ देखता रहा फिर सहसा बोला – "समझा! तुम्हें सन्तान दुख तो नहीं?"

"आपको कैसा लगता है?" – मुमुक्षु ने पूछा।

साधु ने गौर से हाथ देखा और फिर एक दम उसे झटकारता हुआ बोला – "मैं तुम्हारा हाथ नहीं देखता।"

"क्यों क्या हुआ?" – मुमुक्षुराम को आश्चर्य हुआ

"घोर अपमान! तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो। शक करने वालों से मैं दूर रहता हूँ।" – साधु भड़भड़ा गया।

"पर पर मैंने अभी क्या कहा ?"

"तुमने पूछा नहीं कि मुझे कैसा लगता है ? तुम्हें लगा मैं झूठा ज्योतिष का स्वांग रच रहा हूँ। जैसे मैं नहीं जान सकता कि तुम्हारे हाथ में राजभोग है सो अनाप-शनाप दौलत मिलेगी पर उसे भोगने वाली सन्तान का योग तुम्हारे हाथ में नहीं। सन्तान हुई तो वह भी कन्या होगी ! बोलो मैं गलत कहता हूँ ?"--साधु ने तुनक कर कहा – "हीरा चिलम भरो। हम दम लगाएगें।"

हीरा चिलम भरने लगा।

"क्षमः करना साधु महराज, मेरे मन में आपके प्रति कोई गलत भावना न थी।"– मुमुक्षुराम ने नम्रता से कहा और एक दस रुपये का नोट निकाल कर साधु को भेंट में देना चाहा।

साधु ने रुखाई से कहा – "हम तुम्हारा पैसा नहीं लेंगे।"

"क्यों ?" – मुमुक्षु ने नम्रता से पूछा – "क्या आप अब भी नाराज हैं ?"

"हम विद्या का धंधा नहीं करते।" – साधु ने घुड़क कर कहा – "और न ही हम भिखारी हैं।"

"न दीजिए।" – हीरा ने कहा – "अब जब गुरु

महाराज ने न बोल दिया है तो वे न लेगें। वे अपने मन के राजा हैं।"

चिलम तैयार होने पर साधु ने दम लगाना शुरू किया। मुमुक्षु समझ गए कि साधु को हस्तरेखा विज्ञान का अच्छा ज्ञान है और इसी के सहारे यह लोगों पर अपना प्रभाव जमाता है। पर बड़ा ही स्वाभिमानी है। नशे-पत्ते के सहारे अपने आप में मस्त रहता है। अतः उन्होंने उससे अब अधिक चर्चा करना ठीक न समझा। ज्वाला-मुखी स्टेशन आ गया था, वहाँ से देवी के मन्दिर के लिए बस से जाना पड़ता था। वे लोग गाड़ी से उतर गए।

३८

सूर्य की पीत किरणों से ज्वालामुखी देवी के मन्दिर का स्वर्ण मण्डित शिखर जगमगा रहा था। यात्रियों की भारी चहल - पहल थी। मन्दिर के बाहर बड़ा मेला लगा हुआ था। बस से उतर कर मुमुक्षुराम दर्शनों के लिए गए। ज्वालामुखी देवी का यह मन्दिर ५१ शक्तिपीठों में से एक है, यहाँ सती की जिव्हा गिरी थी। मन्दिर में प्रमुख स्थान पर भूमि से ज्वाला निकल रही थी, वहीं भक्तगण उस ज्वालारूप ज्वालामुखी देवी के दर्शन करके अपने को धन्य मानते हैं। मन्दिर के चारों कोनों में भी ऐसी ही चमत्कारिक ज्वालाएँ निकल रही थीं। मन्दिर में दुर्गा सप्तसती का पाठ गूँज रहा था।

दर्शनार्थियों की अपार भीड़ के कारण दो दो की पंक्तियों में ही दर्शनार्थियों को मन्दिर में जाने दिया जाता था। काफी देर पंक्ति में खड़े - खड़े प्रतीक्षा करने के पश्चात ही मुमुक्षुराम को मन्दिर में घुसने का अवसर मिला। देवी के सामने पहुँच कर वे श्रद्धा से नत होगए। उनके मन में यह श्रद्धा अनायास ही प्रकटी थी। श्रद्धा-विहीन व्यक्ति के लिए ये ज्वालायें भले ही ज्वालामुखी

पर्वत पर निकलती ज्वालाओं के अतिरिक्त कुछ न हों पर श्रद्धालु व्यक्ति के लिए तो वे दैविक शक्ति की प्रतीक रूप हैं। प्रकृति को सत्ता उसके असीम विचित्र रहस्यों में अन्ततः ईश्वर की ही अद्‌भुत सत्ता तो फैली है। भगवान को इस अद्‌भुत सत्ता को ही तो श्रद्धालु भक्त गण नमस्कार करते है। श्रद्धा की इस परम पावन भावना को एक कवि ने अपनी सुन्दर भाषा में इस प्रकार बांधा है :-

वह कौन सृष्टि में जिसने अंकुर बोया,
शोलों को शीतलता से धोया।
थी खली किसे इस धरती की नीरवता,
पाषाणों मे बन्दी भू की चेतनता।
जड को अवचेतन, अवचेतन को चेतन,
चेतन को मन, मन को दे शाश्वत जीवन।
किसने धरती की मांग भरी फूलो से,
किसने जीवन सागर बाँधा दो कूलों से।
उस महा शक्ति को है मेरा अभिनन्दन।
है शब्द नही कर पाते उसका पूजन।
भटका करता है मन पाने को दर्शन।

और यह दर्शन इन अद्‌भुत दृश्यो में उस महाशक्ति की सत्ता के प्रतीक रूप दिखलाई दे जाता है। श्रद्धालु

भक्त इस दर्शन से धन्य हो जाते हैं। मुमुक्षुराम ने श्रद्धा से भगवती ज्वाला के सन्मुख मस्तक नवा दिया।

"जै ज्वालामुखी मैया की जै !" – के जय जयकार के साथ यात्री 'बस' मन्दिर से वापिस चल पड़ी। बस मे पीछे के भाग में बैठी कुछ ग्रामीण स्त्रियों ने देवी माता के भजन गाना प्रारम्भ किए। मुमुक्षुराम आगे की सीट में बैठे हुए थे। दर्शनों से उनका मन आनन्द विभोर हो उठा था। दूसरे यात्री भी प्रसन्न थे, कुछ भजन में मग्न हो रहे थे कुछ आपसी चर्चा में तल्लीन थे। इलाका पहाड़ी था, सड़क ऊँची नीची काफी घुमावदार थी। बस काफी रफ्तार से जा रही थी। मुमुक्षुराम को सहसा लगा कि रफ्तार बहुत अधिक है और वे ड्राइवर से बस धीरे चलाने को कहें। पर वे कुछ कह न सके। पीछे स्त्रियों के संगीत का स्वर और तीव्र हो उठा था, बच्चे उल्लास से चहक रहे थे।

सामने के ढलान पर मोड़ था। काफी दूर से उतार ही उतार चला आ रहा था। सामने से एक दूसरी बस आती हुई दिखलाई दी। बस के ड्राइवर ने उस बस को रास्ता देने के लिए स्टेअरिंग घुमाया और गाड़ी का अगला पहिया सड़क के नीचे खिसक गया। ड्राइवर संभले-संभले इसके पूर्व ही बस नीचे की ओर खिसकी और खटाक से उलट गई। बस इतनी रफ्तार से आ

रही थी और नीचे ऐसा ढलान था कि एक क्षण में गेंद की तरह वह दो तीन बार लुढ़कती हुई एक चट्टान से जा टिकी ।

क्षण भर में भीषण दुर्घटना घट गई। अभी जहाँ भजन कीर्तन की ध्वनि गूँज रही थी वहीं भीषण ची-त्कार और क्रन्दन से वातावरण भर उठा । दूसरी बस भी रुक गई । उसके यात्रियों ने आकर उलटी हुई टूटी बस के यात्रियों को निकालना शुरू किया । खूनकी धाराएँ बह निकलीं । किसी का हाथ टूटा, किसी का पैर-किसी का सिर फूटा और कोई बस में ही समाप्त हो गया था ।

कोई दो तीन घंटो में जोगेन्द्र नगर सिविल हास्पिटल से एम्बूलेंस कार आ गई और घायलों की प्रारम्भिक चिकित्सा हुई । जो कम घायल थे, उन्हें मरहम पट्टी कर दूसरी बस से विदा कर दिया गया और जो अधिक घायल थे उन्हें गाड़ी में जोगेन्द्र नगर सिविल हास्पिटल चिकित्सा हेतु ले जाया गया ।

३८

मुमुक्षुराम को जब चेत आया तो उन्हें समझ में नहीं आया कि वे कहां हैं ? एक विचित्र सी अचेतन अवस्था का उन्हें अनुभव हुआ, कानों में हलकी सी कराहने की ध्वनियां सुनाई दीं। अधखुली आंखों से उन्होंने एक अस्पष्ट से चेहरे को देखा जो उन्हें पास स देख रहा था। उस चेहरे पर असीम करुणा थी, प्यार और मधुरिमा थी .. ... किसका चेहरा था यह ? ...... उन्होंने सोचने की कोशिश की, पर वे फिर अचेतन अवस्था में डूब गए।

जब फिर उन्हें होश आया तो उन्हें लगा रात है, चारों ओर हलका प्रकाश है। इस बार उन्हें कुछ अधिक चेतना का अनुभव हुआ। उन्हें वह चेहरा याद आया गोल, सुन्दर, करुणा से भरा प्यारा चेहरा, ... फिर वे सोचने लगे आखिर वे हैं कहां ? और तब एक एक कर उन्हें याद आने लगा; ज्वालामुखी का मेला, बस की तेज रफ्तार, एक धमाका और . उनका सारा शरीर सिहर उठा, तभी अचानक उन्हें अपने सारे शरीर में; अंग अंग में पीड़ा का अनुभव हुआ और उनके मुख से एक वेदना भरी कराहट निकल पड़ी ...... तभी वह

करुणापूर्ण चेहरा फिर सामने आया, उसने उन्हें छुआ, उनकी नब्ज देखी फिर मुस्कुराते हुए एक दवा उनके हलक के नीचे उतार दी। मुमुक्षुराम को बड़ी सांत्वना मिली, उन्होंने आंखें बन्द करलीं।

दूसरे दिन उन्हें पूर्ण चेतना आई। उन्हें ज्ञात हो गया कि मोटर एक्सीडेन्ट में उन्हें भारी चोटें आई हैं। सिर, हाथ, पैर, कमर सभी शरीर घायल हो गया है। सिर में भारी घाव हो गया था, अस्पताल तक लाते लाते इतना रक्त बहा था कि सारे शरीर में अशक्तता आ गई थी। यद्यपि जोगेन्द्र नगर के छोटे हास्पिटल में उतनी अधिक चिकित्सा-सुविधाएँ न थीं फिर भी वहाँ के डाक्टर देवेन्द्र ने विशेष साहस और धैर्य के साथ एक्सीडेन्ट के घायलों की चिकित्सा की थी। दुर्घटना के शिकार सभी घायलों में मुमुक्षुराम की अवस्था ही सबसे अधिक चिन्ता-जनक थी। उन्हें रक्त तथा आक्सीजन देकर ही जीवित रखा गया था। तीन दिन अचेत रहने के बाद उन्हें होश आया तो डाक्टर बहुत प्रसन्न हुआ। मुमुक्षुराम से हँसकर उसने पूछा -अब कैसे हो ?"

मुमुक्षुराम बोल नहीं सकते थे। उन्होंने आँखो ही आँखों में अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

दिन प्रतिदिन मुमुक्षुराम की अवस्था सुधरती गई।

हाथ पैरों और दूसरे अंगों की चोटें जो अपेक्षाकृत कम गहरी थीं आठ–दस दिन में ही ठीक हो गईं पर सिर का घाव बहुत भारी था उसे पुग्ने में काफी समय लगने वाला था। कमजोरी भी बहुत आ गई थी। डाक्टर ने पूछा कि अगर वे जल्दी घर जाना चाहें तो उन्हें जाने दिया जा सकता है। मुमुक्षुराम ने अनिच्छा जाहिर की, किसी रिश्तेदार को भी उन्होंने सूचना देने की बात टाल दो। अन्तत: डाक्टर देवेन्द्र ने उन्हें अंच्छे होनं तक अस्पताल में रहने को ही अनुमति दे दो।

जोगेन्द्र नगर का अस्पताल छोटा सा था। कठिनाई से वहाँ आठ–दस मरीज इनडोर रखे जा सकते थे। इसीलिए शीघ्र ही डाक्टर नं अपने यहाँ के दुर्घटना के अतिरिक्त मरोजों को कांगड़ा के बड़े अस्पताल में भिजवा दिया। केवल मुमुक्षु ही वहाँ रह गए। अन्य रोगों के लग-भग सात आठ मरीज वहाँ और थे। अपने उदार स्वभाव और धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वे शीघ्र ही वहाँ सभी के प्रिय बन गए।

मुमुक्षु के पलंग के पास जो रोगी था, उसके पेट में ट्यूमर हो गया था। वह जब तब मुमुक्षुराम को अपनी करुणा कथा सुनाता रहता था। कभो वह बहुत सुखो था। उसका अपना छोटा सा परिवार था। पत्नी थी, एक

बेटा था एक बेटी थी, थोड़ी सी जमीन-जायदाद थी। दुर्भाग्य आया तो बेटे को साँप ने डस लिया। उसके मरने के गम का पत्नी को ऐसा धक्का लगा कि कुछ दिनों में वह भी चल बसी। आफत का मारा बेचारा अपने जीवन से निराश हो गया, किसी तरह बच्ची की सालसंभाल करने लगा, पर भाग्य तो बिगड़ा था। जाने कब से उसे इस घातक बीमारी ने घेर रखा था। उधर गफलत हुई तो रिश्तेदारों ने धीरे धीरे सारी जमीन-जायदाद दबाली, इधर बीमारी ने उसे अस्पताल में ला पटका। अब उसे बचने की बिल्कुल उम्मीद न थी। बस उसे अपनी बच्ची की चिन्ता थी कि -"हा ! मेरे मरने के बाद उसका क्या होगा ?"

उसकी बच्ची छः सात वर्ष की रही होगी, नाम था कमला बड़ी प्यारी, बड़ी नटखट, बच्ची थी वह। वह वहाँ अस्पताल में पड़े सभी मरीजों के पास जाती, उनसे अपनी भोली-भाली तोतली भाषा में उनके रोग के बारे में पूछती। उन्हें अपनी बातों से हँसाती। सुबह-सुबह बाहर जाकर बगीचे से फूलों के गुच्छे तोड़ लाती और हर एक रोगी को भेंट करती। सभी उसे प्यार करते थे। ऐसा लगता था जैसे अस्पताल में मरीजों का एक परिवार हो और उस परिवार की वह इकलौती बच्ची

हो। मुमुक्षुराम को उससे बड़ी सहानुभूति हो गई थी। उन्हें लगता था जैसे वह उनकी स्वयं की बेटी हो। कमला भी उन्हें बहुत चाहती थी। वह घन्टों उनके पास बैठकर कहानी सुनाने की जिद करती रहती और मुमुक्षु उसे नाना प्रकार की धार्मिक कथाएँ सुनाया करते थे।

कमला की ही तरह मरीजों के इस परिवार का एक और अभिन्न और सर्वप्रिय सदस्य था...... वह थी सिस्टर सुप्रिया। वैसे अस्पताल में दो नर्सें थीं। एक तो थी जमनाबाई। चालीस–पैंतालीस वर्ष की अवस्था की जमनाबाई अपने कार्य में निपुण तथा स्वभाव की कोमल स्त्री थी। दूसरी सिस्टर सुप्रिया थी। उसकी अवस्था बीस–पच्चीस के मध्य होगी। कद की लम्बी, दुबली पतली, सुन्दर सी सुप्रिया के मुख पर उसकी बड़ी–बड़ी आँखों में ऐसा जाने क्या था कि उसके प्रति सहज ही करुणा जागृत होती थी। मुमुक्षुराम को जब प्रथम बार चेत आया था तो इसी करुणा से उनका परिचय हुआ था। वे सुप्रिया की सेवा और मधुर स्वभाव से बहुत प्रभावित हुए थे। सुप्रिया सहज सहानुभूति से रोगियों की सेवा करती थी। जब मन्द मन्द मुस्कुराहट होंटों पर लिए वह, आग्रह पूर्वक रोगी को दवा पिलाती तो क्षण भर के लिए रोगी अपना दर्द भूल जाता। इसीलिए सभी रोगी उसे

विशेष रूप से चाहते। कभी कभी जमनाबाई हंसी में कह भी उठतीं कि सुप्रिया तो खुद एक मोठी गोली है। मराजों को बस वही चाहिए। मैं ता कड़वी गोली हूँ, जिसे देखकर मरोज मुँह मरोड़ लेते हैं।"

सुप्रिया कमला को बहुत चाहती थी। वह जब तब अपने घर से उसके लिए कुछ न कुछ लाती रहती। काम करते करते वह उमसे बातें करती रहती। मुमुक्षु राम को सुप्रिया के प्रति एक विचित्र सी महानुभूति अनुभव होती। उन्हे उसके तरुण चेहरे पर, मुस्कुराहटों के नीचे, संघर्ष के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई देते। रह रह कर उन्हें लगता कि अवश्य ही सुप्रिया बहुत दुखी रही है। उसका जीवन बड़े कष्ट में बीता है। ज्यों ज्यों दिन निकलते जा रहे थे, उनका यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था। सुप्रिया का सारा मधुर व्यवहार, हँसना, बोलना जैसे एक आवरण मात्र था जैसे अन्दर से उसका व्यक्तित्व एक दम खोखला सा था।

डा. देवेन्द्र एक बिचित्र व्यक्ति। अवस्था उनकी भी अधिक न थी, यही चालीस लगभग। पर वे काफी गंभीर थे। अस्पताल जैसे उनके लिए मन्दिर था। मुमुक्षुराम न जीवन में शायद ही किसी डाक्टर को अपने मरीजों में इस प्रकार व्यक्ति गत रुचि लेते देखा हो। डाक्टर देवेन्द्र सुप्रिया से बहुत प्रसन्न रहते थे। शायद वे उसे बहुत चाहते थे, पर सुप्रिया उनकी उपस्थिति में कुछ घबराई सी रहती थी, जैसे डाक्टर की सहानुभूति और स्नेह उसे असह्य हो रहा हो।

४०

उस दिन सुप्रिया की रात की ड्यूटी थी। कमला के पिता के पेट में उस दिन बहुत दर्द उठा। वह दर्द से तड़प रहा था। डाक्टर ने उसे एक विशेष दवा तीन तीन घंटे से देने के लिए कहा और इन्जेक्शन लगाकर चला वह गया। सुप्रिया ने उसे प्रथम दवा दी तब उसका दर्द हलका हो चला था। सुप्रिया वहीं उसके पलंग के पास कुर्सी बिछा कर बैठ गई। कमला को मुमुक्षुराम ने अपने पास सुला लिया था। तीन घंटे बाद जब सुप्रिया ने मरीज को दवा पिलाना चाही तो देखा उसे नींद आ गई थी। वह सोचने लगी कि दवा दे या न दे। मुमुक्षुराम जाग रहे थे, उन्होंने कहा—"रहने दीजिए ! उसे नींद से जगाना ठीक नहीं। कष्ट से थोड़ी मुक्ति मिली है तो थोड़ा सा सो लेने दीजिए।"—सुप्रिया ने मरीज को नहीं जगाया। सुबह होने पर जमनाबाई को काम संभलाकर सुप्रिया चली गई।

जब डाक्टर आ गया तो उसने मरीज से पूछा कि उसे कब आराम पड़ा। कितनी खुराक दवाएँ उसे दी

गई। मरीज ने बतलाया कि उसे जल्दी ही आराम पड़ गया था और केवल एक खुराक दवा दो गई। इस पर डाक्टर बहुत नाराज हो गया। उसने उसी समय सुप्रिया को घर से बुला भेजा। जब सुप्रिया आई मुमुक्षु बाहर बरामदे में बैठे थे। उनके पास ही कमला खेल रही थी। घबराई सी सुप्रिया जल्दी - जल्दी डाक्टर के कमरे में चली गई। अन्दर से डाक्टर की डाँट - फटकार की आवाजें सुनाई दी। वह कह रहा था—"खूब काम करती हो तुम! मैंने तीन - तीन घटे से दवा देने को कहा था और तुम सो गई। तुमने मरीज को केवल एक बार दवा पिलाई। वह सीरियस केन्सर का केम है कहीं कुछ हो जाता तो आज डाक्टर देवेन्द्र कही का न रहता।"

मुमुक्षु बरामदे में बैठे सुन रहे थे। सुप्रिया चुप थी। डाक्टर भी कुछ देर चुप रहा फिर उसने भर्राए हुए स्वर में कहा – "तुम · ·· तुमने आज मेरे विश्वास को तोड़ दिया सुप्रिया! ····· तुम जा सकती हो।"

सुप्रिया ने भरे हुए गले से कहा – "डाक्टर रात को जब मरीज को मैं दूसरी खुराक देने गई, उसे नीद आ आगई थी। मैंने उसे जगाना ठीक नहीं समझा। वह सुबह तक आराम से सोता रहा है।"

"ओह दैट वाज दी केस!" – डाक्टर ने चौंककर

कहा – "देन सुप्रिया आय एम सारी, वेरी सारी ! एक्स-क्यूज मी।"

कोई बात नहीं डाक्टर ! गलती मेरी है। मैं सुबह आपको रिपोर्ट दिए बिना चली गई।" – सुप्रिया ने कहा, कुछ देर चुप रहकर फिर पूछा – "अब मैं जा सकती हूँ ?"

"यस प्लीज ! पर मन पर मत लाना सुप्रिया।" – डाक्टर ने सहमे हुए शब्दों में कहा।

"जी।" – सुप्रिया ने कहा और बाहर चली आई। उसके चेहरे का रंग उडा हुआ था, आँखों में आँसू भर आए थे। मुमुक्षुराम को भी इस बात का बड़ा दुख हुआ था। जब सुप्रिया उनके पास से निकली तो उन्होंने पुकारा – "करुणा।"

सुप्रिया चौंककर मुड़ी फिर उसने मुमुक्षुराम को देखकर आश्चर्य से पूछा – ',क्या आपने मुझे पुकारा ?"

"हां तुम्हीं को। बुलाया।"–मुमुक्षूराम ने सहसा कहा।

"पर मेरा नाम तो सुप्रिया है।"– नर्स ने पास आते हुए कहा। वह कमला के सिर पर हाथ फेरने लगी।

"ओह !" – मुमुक्षूराम को अपनी भूल मालूम हुई, बोले – "मेरे से गल्ती हुई सुप्रिया जी। जाने क्यों

जब भी आपको देखता हूँ, मेरा मन करुणा से भर उठता है, शायद इसीलिए अनायास ही मैं आपको करुणा नाम से पुकार उठा। मुझे दुःख है कि आज आपको मेरे कारण डाक्टर साहब की फटकार सुननी पड़ी। मैंने ही आपको कमला के पिता को जगाने नही दिया।"

"नहीं मुमुक्षु जी, आपने ठीक ही कहा था तभी तो मैंने आपकी बात मानी।" – सुप्रिया ने मधुरता से कहा।

"फिर भी मुझे माफ करना! अगर जल्दी में न हो तो थोड़ा बैठो।" – मुमुक्षुराम ने कहा।

सुप्रिया वहीं बैंठ गई फिर हँसकर बोली – "मुमुक्षु जी आप बड़े विचित्र आदमी हैं। आप इतना अधिक घायल हुए, आपने इतनी तकलीफें उठाई पर आपने अपने किसी सगे-सम्बन्धी को खबर नहीं दी। क्या सचमुच आपके कोई नहीं है?"

"हैं"। सारा परिवार है! पत्नी है, बहिन है, तुम्हारी आयु की एक बच्ची है; पर तुम्हीं कहो कि अपने दुःख से उन्हें दुखी करना क्या ठीक था? वे यहाँ आकर मेरा दुख तो कम नहीं कर सकते थे न! और सुनों जब मैं घर-बार छोड़कर चला था न तो यह निश्चय करके चला था कि उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रक्खूंगा।"

"ऐसा क्यों भला ? दुनिया के और भी लोग तीर्थ-यात्रा के लिए नहीं निकलते हैं ?

मैं क्यों निकला हूँ यह सुनोगी तो मुझे पागल कहोगी।"

"बतलाइए तो सही।"

मुमुक्षु ने एक दीर्घ निःश्वास फेंक कर संक्षेप में अपनी दुख कथा सुनाई फिर कहा "मैं संसार में सुख की खोज में निकला हूँ, बेटी।"

"पर संसार में कौन सुखी होगा ?" – सुप्रिया ने एक निःश्वास छोड़ा – "सच मुमुक्षु जी, आप बम्बई के इतने बडे व्यवसायी हैं, फ़िर भी इतनी अधिक धार्मिक वृत्ति और सात्विक विचारों के हैं, मुझे इस पर विश्वास नहीं होता।"

"क्यों ?" – मुमुक्षु ने आश्चर्य से पूछा।

"मैंने बम्बई देखी है, वहाँ के लोग देखे हैं।" सुप्रिया के मुख पर घृणा उभर आई।

'अच्छा तो क्या आपको वहाँ कुछ विशेष अनुभव हुआ ?" – "मुमुक्षुने पूछा – शायद बहुत कटु अनुभव होगा आपका ?"

"ऐसा अनुभव कि बम्बई का नाम सुनते ही मुझे नरक की याद आ जाती है" – सुप्रिया ने घृणा से कहा– "जिस तरह पशु वध शाला में जीवित पशु मार डाले जाते हैं, उसी प्रकार बम्बई जैसी महानगरों में मानवता का

वध होता है। आश्चर्य है कि आप यह नहीं जानते। वहाँ आदमो की ईमानदारी, इन्सानियत, भाईचारा सब दिखावटो बातें हैं। वहाँ मनुष्य की जैसे कोई कीमत ही नहीं वे पशु की तरह जीवन बिताते हैं। ऐसे पशु जो अपने जरा से आराम और लाभ के लिए एक दूसरे की जान तक ले सकते हैं। वहाँ आदमी भूख प्यास से फुट-पाथ पर मर जाएगा, पर कोई उसे पूछने वाला नहीं जैसे वह किसी जंगल में हो। मरने पर उसकी लाश दिखला - दिखलाकर क्रिया कर्म के नाम पर पसा जमा करने वाले इन्सानी गिद्ध जरूर दिखलाई दे जाएगें। एक्सीडेन्ट होगा तो मरे कटे इन्सानों के शरीर पर से रुपये–घड़ी–पैसे आदि लूटने के लिए भूख - नंगे इन्सान भेड़ियों की तरह कूद पड़ेगें। मैंने राक्षसों की नगरी के बहुत से वर्णन सुने थे जिन पर विश्वास नहीं होता था पर बम्बई में मुझे वही सब चरित्र प्रत्यक्ष देखने को मिले। वहाँ मनुष्य - मनुष्य को खा रहा है, वहाँ का भगवान बस पैसा है, पैसे के लिए वहाँ कुछ भी हो सकता है। चोरी, डकैतो, खून तो मामूली बातें हैं। रोज हजारों पशुओं को मारकर खा जाने वाली इस महानगरी में इन्सान बिकता है, औरतें और बच्चियाँ गुलामों की तरह बेंची और खरीदी जाती हैं। वहाँ के खुदगर्ज लोगों ने अपने

सुख और आराम के लिए, लाखों आदमियों को गुलाम बनाकर उन्हें जानवरों से भी बदतर जीवन बिताने के लिए मजबूर कर दिया है। समुद्र किनारे की जितनी खुली और ताजगी वाली जमीन है उस पर उन्होंने अपने महल खड़े किए हैं और गरीब गुलामों के लिए गंदी दलदल वाली बस्तियाँ हैं, जहाँ समुद्र किनारे बस कर भी वे गर्मी से सड़ते रहते हैं। उफ! एक तरफ सड़ते हुए नरक का दृश्य है। मानवता का रौरव नरक और दूसरी ओर चाँदी सोने की चमक दमक से प्रकाशित स्वर्ग तुल्य सुखों से भरी हुई अमीरों की अलका है। इन्हीं रईसों ने अपनी चमक-दमक और कानूनी व्यवस्था के आवरण में महानगरी के उन कुरूप चेहरों को छिपा रखा है। कभी देखा है आपने वह चेहरा ?"

"नहीं।" – मुमुक्षुराम ने संवेदना से कहा – "दूर से भले हो मैंने उन कुरूपताओं को देखा हो पर निकट से मुझे उनका अनुभव नहीं। भला बतलाइए तो कि आपको यह सब देखने और अनुभव करने का अवसर कब और कैसे मिला।"

"बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण कहानी है" – सुप्रिया ने दुखी स्वर में कहा – "अच्छा है आप न सुनें।"

"नहीं बिटया ! मुझे सुनाओ। मैं दुनिया को उसके

सही रूप में जानना चाहता हूँ।" – मुमुक्षुराम ने आतुरता से पूछा।

"काठगोदाम के एक साधारण परिवार में मेरा जन्म हुआ। पिता मेरे क्लर्क थे। तब मेरी अवस्था लगभग चौदह - पन्द्रह साल की रही होगी पर पहाड़ी प्रदेश होने के कारण मैं अच्छी भरी - पूरी दिखती थी मेरा वास्तविक नाम करुणा हो है। मैं स्कूल पढ़ने जाती थी। रास्ते में मोटर स्टैण्ड पड़ता था। वहाँ एक बस कन्डक्टर, जो लड़का सा ही था, बड़ा चलता पुर्जा था। वह आते जाते मुझे छेड़ता, मेरा पीछा करता। नई-नई उमर थी, मैं कुछ समझती न थी, उसकी ओर आकर्षित हो गई। वह मुझे अक्सर अपने साथ बस पर चढ़ा लेता और स्कूल पर उतार देता। एक दिन वह मुझे शहर के बाहर खेतों पर ले गया और वहाँ तरह तरह की कसमें खाकर प्यार जताने लगा। मैंने उसके प्यार को स्वीकार कर लिया। अब हमारा साथ इतना बढ़ा कि लोगों में चर्चा होने लगी। पिता ने सुना तो काफी मारा पर मैं तो प्रेम दिवानी थी, छुप - छुप कर उससे मिलने लगी। एक दिन उसने मुझसे बम्बई भाग चलने का प्रस्ताव किया। सिनेमा के किसी असिस्टेन्ट डायरेक्टर से उसकी दोस्ती होगई थी, वह बम्बई में ही रहता था।

वह मुझे सिनेमा में काम दिला देगा। मैं सहमत हो गई और एक दिन चुपचाप हम लोग बम्बई के लिए भाग गए।"

"मुझे कुछ भी पता न था। बम्बई शहर का बस नाम सुन रखा था। सिनेमा में एक्ट्रेसों को काम करते देखा था। मुझे मन ही मन भय लग रहा था कि मैं सिनेमा में कैसे काम कर सकूँगी। पर मेरा प्रेमी रंगीला मुझे धीरज बँधा रहा था, कहता था कि उसका दोस्त मुझे एक दिन में सब सिखा देगा। शकल–सूरत तो मेरी राजश्री, साधना से भी बढ़िया थी। मैं भी किसी तरह मन को मना रही थी। बम्बई आई तो आँखे चौंधिया गईं। सिर फिर गया। रंगीला मुझे उस असिस्टेंट डायरेक्टर के पास ले गया। उसे देखा तो वह बड़ा मामूली सा बदसूरत लड़का था। बात-बात में गाली बकना और भद्दे मजाक करने की उसे आदत थी। उसने काम दिलाने की हामी भरी। कहा –"समय लगेगा। रोज काम नहीं निकला करता। ठहरने का कोई इन्तजाम न था। कुछ दिनों तक हम स्टेशन पर सोते रहे, वहाँ पुलिस रोज तंग करती। आखिर रंगीले की पहिचान का और हमारे गाँव काठगोदाम का एक आदमी भाग्य से वहाँ मिल गया।

बड़ी आरजू-मिन्नत के बाद वह हमें अपने यहाँ ठहराने के लिए राजी हो गया। वह कुर्ला झोपडा पट्टी में रहता था……ओह कितनी गंदगी थी वहाँ। बदबू के मारे दिन रात सिर फटा जाता था। झोपड़े में सीलन और मच्छर दम न लेने देते……पर सिर छिपाने को जगह मिल गई थी यही सन्तोष था।"

"काम दिलाने के लिए रगीला मुझे रोज अजीब-अजीब लोगों को दिखलाता। वे मुझे ऐसे देखते जैसे भूखे भेडिए नए ताजे मेमने को देखते हैं। एक दिन रगोला मुझे फिर उसी फटोचर असिस्टेन्ट डायरेक्टर के पास ले गया और बोला-कल तुम्हें ये एक्टिंग का काम दिलाएँगे, आज ये तुम्हारो ट्रायल लेना चाहते हैं। फिर वे दोनों मुझे शहर के बाहर समुद्र किनारे ले गए। वहाँ उन दोनों ने खूब शराब पी। मैं घबरा रही थो, और वे तरह-तरह की बकवास करने लगे। मैंने भागना चाहा, पर दो आदमियों से बचकर कहाँ जाती और जब मेरा रक्षक ही भक्षक बन गया था तो क्या हो सकता था। मैंने रंगीले की इच्छा पर समर्पण कर दिया। उन दोनों भेड़ियों ने जी भर कर मुझे नोंचा।

"दूसरे दिन एक फिल्म की शूटिंग में मुझे काम मिल गया। कुछ औरतें नाच रही थीं। उनके साथ उलटे-

सीधे हाथ पैर मुझे हिलाने थे, पर मुझे कुछ भी अच्छा न लगा। उस दिन के बाद से रंगीले से भी मुझे नफरत हो गई, पर उसे इसकी चिन्ता न थी। वह अब मुझे लोगों के साथ अकेला भेजने लगा जो मेरी इज्जत के भूखे होते। मुझे इनका कहना मानना पड़ता और मुझे अपने आप से शर्म महसूस होने लगी। यहाँ तक कि मुझे अपनी जिन्दगी से नफ़रत हो गई। मैं एक भले घर की लड़की थी, अपनी जरा सी गलती से कहाँ से कहाँ आ गई। मैंने बचपन से बड़ी ऊँची-ऊँची भावनाएँ बनाई थीं। अपने पति के साथ चाहे वह गरीब हो, एक स्वर्ग सा परिवार बनाने के सपने देखे थे, पर रंगीले ने जैसे सब कुछ नष्ट कर डाला था। मुझे रंगीले से इतनी घृणा हो गई थी कि मैं उससे अपना पीछा छुड़ाने का अवसर देखने लगी।"

"एक बहुत बड़ी हीरोइन थीं शेम्पेन कुमारी। वे अक्सर मुझे शूटिंगों में मिलतीं, उनसे मेरी मुलाकात हो गई थी और वे मुझे बहुत चाहने लगी थीं। एक दिन मैंने उन्हें अपनी हालत कह सुनाई तो उन्होंने कहा कि वह मुझे अपने घर में काम और रहने की जगह दे सकती हैं। मैं तो यह चाहती ही थी। मैंने रंगीले को इसकी कानोंकान खबर नहीं होने दी और एक दिन चुपचाप शेम्पेन कुमारी के घर जा पहुँची। उन्होंने मुझे रख लिया। दो-तीन

चुकी है उसे मरे हुए मुर्दे की तरह दफना दी जाती है। सुप्रिया बाबूजी ने सच ही कहा कि तुमने मुझे पहिचाना नहीं। तुम कल क्या थीं इससे मुझे मतलब नहीं और आज जो हो उसे मैं जानता हूँ। मैं यही जानना चाहता था जो आज मुझे मालुम भी हो गया कि तुम मुझे बहुत प्यार करती हो। फिर तुम्हें मुझसे विवाह करने से क्यों इन्कार है ? बाबू जी पूछिए न इनसे !"

"हाँ बेटी, डाक्टर साहब ठीक ही कह रहे हैं ! व्यर्थ की भावनाओं में बह कर, जान बूझ कर अपने और दूसरे की जिन्दगी को दुखी बनाना ठीक नहीं"– मुमुक्षु राम ने समझाते हुए कहा।

"क्या यह जरा सी बात है" सुप्रिया ने अपना मुँह छिपा कर सिसकते हुए कहा –"बाबू जी ! क्या आपको मैंने नहीं बतलाया यह अपवित्र देह क्या अब डाक्टर जैसे……

"अरे मूर्ख हो तुम ! – मुमुक्षुराम ने भावावेश में कहा –"देह भला कभी अपवित्र होती है। सच पूछो तो पवित्रता अपवित्रता मन से होती है। यदि मन निर्मल है तो सब पवित्र है। तुम्हारा मन पवित्र था इसीलिए तो आज तुम उस नरक में से निकल कर यहाँ आई हो। आज तुम्हारी सेवा भावना ने तुम्हें कितना ऊँचा उठाया है। कितने लोग तुम्हें देवी की तरह मानते हैं, और यदि

तुम्हारे मन में अपवित्रता होती तो अभी उस नरक में कहीं सड़तो होतीं। मैं कहता हूँ तुम परम पवित्र हो इसलिए डाक्टर की बात को अस्वीकार न करो। चलो मै तुम्हारा धर्म पिता बनता हूँ, अपने हाथ से तुम्हारा कन्यादान डाक्टर के साथ करूँगा। बोलो मेरी बेटी हाँ कह दो।"

"सुप्रिया को चुपचाप सिसकते देखकर डाक्टर ने कहा –"अब न न कहना सुप्रिया, नहीं तो मैं कहीं का न रहूँगा।"

"आप जैसा चाहें।" भरे हुए कंठ से सुप्रिया ने कहा और वह कमला को गोद में उठाकर वहाँ से भाग गई।

"पगली।"– स्नेह से मुमुक्षु ने कहा और डाक्टर के हाथ अपने हाथों में सहलाते हुए वे बोले –"धन्यवाद है डाक्टर कि तुमने मन के सच्चे मोती को पहचाना और उसकी कीमत की। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।"

"धन्यवाद के पात्र तो आप हैं बाबू जी जो आपने मन के बाँध तुड़वा दिए"– डाक्टर ने नम्रता से कहा– "नहीं तो मैं सुप्रिया के मन को कभी न जान पाता।"

"वह बतलाती भी कैसे डाक्टर! इस मायावी संसार ने उसे बहुत छला है।"– मुमुक्षुराम ने भरी हुई आँखों से कहा।

४१

बड़े सादे ढंग से डा० देवेन्द्र और सुप्रिया का विवाह संपन्न हुआ। छोटे से मण्डप में वैदिक विधि से मुमुक्षुराम ने कन्यादान किया और शाम को आप्त जनों के लिए एक छोटो सो पार्टी दी गई। सुप्रिया ने उसी दिन पार्टी में कमला को अपनी बच्ची के रूप में गोद लेने को घोषणा कर दो। कमला के पिता को जंसे जीते जो स्वर्ग मिलगया। इस शुभ विवाह से सभो को सुख मिला क्योंकि डाक्टर देवेन्द्र और सुप्रिया दोनों हो सभी को प्रिय थे।

दूसरे दिन खद्दर वस्त्र धारी एक अधेड़ से व्यक्ति डाक्टर देवेन्द्र के बंगले पर आए। डा० देवेन्द्र ने मुमुक्षु-राम से उनका परिचय करवाया। उनका नाम आदर्श था, वे पड़ोस के एक गाँव मंडो के निवासो थे। बाल्यकाल से हो समाज सेवा में उनकी रुचि रही थी और अब एक जन प्रियसार्वजनिक कार्य कर्ता थे। जिले में ऐसा कोई सार्वजनिक काम नहीं होता था जो उनको सेवा–सहयोग के बिना संपन्न होता हो। वे अभी अभी कांगड़ा प्रवास से लौटे थे। डाक्टर और नर्स के विवाह की सूचना पाकर बधाई देने आए थे। नवदम्पति के लिए वे एक आम के

वृक्ष की पौध भेंट स्वरूप देने के लिए लाए थे। उसे देते हुए उन्होंने डाक्टर से कहा–"यह मेरी भेंट। आप दोनों पति–पत्नी मेरे सामने इसे बंगले के बगीचे में रोप दें।"

डाक्टर ने मुस्कुराकर सुप्रिया को बुलाया और बगीचे में जाकर अपने हाथ से गड्ढा खोदा फिर सुप्रिया ने उसमें पौधा रोप दिया। दोनों पति–पत्नी ने उस पर मिट्टी पूर दो, और पानी से सींच दिया। आदर्श जी ने ताली बजाते हुए कहा–"जिस प्रकार बड़ा होकर यह पौधा, वृक्ष बनेगा, फलेगा उसी प्रकार तुम्हारा दाम्पत्य जोवन भी दिनों दिन फले फूले।"

"वाह धन्य है आदर्श जी।"–मुमुक्षुराम ने भी आनन्द से तालियां बजाते हुए कहा।

आग्रह करने पर आदर्श जी खाने पर रुक गए। बातों बातों में उन्होंने कहा–"डाक्टर साहव! आपकी शादी पर भी बधाई देने तो आया हूँ पर आपसे एक मांग भी करूँगा।"

"कहिए कहिए मैं आपके किस काम आ सकता हूँ।"– डाक्टर देवेन्द्र ने पूछा।

"हम लोग बाण गंगा पर एक छोटा बाँध बनाकर उसकी एक नहर जाहू तक ला रहे हैं। काफी काम हो चुका है, बाँध करीब करीब बन चुका है। उसके लिए

हमने बहुत सा धन चन्दा करके इकट्ठा किया है, कुछ सरकार ने भी दिया है। मैं चाहूँगा आप भी कुछ इस काम में भेंट करें।"

"हाँ हाँ प्रसन्नता से। कहिए कितने का चेक दे दूं।" डाक्टर ने सहर्ष कहा।

"यह में न कहूँगा। आपकी जैसो सामर्थ्य और श्रद्धा हो।" आदर्श ने मुस्कुरा कर कहा फिर मुमुक्षुराम की ओर देखकर बोला –"बाबूजी हमारा आपका आज पहला परिचय हुआ है, मैं चाहूँगा कि आप भी कुछ इस काम में सहयोग दें।"

"सहयोग।"– मुमुक्षुराम कुछ सोचते रहे, फिर मुस्कुरा कर उन्होंने पूछा –"क्या आप नहर का काम मजदूरों से ही करवाते हैं?"

"मजदूर!"– आदर्श जी ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा –"अजी हम स्वयं अपने मजदूर हैं। जो पैसा मिलता है उससे हम सामान खरीदते हैं और स्वयं सेवक मेहनत मजदूरी का काम करते हैं।"

"तब आप मुझे भी एक स्वयं सेवक बना लीजिए- मैं श्रमदान करूँगा।"

आदर्श कुछ कहें, इसके पूर्व डाक्टर देवेन्द्र ने चेक देते हुए कहा –"आप भले ही श्रमदान करना चाहें पर

मैं आपको इजाजत नहीं दूंगा। आप अभी बहुत कमजोर हैं। मेरी राय में आपको अभी काफी आराम को जरूरत है।"

"ऐसा न कहिए डाक्टर साहब"– मुमुक्षुराम न दुखी होकर कहा –"सेवा से बड़ा धर्म और कोई और नहीं। आदर्श जी से मुझे ईर्षा होती है जो वे दोनों हाथों से सेवा का पुण्य लूट रहे हैं। मुझे भी उसमें भागीदार बन जाने दीजिए।"

"चलिए हम दोनों को बात रख देते हैं।"– आदर्श जी ने कहा –"डाक्टर साहब आपके मरीज को बिल्कुल तकलीफ नहीं होगी और मुमुक्षु जी हम आपसे ऐसी सेवा लेंगे जिसमें आपकी सेवा वृत्ति नुष्ट हो जाएगी।"

"पर मैं तो उन्हें एक मास तक अपने यहाँ रखना चाहता हूँ, उसके बाद······"देवेन्द्र कह रहे थे कि–

मुमुक्षु बीच में बोल उठे –"यह तो हो नहीं सकता डाक्टर। आपने मेरी बेटी ब्याही है। अब यह मेरी बेटी का घर है। भला बेटी के घर मैं कैसे रह सकता हूँ। चलिए आदर्शजी आज शाम ही मैं आपके साथ चलता हूँ।"

"जाने दीजिए डाक्टर साहब"– आदर्श जी ने शीघ्रता से कहा –"मुमुक्षु जी आपके मेहमान न सही,

हमारे मेहमान सही। गाँव की खुली हवा से और किसान के घर की रूखी सूखी रोटी से इनकी तबियत जल्दी ही सुधर जाएगी।"

डाक्टर देवेन्द्र और अधिक तर्क न कर सके। सुप्रिया भी मुमुक्षु को इतने जल्दी नहीं जाने देना चाहती थी, पर उन्हें कैसे रोका जा सकता ? बड़ी अनिच्छा और भारी हृदय से उन लोगों ने मुमुक्षुराम को आदर्श के साथ जाने की सहमति दी।

४१

मंडी पहाड़ी तलहटी में बसा एक छोटा ग्राम था। साफ, सुथरा और शान्त। आदर्श जी मुमुक्षुराम को अपने साथ लिए हुए जब ग्राम के निकट पहुँचे तब गोधूली की बेला हो चुकी थी। पहाड़ों में डूबते सूरज को छबि बड़ी भली लग रही थी। चारागाहों से लौटती हुई गायों के गलों में पड़ो घंटियों और उनके रंभाने के स्वर पक्षियों के कलरव से मिलकर एक कर्ण प्रिय नैसर्गिक संगीत का सृजन कर रहे थे। प्रकृति के उस सुमधुर वातावरण में मुमुक्षुराम आनन्द विभोर हो रहे थे। चलते चलते आदर्श जी ने कहा –"यह हमारा ग्राम है, जब यहाँ बाण गंगा की नहर आ जाएगी तो हमारा ग्राम और भी फल फूल उठेगा।"

"वैसे भी आपका ग्राम बड़ा मनोहर है।"– मुमुक्षु राम के मुख से सहज ही निकल पड़ा।

थोड़ी देर में आदर्श का घर आ गया। यह चार कमरे का एक कच्चा खपरेलों वाला घर था। आदर्श की अपनी छोटी सी गृहस्थो थी, पत्नि, दो बच्चे और एक छोटी बच्ची। बड़ा लड़का वयस्क हो चुका था और

स्थानीय स्कूल में शिक्षक था। वह रात को प्रौढ़ कक्षा भी चलाता था। घर में सभी का स्वभाव मधुर था। थोड़े ही समय में मुमुक्षु को लगा जैसे वे अपने घर में अपने ही परिवार के बीच में हों ।

भोजन के पश्चात आदर्श और मुमुक्षु बाहर के बरामदे में आराम करने लगे। आदर्श के आने की सूचना गाँव में फैल गई थी सो एक एक कर लोग उनसे मिलने के लिए आने लगे। गाँव के लोग आदर्श को बहुत चाहते थे। अपनी छोटी बड़ी बातों में वे उनकी सलाह के बिना नहीं चलते थे। आदर्श ने अपनी त्याग पूर्ण और सेवा-मयी वृत्ति के कारण सब के दिलों को जीत लिया था। इतना ही नहीं, उनका ग्राम आदर्श ग्राम था। सारा का सारा गाँव एक परिवार की तरह रहता था। किसी भी ग्रामवासी पर कोई संकट आता तो सब मिलकर उसकी सहायता करते। खेती किसानी के सारे काम मिल बाँट कर निपटाते और भाइयों की तरह आपस में प्रेम रखते। न किसी में बैर भाव था न लालच की भावना और यह सब हुआ था आदर्श जी के मार्ग दर्शन और प्रेरणा के कारण ही। आदर्श सबके हितैषी थे। वे केवल अपने गाँव में ही नहीं बल्कि आस पास के सारे इलाके में जनप्रिय थे।

थोड़ी देर बाद गाँव के पुरोहित पंडित रमाशंकर

जी वहाँ आए। आदर्श जी ने उनसे मुमुक्षुजी का परिचय कराया। गाँव में और भी ब्राह्मणों के घर थे पर उनमें रमाशंकर जी का घराना काफी पुराना था। वे बहुत विद्वान और कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। इसीलिए उन्हें ग्राम का पुरोहित माना जाता था। आदर्श जी ने उनसे कहा–"पंडित जो ये हमारे ग्राम के मेहमान मुमुक्षुराम जी हैं। आए तो ये श्रमदान करने हैं पर डाक्टर ने इन्हें श्रम करने से मना किया है। फिर भी हम उनसे श्रम लेगें ही। कल हम इन्हें अपने गांव की जहाँ नहर खुद रही है वहाँ तक ले चलने का श्रम कराएगें फिर आप इन्हें आस पास के तीर्थ स्थलों में घुमाने फिराने का श्रम कराइए।"

"अवश्य! अवश्य!"–पंडित जी ने हँसकर कहा–"आखिर हमें अपने मेहमान की सेवा भी तो करनी पड़ेगी।"

तभी साधारण सी वेशभूषा में दो ग्रामीण वहाँ आए। उनके साथ एक हृष्ट पुष्ट नवयुवक भी था। वे आदर्श को प्रणाम कर वहाँ बैठ गए। आदर्श ने उनमें से एक से पूछा–"क्यों भाई श्रीराम दास क्या समाचार हैं?"

श्रीरामदास ने नम्रता से कहा–"भैया जी ये नगरौटा के निवासो नारायणदास जी हैं और ये इनके चिरंजीव जैरामदास हैं। अपनी गौरी के रिश्ते के लिए आए हैं। सो आपसे मिलाने ले आया हूँ।"

"अच्छा।"– आदर्श जी ने नारायणदास और जैरामदास को नमस्ते का उत्तर देते हुए पूछा–" कहिए नारायणदास जी आपको हमारा गांव पसन्द आया।"

"हां जी ! आपने तो इसे स्वर्ग बना रखा है।।"

"मैंने नहीं। हमारे गाँव वालों ने इसे सुन्दर बनाने की कोशिस की है। भला आपने लड़की देखी।"

"हाँ जी। बहुत सुन्दर है।"–नारायणदास ने कहा।

"और तुमने देखी बेटे ?"–प्रश्न जैरामदास से था।

लड़के ने धीरे से हाँ से सिर हिलाया और संकोच से नीचे देखने लगा।

आदर्श ने कहा–"नारायणदास जी गौरी बिटिया जितनी सुन्दर है उतनी ही सुशील भी। घर के काम में चतुर। क्या आप रिश्ता पक्का करके जा रहे हैं ?"

"हमारी तरफ से तो पक्का ही समझिए, बस श्रीरामदास जी की मंजूरी चाहिए।"–नारायणदास ने कहा।

"आपकी सहमति के बिना भला मैं कैसे स्वीकार करता।"–श्रीरामदास ने आदर्श जी से कहा–"सो आपके आने तक मैं इन्हें रोके रहा।"

"अरे भाई जी आपकी सहमति सो हमारी सहमति"– आदर्श जी ने श्रीरामदास से हँसकर कहा फिर नारायणदास से बोले–"देखो भाई जी हमारे गाँव का एक खास

रिवाज है कि एक सप्ताह भर में हम साल भर में होने वाले गाँव के सारे विवाह निपटा देते हैं। आप कितने लोग बरात में आएगें, क्या क्या खातिरदारीं चाहेंगें, सारी बातें श्रीरामदास जो को बतला दीजिए क्योंकि कल को कहीं आपने खातिरदारी या दान-दहेज के बारे में कोई झगड़ा खड़ा किया तो आपको गाँव की पंचायत में खड़ा होना पड़ेगा।

"न जी! गोपालदास जी ने मुझे सब समझा दिया है। आप चिन्ता न करें। मैं तो बस अपन लड़के के लिए आशीर्वाद चाहता हूँ।"

"मेरा आशीर्वाद है पापे। जुग जुग जिओ और हमारे समधी बनो।"—आदर्श जो ने गद् गद् होकर कहा।

दोनों ग्रामीण खुश होकर लड़के सहित चले गए तो आदर्श जो ने मुमुक्षुराम से कहा—"हमारे यहाँ के सामाजिक रीतिरिवाज कुछ इस तरह बिगड़े हैं, बाबू जो कि एक गरीब आदमी के लिए, अपने सीमित साधनों से उन्हें पूरा करना कठिन ही हो गया है। घर में बच्चों के जन्म से लेकर यज्ञोपवीत, विवाह, फिर मरने पर दाह-संस्कार के पीछे सारे क्रिया-कर्म, इन सभी मौकों पर दान दक्षिणा और सहभोजों का ऐसा क्रम होता है कि हाथ खोल कर खर्चा करना पड़ता है। एक बच्ची की शादी

आती है तो लड़की का बाप बेचारा दिवालिया हो जाता है। लड़की दिखलाने, पसन्द करवाने, वर वालों को बुलाया तो उनका आने जाने का खर्च। फिर बात पक्की हुई तो टीका–फलदान का खर्चा। फिर शादी में बरात का खर्च, बाजे–गाजे, रोशनी–सजावट, सहभोज आदि का खर्च और दहेज की रकम ऊपर से। इसमें अगर किसी गरीब की दो चार बच्चियाँ हुईं तो वह बेचारा टूट हो जाता है। कर्ज पर कर्ज करके जैसे तैसे वह शादियाँ कर पाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी सन्तान को साहूकार का कर्जदार बना जाता है। इसीलिए तो कर्ज देने वाले साहूकार और जमीदार जल्लाद कहलाते हैं। वे किसानों और गरीबों को खुले हाथों कर्जा देकर उन्हें गुलाम बना लेते हैं। अब जब जमीदारी मिट गई है और किसानों की दशा सुधारने व विकास कामों के लिए सरकार खुले हाथों सहायता और ऋण दे रही है तो ये रीतिरिवाजों की बेड़ियों में जकड़े गरीब ग्रामीण उस पैसे का उपयोग इन सामाजिक संकटों में कर डालते हैं। एक किसान शासन से पैसा उधार लेता है कुँआ बनाने के नाम पर और खर्च कर डालता है शादी–विवाह में।"

"पर शासन वाले देखते भी तो होंगे कि किसान ने

कुँआ बनाया है या नहीं ?"– मुमुक्षु ने उत्सुकता से पूछा

"कौन देखगा। सहायता ऋण देने वाला अधिकारी ऋण देने के पहले जानता है कि किसान उसका क्या उपयोग करेगा। कभी कभी तो वह स्वयं किसान को इस तरह की तरकीब सिखलाता है। जरूरत मंद किसान से इस तरह वह स्वयं अपने लिए भी कुछ कमीशन प्राप्त कर लेता है। शासन के इस ऋण से कैसे मुक्ति मिले इसको तरकोब भी वही अधिकारी बतला देता है। ऋण लेने और विवाह में खर्च कर देने के बाद किसान एक निवेदन पत्र भेजता है कि उसने कुँआ खुदवाया पर पचास फीट खोदने के बाद भी पानी नहीं निकला। जाँच करने वाले कर्मचारी जब देखने आते हैं तो उन्हें भो भेंट पूजा चढ़ाकर उस बात की सत्यता प्रमाणित करवायी जाती है। इस तरह कुँआ बनाने के नाम पर ऋण मिला, कुँआ कभी खुदा नहीं पर कागज पर खाना पूरी हुई और किसान का चौथाई ऋण माफ हो गया।"

"गजब का भ्रष्टाचार है भाई जी ! इसीलिए हमारे देश का विकास नहीं हो रहा है। आश्चर्य तो यह है कि इन भ्रष्ट अधिकारियों को देखने वाला कोई नहीं।"– मुमुक्षुराम ने कहा।

"देखने वाले देखकर भी नहीं देखते। दुख की बात

है कि हमारे जनसेवक, जब तक उन्हें कुर्सी और अधिकार नहीं मिलते तभी तक जनसेवा की बांग मारते हैं। उसके बाद तो वे अपने आपको नेता कहलाना पसन्द करते हैं। उन्हें फिर इसी बात की चिन्ता रहती है कि एक बार ऊपर उठे हैं तो फिर गिर न जाँय। गिरें भी तो जिस कष्ट और गरीबी से निकल कर आए हैं फिर उसी को न भोगना पड़े, इस भय से वे पहले अपना भला करते हैं और अपना भला जब करने निकलते हैं तो अधिकार का मद, लालच और जाने क्या क्या दुर्गुण आदि उसमें आजाते हैं। एक वाक्य में कहा जाय कि जब रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं तो फिर क्या होता है ? रक्षण और भक्षण की यह परंपरा एक चक्र की तरह शुरू हो जाती है। मनुष्य का मूल स्वभाव तो जानवर का ही है। जब मानवता का अंकुश उस पर से उठ जाता है तो उसका यह जानवर निर्द्वन्द होकर अपनी नोंच – खसोट शुरू कर देता है। इसी को भ्रष्टाचार कहते हैं और इसी के कारण हमारा देश प्रगति में पिछड़ गया है।"

"आप ठीक कहते हैं आदर्श जी ! पर इसका कोई इलाज भी है।"– मुमुक्षुराम ने पूछा।

"है क्यों नहीं ! ···इसका एक मात्र उपाय है समाज

में मनुष्यता के सद्‌गुणों का विकास करना। हमारे पूर्वजों ने युगों पूर्व इस बात को समझ लिया था। उन्होंने समाज की रचना ऐसे की थी जैसे वह एक समूची इकाई हो, एक अभंग परिवार हो। अलग अलग ग्रामों में बँटी हुई यह इकाइयाँ रीति नीति और व्यवहार में इतनी एक-रस थीं कि देश के किसी भी कोने में आदमी चला जाय उसे लगता था कि मैं अपने ही लोगों के बीच अपने ही देश में हूँ। पर वह अपनत्व की भावना आज कहाँ रही। देश को छोड़ दीजिए आज मनुष्य अपने ही गाँव में अलग अलग है। नगर में चले जाइये तो पड़ोसी भी अजनबी है। क्या हम इसे मानवीय सभ्यता कहें ?"

"पर वह बीती व्यवस्था क्या फिर से नहीं आ सकती ?"

"आ सकती है, यदि हम चाहें तो सब कुछ हो सकता है।"– आदर्श ने विश्वास से कहा –"पर इसके लिए हमें अपने व्यक्तिगत स्वार्थ त्यागने होंगे। हमें अपने संकुचित दृष्टिकोण विस्तृत करने होंगे। मैंने अपनी पैंतीस वर्ष की जनसेवा के दौरान इस प्रवृत्ति को व्यवहार की कसौटी पर कसा है और परिणाम में मुझे सफलता भी मिली है। मैंने यह प्रयोग अपने ग्राम में ही प्रारंभ किया था। सारे ग्राम के लोगों में एक परिवार

की भावना बनाने के प्रयत्नों से शुरूवात की । प्रारंभ में बड़ी कठिनाइयाँ आईं । कुछ लोग स्वभाव से ही एकांगी और स्वार्थ परायण थे । उन्होंने कदम-कदम पर बाधाएँ खड़ी कीं । पर हमारी पुरानी संस्कृति के संस्कारों ने हमारी बड़ी सहायता की । अलगाव की प्रवृत्ति और स्वार्थी तत्वों को धीरे धीरे दबा दिया गया और हमने धीरे-धीरे साथ-साथ रहकर काम करने और मिल-बाँट कर खाने की आदतों को बढ़ाया । हमने वर्ष भर के सारे उत्सव सामूहिक तौर पर मनाना प्रारंभ किए, फिर एक दूसरे के दुख-दर्दों को सामूहिक रूप में बंटाना प्रारंभ किए । हमने किसी के घर शादी हुई तो उससे भोज लेने के स्थान पर सारे गाँव से चन्दा कर उसे भोज दिया और इस तरह धीरे-धीरे हमारा गाँव सामाजिक सहयोग के सिद्धान्त को समझने लगा, उसके जीवन में वह रम गया । हमारे गाँव में आज निर्धनता के कारण कोई भूखा-नंगा नहीं है । मेहनत करके भी उसे जीवन की जरूरतों से वंचित नहीं रहना पड़ा । हमारे गाँव की पंचायत सारे गाँव को एक बड़े घर के समान देखती है । गांव के सारे बच्चे, हमारे सबके बच्चे हैं । उनके पालन पोषण की बराबर बराबर सुविधाएँ हैं । गाँव के सारे शादी-विवाह हम सामूहिक रूप से करते हैं । और आज हम बड़े गर्व से कह सकते हैं कि हम सब एक हैं ।"

मुमुक्षुराम ने गद्गद् होकर कहा –"आदर्श जी मैं मानता हूँ आपने अपने परिश्रम और लगन से सचमुच एक आदर्श कार्य कर दिखलाया है। ईश्वर जाने वह दिन कब आएगा, जब हमारे देश में यह भावना फैल जाएगी !"

"आएगा मुमुक्षु जी अवश्य आएगा।"– पंडितजी ने कहा –"मनुष्य में मानवता का जो ईश्वरीय गुण है, मनुष्य उससे अधिक दिन दूर नहीं रह सकता। हमारे देश में यदि आदर्शजी जैसे दस पाँच लोग भी हो जाएँ तो हमारे देश का उद्धार हो जाए।"

"आदर्श जी जैसा न कहिए पंडित जो, कहिए कि हमारे ग्राम जैसा भावना यदि भारत के ग्राम–ग्राम में फैल जाए तो हमारा देश फिर से जगदगुरू बन सकता है।"– आदर्श ने आत्म विश्वास के साथ कहा।

४३

प्रभात की नवकिरणें दमक उठीं थी। मन्द-मन्द शीतल पवन बह रहा था। पक्षी नीड़ों से कलरव करते हुए उड़ चले थे। चारों ओर हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। पशुओं के झुंड के झुंड चरने के लिए निकल पडे थे। बड़ा सुहावना दृश्य था। मुमुक्षुराम, आदर्श जी और पंडित रमाशंकर जी के साथ बड़े सबेरे ही निकल पड़े थे। ग्राम से काफी दूर चले आने पर उन्हें नहर पर काम करते हुए लोग दिखलाई दिए। कोई बीस पच्चीस आदमी औरतें होंगे। वे काम करते-करते किसी ग्राम गीत की धुन सामूहिक स्वर में दुहरा रहे थे और स्त्रियां मिट्टी ढो ढो कर दोनों ओर ढेर लगा रही थीं। ये श्रम-दान देने वाले स्वयं सेवक लोग थे। जहाँ जहाँ से नहर गुजरनी थी वहाँ वहाँ के आस-पास के लोग इस प्रकार समूह बनाकर बारी बारी से नहर पर काम करने आते थे। उनकी जिम्मेदारी नहर को एक निश्चित सीमा तक ले जाने की होती थी। इस प्रकार एक साथ नहर की पूरी लम्बाई पर टुकड़ों टुकड़ों में काम चल रहा था।

स्वयं सेवकों ने जब आदर्श जी को आते देखा तो

सब में आनन्द की लहर दौड़ पड़ी। आदर्श जी ने निकट पहुँचकर सब को सूचना दी कि नहर के लिए आवश्यक सीमेन्ट सरकार द्वारा मुफ्त मिलने की आज्ञा हो गई है। सभी ने प्रसन्न होकर तालियाँ बजाई। फिर आदर्श जी ने उनका परिचय मुमुक्षुराम से करवाते हुए बतलाया कि स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी वे श्रमदान करने की इच्छा से उन लोगों के मध्य आए हैं। सभी एक अनजान परदेशी की इस सेवा-भावना की प्रशंसा कर उठे। आदर्श जो ने मुमुक्षुराम से कहा- "बन्धुवर आप अपनी इच्छा पूरी कर लीजिए।"- उन्होंने एक हल्की कुदाल मुमुक्षुराम के हाथ में देते हुए कहा -"पर देखिए मुझे आपकी और डाक्टर की दोनों की बात रखनी है सो थोड़ा काम कर लीजिए फिर पंडित रमाशंकर जी आपको आस-पास का दर्शनीय क्षेत्र दिखलाने ले जाएँगे।"

मुमुक्षुराम ने सहर्ष स्वीकार किया। वे धीरे धीरे कुदाल चलाने लगे। आदर्शजी भी खुदाई काम में तल्लीन हो गए। स्वयं सेवकों की काम की फिर वही रफ्तार चल पड़ी, वही लोक धुन की पंक्ति फिर वातावरण में गूँजने लगी। मुमुक्षुराम को उस खुदाई में बड़ा आनन्द आया। वैसे जीवन में कभी उन्होंने कुदाल नहीं चलाया था, पर

आज उन्हें ऐसा लगा जैसे इस धरती और इस श्रम से उनका जनम जनम का नाता हो। वे कुदाल चलाए जा रहे थे और थकावट का नाम न था। उन्होंने अपने आस पास दृष्टि दौड़ाई, सब अपने अपने काम में लगे हुए थे कोई खाली नहीं दिखा। यह भावना थी जो काम कर रही थी। पैसे के लिए की जाने वाली मजदूरी और अपना काम समझकर अपने सन्तोष के लिए किए जाने वाले श्रम में बड़ा अन्तर होता है। इसका आज प्रत्यक्ष अनुभव मुमुक्षुराम को हुआ। शीघ्र ही उनकी स्वाँस तीव्र गति से चलने लगी, माथे पर पसीने के बिन्दु चमक उठे। तभी आदर्शजी ने उन्हें रोक दिया। वे बोले –"बस बस बन्धु ! बहुत श्रम हो गया। अब आप थोड़ा घूम फिर आइए।"

अनिच्छा से मुमुक्षुराम को रुकना पड़ा। वे पंडित जी के साथ चल पड़े। निकट ही रेवालसर तीर्थ था। चलते चलते मुमुक्षुराम ने कहा –"पंडित जी हम आदर्शजी की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। उनका त्याग और भावनाएँ बड़ी ऊँची हैं। वे सचमुच महात्मा हैं।"

"महात्मा से भी महान यदि कोई व्यक्तित्व होता हो तो हमारे आदर्श जी का है।"– पंडित जी ने मुस्कुराकर कहा –"उनके त्याग और सेवा का क्या पूछना। अपना

सारा जीवन ही उन्होंने इसमें खपा दिया और इसीलिए हमारे इलाके में उनका जो सम्मान है और किसी का नहीं। उनके एक इशारे पर जनता मरने मिटने को तैयार रहती है। पर आदर्श जी ने अपनी इस जन प्रियता और जनता के विश्वास का कभी गलत लाभ नहीं उठाया। अनेक बार उन्हें कांग्रेस ने और दूसरी राजनैतिक पार्टियों ने चुनाव में खड़ा करना चाहा, यहाँ तक कि खुद लोगों ने उन्हें अपने स्वतंत्र नेता के रूप में विधान सभा के लिए चुनना चाहा पर आदर्श जी ने हठ पूर्वक वह स्वीकार नहीं किया। किसी भी संस्था या सरकार का कोई विशेष पदाधिकार स्वीकार करना आदर्श जी के सिद्धांत के प्रतिकूल है। वे हमारे ग्राम की पंचायत की कार्यकारिणी तक के सदस्य नहीं हैं। वे कहते हैं कि बिल्कुल स्वतंत्र और अलग रह कर मैं सभी की आलोचना कर सकता हूँ, सभी पर आवश्यक अंकुश रख सकता हूँ। उनकी इस निस्पृहता के कारण हमारे प्रदेश के सारे नेता उन्हें सम्मान देते हैं। समय समय पर सभी आवश्यक बातों में उनकी राय ली जाती है।"

"हाँ इतना तो होना ही चाहिए। ऐसे ही व्यक्तियों से समाज के सच्चे कल्याण की आशा की जा सकती है"—मुमुक्षुराम ने प्रशंसात्मक शब्दों में कहा।

जब वे रेवालसर पहुँचे, दोपहर हो चुका था। रेवालसर जिसे आस पास के लोग रिवालसर कहते हैं, दूर तक फैला हुआ एक झील के आकार का सरोवर था। तट पर अनेक मन्दिर बने हुए थे। कड़ी धूप में झील का पानी चिलचिला रहा था। दूर पर कुछ वृक्ष-युक्त छोटे छोटे द्वीप से तैरते हुए दिखाई दे रहे थे।

"पण्डित जी ये चलते फिरते द्वीप कैसे हैं ?"—मुमुक्षु-राम ने आश्चर्य से पूछा।

"इन द्वीपों पर देव स्थान हैं और इन्हें किनारे के निकट लाकर भक्तों को दर्शन कराए जाते हैं। ऐसे सात तैरते भूभाग इस सरोवर में हैं।"—पंडित जी ने श्रद्धा पूर्वक बतलाया।

पास ही लोमशऋषि का मन्दिर था, उसके दर्शन करने के पश्चात सात सरोवर होते हुए वे नयना देवी के मन्दिर गए। वहां का पुजारी पंडित रमाशंकर का रिश्तेदार था, इसलिए रात वहां रुकना पड़ा। दूसरे दिन कमरुनाम मन्दिर के दर्शन करते हुए वे लोग वापिस अपने ग्राम लौट आए। मुमुक्षुराम ने आते ही आदर्श जी से कहा- "वाह आदर्श जी आप धन्य है जो ऐसी भूमि में रहते हैं। यहाँ तो चारों ओर तीर्थ ही तीर्थ हैं।

आप धन्य हैं जो ऐसी भूमि में रहते हैं। यहाँ तो चारों ओर तीर्थ ही तीर्थ हैं।"

"हमारा सम्पूर्ण भारतवर्ष ही एक पुण्य तीर्थ भूमि है मुमुक्षु जी।" – आदर्श जी ने प्रसन्न होकर कहा।

दूसरे दिन मुमुक्षुराम का जाना तय था इसलिए रात में उनके स्वागत के लिए ग्राम पंचायत ने एक छोटे से उत्सव का आयोजन किया। पंचायत भवन के मैदान को बडे सुन्दर ढंग से सजाया गया था। भवन के चबूतरे से सटा कर एक मंच बनाया गया था। गांव के सभी स्त्री पुरुष तरह-तरह को पोशाकों में वहां इकट्ठे हुए थे। सबसे पहले ढोलक और मंजीरे को ताल पर रामधुन की गई, फिर गांव के कलाकार अपने - अपने विशेष करतब दिखलाने के लिए मंच पर आए। ज्यों ज्यों रात बढ़ चली ग्राम के लोक गीत और मधुर लगने लगे। पैरों में घुंघरू बांधे गाँव के लड़के - लड़कियों का फसल का नृत्य देख कर तो मुमुक्षुराम झूम उठे। ....ये वही ग्रामवासी हैं जो मौसम की परवाह न करते हुए दिन - रात कठिन परिश्रम करते हैं। चिलचिलाते सूरज की कड़क धूप और कड़कड़ाती ठंडी रातों में वे अविराम काम करने वाले किसान...... ! कितना कठिन जीवन है

उनका ? अनेक असुविधाओं से भरे, अभावों से पूर्ण इनके इस जीवन में रिक्तता - रिक्तता ही नहीं है…… उसमें कुछ ऐसे भी क्षण आते हैं जब ये आनन्द मग्न होकर अपने सारे कष्ट-कंटकों को भूल जाते हैं और खुशी से झूम उठते हैं। इस समय ऐसा लगता है जैसे इनके समान सुखी इस ससार में और कोई नहीं है। आहा इस चिर दुखिया संसार में आनन्द के ऐसे क्षण बहुत कम आते हैं, पर जब आते हैं, तो सारा दुख बिखर जाता है। मन आनन्द मग्न हो उठता है…… और मुमुक्षुराम ग्राम के इस मोद - मंगल में मग्न हो गए।

४४

आदर्शजी और उनके ग्राम से विदा होकर मुमुक्षुराम जम्मू आए। यहाँ से उन्हें वैष्णवदेवी के दर्शनों के लिए जाना था। वैष्णव देवो का मन्दिर अपने प्राकृतिक वातावरण तथा चमत्कारिक दर्शनों के लिए प्रसिद्ध है अतः मुमुक्षुराम वहाँ जाने की अपनो जिज्ञासा न रोक सके। कटरा नामक स्थान से उन्हें पैदल यात्रा करना था। वहाँ यात्रियों के एक दल के साथ वे चल पड़े।

वे जिस मनोहारी घाटी में से होकर जा रहे थे, वह कुल्लू के नाम से प्रसिद्ध है। चारों ओर दूर तक तुषारवेष्टित गगनचुम्बी पर्वत श्रेणियां फैली थीं। शीतल - शीतल पवन चल रहा था। ऐसे में चमकते हुए सूर्य की धूप बड़ी मधुर लग रही थी। यात्री देवी का कीर्तन करते चले जा रहे थे। मुमुक्षुराम को सहज ही ऐसा लग रहा था जैसे वे किसी अनोखे स्थान में आ पहुँचे हों।

घाटी पार करने पर वे आदिकुमारी पहुँच गए, वहाँ थोड़ा विश्राम करने के पश्चात आगे बढ़े। अब मार्ग काफी

संकीर्ण और कठिन हो गया था। सभी लोग थकावट और श्रम से हाँफ रहे थे पर दर्शनार्थियों का उत्साह कम नहीं होता था। लगभग तीन मील की चढ़ाई चढ़ चुकने के बाद देवी का स्थान आया। वहाँ एक प्राकृतिक गुफा में देवी का मंदिर है। उन दिनों कोई विशेष पर्व न होने के कारण दर्शनार्थियों की अधिक भीड़ नहीं थी। वहाँ के एक ब्राह्मण ने मुमुक्षु को बतलाया कि नवदुर्गा आदि पर्वों के समय यात्रियों की इतनी भीड़ लगती है कि दर्शन के लिए कतार में खड़े - खड़े यात्री को अड़तालिस घंटे बीत जाते हैं। मुमुक्षुराम को भक्तों की इस श्रद्धा और विश्वास के प्रति आश्चर्य सा हुआ।

प्रथम आश्चर्य तो यही था कि इतने कठिन स्थान में लोगों की पहुँच से दूर किन भक्तों ने इस देवस्थान की स्थापना की होगी। वे कैसे लोग रहे होंगे जिनकी श्रद्धा इतने दुर्गम स्थान में आकर मुखरित हुई होगी। अवश्य ही कोई विशेष प्रयोजन रहा होगा। या तो दुष्ट आक्रमणकारियों की दृष्टि और पहुँच से बचने के लिए इस दुर्गम स्थान में देवी की स्थापना की गई होगी किसी चमत्कार प्रिय भक्त ने इस नीरव और दुर्गम स्थल का लाभ उठाकर इस दैविक शक्ति के प्रतीक देव-स्थान में यह मन्दिर बनाया होगा.......और या फिर

किसी महाभक्त ने संसार के कंटकों और उलझनों से नाता तोड़ प्रकृति की इस नीरव निष्कंटक गोद में अपनी उपासना का सिद्ध पीठ बनाया होगा। पर जो भी हो वैष्णव देवी तक पहुँचने का मार्ग कैसा ही कठिन हो, भक्तगणों की श्रद्धा के सामने वह कुछ भी नहीं। मुमुक्षु राम अन्य लोगों के साथ जब प्रमुख गुफ़ा में गए तो उनके सारे विचार सारी तर्कनायें श्रद्धा की महाभावना में खो सी गई। गुफा में चालीस - पचास गज अन्दर चलने पर दीवार पर महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी की बड़ी चमत्कारिक मूर्तियाँ थीं। उनके चरणों से पानी का स्रोत झर रहा था। मुमुक्षुराम उन मूर्तियों की कलात्मकता और भव्यता देखते ही रह गए। वे बरबस मानव मनमें श्रद्धा और विश्वास जगा देतो थीं। मुमुक्षुराम ने प्रणाम कर देवी का प्रसाद और चरणामृत लिया और उन्हें लगा जैसे आज जन्म सफल हो गया हो।

४६

श्रीनगर पहुँच कर, अमरनाथ जाने से पूर्व मुमुक्षु-राम शङ्कराचार्य पर्वत देखने गए। यह नगर के निकट ही एक छोटा पर्वत है। यहाँ श्री आद्यशंङ्कराचार्यजी ने महा शिवल्लिङ्ग की स्थापना की थी। दो तीन मील की चढाई के पश्चात जब मुमुक्षु मन्दिर मे पहुँचे तो प्रफुल्लित हो उठे। उस ऊँचाई से सम्पूर्ण श्रीनगर ऐसा दिखलाई देता था जैसे ममूचा नगर मन्दिर के चरणों में पड़ा उसे नमस्कार कर रहा हो। मन्दिर में भगवान शिव का विगृह इतना भव्य था कि मुमुक्षुराम अपना सारा श्रम भूल गए जैमे उस विगृह में पंच तत्वों को अपने में आकर्षित कर लेने की शक्ति हो।

पर्वत के नीचे ही जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी द्वारा संस्थापित शङ्करमठ था। मुमुक्षुराम वहाँ गए तो मालुम पड़ा कि वर्तमान शंकराचार्य जी कहीं प्रवास पर गए हैं। वहाँ एक महात्मा से उनकी मुलाकात हुई। जब उन्हों ने बतलाया कि वे बम्बई के हैं तो महात्मा ने उन्हें सूचना दी कि बम्बई के ज्ञानाश्रम वाले महात्मा निधिध्यासनजी भी काश्मीर पधारे हैं और अमरनाथ गए हुए हैं। मुमुक्षु

राम को बड़ी प्रसन्नता हुई, उनका आनन्द महात्मा से छिपा न रहा। महात्मा ने पूछा कि क्या निधिध्यासनजी से उनका परिचय है ?

मुमुक्षुराम ने हर्षविभोर होकर कहा – "महात्मा निधिध्यासन जी मेरे प्रथम गुरु हैं। उन्होने मेरे मन में ज्ञान का प्रथम अंकुर बोया था। आज मैंने इस संसार को जो कुछ समझा है वह उनकी कृपा का ही परिणाम है।" – और मुमुक्षुराम ने संक्षेप में अपना सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।

महात्मा ने प्रसन्न होकर कहा – "आप से मिलकर मुझ बड़ो प्रसन्नता हुई। महात्मा निधिध्यासन जी मेरे गुरुभाई हैं। उनका ज्ञान बड़ा व्यावहारिक है।"

"क्या मुझे आपके परिचय का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ?" मुमुक्षुराम ने पूछा।

"इस शरीर को सच्चिदानन्द कह कर पुकारते हैं"-- महात्माजी ने हँसकर कहा – "चित्रकूट पर एक कुटी हमारा स्थाई निवास है। यहाँ शङ्करमठ बहुधा आया करता हूँ। इस बार भाई निधिध्यासनजी के साथ चला आया। मेरी प्रकृति जरा अस्वस्थ थी इसलिए उनके साथ अमरनाथ न जा सका। संयोग शायद आपसे मिलने का था।"

"मेरे अहो भाग्य।" – मुमुक्षुजी ने कहा – "यहाँ कितने दिन टिकने का कार्यक्रम है।"

"बस महात्मा निधिध्यासनजी लौटे कि हम लोग यहाँ से चलें" – सच्चिदानन्दजी ने कहा – "अगले सप्ताह हरिद्वार में एक अध्यात्म सम्मेलन है उसमें हम भाग लेगें फिर वहाँ से अपने - अपने स्थान को वापिस चल देगें।

"महाराज मैं भी सम्मेलन में चलता पर मुझे अमर-नाथ जाना है। जाने महात्मा निधिध्यासनजी से भेंट हो पाएगी या नहीं ?" – मुमुक्षु ने कहा।

"जब वे यहां आए हैं तो भेंट क्यों न होगी। आप विश्वास रखिए। बहुत संभव है कि वे आपको मार्ग में मिल जाएँ यदि न भी मिले तो आप तीन - चार दिन में वापिस आ ही जाएँगे। हम आपके लिए यहाँ रुके रहेगें।" – महात्मा ने सहृदयता से कहा।

"धन्यवाद महात्माजी आपने मेरी बहुत बड़ी कठिनाई दूर कर दी।" – मुमुक्षुराम ने प्रसन्न होकर कहा।

महात्मा ने मुमुक्षुराम को रात में वहीं रोक लिया। वहीं बरामदे में एक बड़ा लकड़ी का ढूंड़ जल रहा था। दो-तीन साधु और बैठे हुए ज्ञान चर्चा कर रहे थे। भोजन के पश्चात, एक ओर मुमुक्षुराम के साथ महात्मा

जी का आसन जमा।

"स्वामी जी, मैं कुछ प्रश्न करूँ।" मुमुक्षु ने पूछा।

स्वामी जी मुस्कराए, बोले–"आपने महात्मा निधिध्यासन जो जैसे ज्ञानियों से ज्ञान पाया है और प्रत्यक्ष ज्ञानार्जन किया है, भला अब क्या जानना शेष है?"

मुमुक्षु ने नम्रता से कहा – "तर्क के लिए क्षमा करें, महात्माजी। ज्ञान तो अक्षय होता है अतः मनुष्य को सदैव जिज्ञासा बनाए रखना चाहिए। महात्मा भर्तृहरि ने एक स्थान पर कहा है कि अमूल्य रत्न पाकर देवता सन्तुष्ट होकर बैठ नहीं गए, उन्होंने समुद्र मंथन बन्द नहीं किया, इसके बाद जब भयानक विष निकला तब भी उससे भयभीत होकर उन्होंने उद्योग बन्द नहीं किया और जब तक अमृत निकाल नहीं लिया तब तक विश्राम नहीं लिया। इससे सिद्ध होता है कि धीरपुरुष अपने अर्थ को सिद्ध किए बिना बीच में उद्योग नहीं छोड़ते। अतः ज्ञान की सम्पूर्ण निधि पाए बिना मुझे चैन कहाँ?"

"तुम्हारे आशय शुद्ध है इसलिए प्रश्न कीजिए। पर मेरो उत्तर देने की शैली थोड़ी अलग है इसलिए अन्यथा न समझना।"– महात्मा ने शान्त शब्दों में कहा।

"उचित है स्वामी जी"–मुमुक्षुराम ने श्रद्धा से कहा –"मुझे स्पष्टतः यह बतलाइये कि यह जगत क्या है?"

"आपको कैसा लगा ?"

"मुझे यह असत्य लगा। ऐसा लगा जैसे होकर भी नहीं है। इसका अस्तित्व इतना अस्थायी है कि हम जिसे आज अभी प्रत्यक्ष देख सुन रहे हैं वह कल एक स्मृति एक स्वप्न बन जाने वाला है। तब फिर यह है क्या ? इसका अस्तित्व है भी या नहीं ?"

"यही तो जगत का अस्तित्व है श्रीमान ! जो गति शील है वही जगत है। पानी का बुलबुला मोती की तरह स्पष्ट दमकता है पर कितना क्षण भंगुर होता है। स्वप्न देखते समय वास्तविक लगते हुए भी कैसा झूठा, कितना अस्थायी होता है। यही बात हम जगत के विषय में कह सकते हैं। हमें यहाँ जो जो बातें दिखलाई देती है, वे सब परिवर्तन शील और अस्थिर हैं अतः मिथ्या हैं। उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हमारा स्वय का जीवन समाप्त हो जाने वाला है अतः उसमें भी हमारा विश्वास नहीं रह जाता।"

"स्वामी जी ! संसार मिथ्या है तो उसके भौतिक सुख भी मिथ्या हैं। कुछ इस तथ्य पर प्रकाश डालिए।"

"स्थाई सुख नाम की वस्तु संसार में नहीं है यह बात स्वयं सिद्ध हैं। इस बात को हम इस तरह से स्पष्ट कर सकते हैं कि वह सुख जो क्षणिक है और जिसे

भोगते समय उसके चले जाने का भय बराबर बना रहता है वह वास्तविक सुख हो ही नहीं सकता। इसीलिए संसार के भौतिक सुख प्रत्यक्ष अनुभव होते हुए भी मिथ्या हैं। वे सुख नहीं, वास्तव में दुख के ही कारण हैं। इस सम्बन्ध में जगदगुरू शङ्कराचार्य जी ने कहा है–

"सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम् ।
प्रपञ्चाधार रूपेण वर्ततेऽन्यतं जगन्नहि ॥"

"अर्थात मिथ्या सर्प आदि में 'रस्सी की सत्ता की भांति जगत के आधार या अधिष्ठान के रूप में केवल ब्रह्मसत्ता ही है अतएव ब्रह्म ही है जगत नहीं। संसार की इस क्षणभंगुरता का हमें पल पल पर अनुभव होता है। एक अविरल प्रवाह की भांति यह संसार चला जा रहा है। जो कल वर्तमान था आज केवल भूत काल की स्मृति मात्र है, जो आज है वह भी भूत काल के गर्त में चला जाने वाला है फिर आने वाले कल का तो ठिकाना ही क्या ? इसलिए जगत के वास्तविक स्वरूप को पहिचानना आवश्यक है।

"गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने संसार की तुलना पीपल के वृक्ष से की है। पन्द्रहवें अध्याय में वे कहते हैं कि इस संसार रूपी वृक्ष की जड़े तो आदि पुरुष परमेश्वर स्वरूप हैं और इसका मुख्य तना ब्रह्मरूप है। इस वृक्ष

के पत्ते मनुष्य के यज्ञादिक कर्म हैं । यह संसार –वृक्ष अविनाशी है अर्थात निरन्तर परिवर्तनशील होते हुए भी संसार अनादि काल से चला आ रहा है और है और अनन्त काल तक चला जाएगा । ऐसे अद्‌भुत संसार में मनुष्य जन्म का तात्पर्य क्या है ? बतला सकते हो ?"

"आप ही कहिए भगवान ।"–मुमुक्षुराम ने कहा ।

"सुनो "–महात्मा ने कहा–"संसार असंख्य जीवों से भरा पड़ा है । यह जीव क्या कर्मानुसारणी बुद्धि पर पड़ा हुआ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है इसे हम माया या अविद्या का रूप कह सकते हैं । यह एक चक्र है । कर्मफल के अनुसार जन्म जन्मान्तरों में अविद्या ग्रसित जीव भ्रमण करता रहता है । कर्म विकर्म के प्रपंच में बँधा जीव इस दुखमय संसार में सुख ढूंढ़ता रहता है, पर उसे सुख नहीं मिलता, इसीलिए वह दुखी रहता है । वास्तव में जीव का लक्ष्य है अनन्त सुख की प्राप्ति ;"

"और वह अनन्त सुख कैसे मिलता है ?"–मुमुक्षराम ने पूछा ।

जीव का सुख है भगवत प्रीति में । यदि जीव अपने पुरुषार्थ से प्राप्त की हुई वस्तुओं से सन्तोष मानकर वैराग्य के द्वारा भगवान की ओर बढ़ता जाएगा तो उसे निश्चय ही सुख मिलेगा ।"

"क्या हम जीव को आत्मा कह सकते हैं ?"

"हाँ ! जब वह शरीर को ही अपना सब कुछ मानता है तब उसकी संज्ञा जीव होती है और जब वह अपने को सच्चिदानन्द के रूप में पहचानता है तब उसकी संज्ञा आत्मा होती है। आत्मा ही समस्त विराट में भरपूर है। समस्त विराट उसी में उदय हो रहा है, टिका हुआ है और लीन हो रहा है। वह अपरिवर्तनीय अर्थात सत्य है, सदा ज्ञानमय अर्थात चिद् है तथा सदा दुखादि विकारों से रहित अर्थात आनन्द है अतः आत्मा सच्चिदानन्द है। मनुष्य को अपनी बुद्धि से इसे पहिचानना चाहिए। जो क्षण क्षण में परिवर्तित हो वह आत्मा नहीं, उसे विकार युक्त मन कहा जा सकता है। मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि जीव का लक्ष्य अनन्त सुख को प्राप्ति है और अनन्त सुख का स्वरूप है आत्मा। अतः इस आत्मा को पहिचानना चाहिए। इसको प्राप्ति की ओर बढ़ना चाहिए।"

"उसका साधन क्या है ?"—मुमुक्षु ने पूछा।

"साधन है उसकी तीव्र कामना। अब उस कामना की जागृति के साधन व्यक्ति की योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। साधनों की भिन्नता देश, काल और अधिकार भेद से आती है, इसोलिए संसार में भिन्न भिन्न धर्म हैं।

उपासना के भिन्न भिन्न तरीके हैं। अतः बाहरी साधना का उतना महत्व नहीं है जितना उसकी प्राप्ति की लालसा का है। हाँ मनुष्य को कर्म अकर्म और पाप पुण्य का भेद समझ लेना चाहिए। यह भेद बड़ा ही बारीक है। इसे मैं समझाने का प्रयत्न करता हूँ।—कर्म गुणों से बनते हैं। संसार में तीन गुण माने गए हैं। सत, रज और तम। प्रकृति से इन तीनों गुणों का निर्माण हुआ है और सारे कर्म इन्हीं से चलते हैं। रजोगुण में तमोगुण मिल जाने के कारण जीव अशुभ कार्यों के करने में प्रवृत्त होता है। सतोगुण में रजोगुण के कारण जीव अशुभ कार्य करता है और सतोगुण की प्रधानता होने पर ही जीव ईश्वर या आत्मस्वरूप को पहचानता है। गुणों में परिवर्तन कर्मों के द्वारा होता है। वास्तव में कर्म के कारण ही मानव जन्म लेता है' इसीलिए इषावास्य में कहा गया है कि

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत शतं समाः"

अर्थात सौ वर्ष तक यदि आराम से जीना चाहते हो तो कर्म करते हुए ही जिओ। मनुष्य शुभ संग के द्वारा शुभकार्यों में प्रवृत्त होता है, उस समय यदि अशुभ संस्कार उदय भी हो जाएँ तो भी सत्संग आदि से उसके अशुभ कर्मों का विकास नहीं हो पाएगा। कहा भी है कि 'ज्ञानग्नि सर्व कर्माणि

भस्मसात् कुरुते यऽर्जुनः' यही पाप–पुण्य को घटाने बढ़ाने का साधन है।"

"पाप-पुण्य के भेद को भी स्पष्ट कीजिए।"

"स्मृतिकार ने मानवीय व्यवहार में पाप - पुण्य की जो व्याख्या दी है वह इस प्रकार है। परोपकार पुण्य है तथा दूसरे को दुख देना पाप है। इसी तरह जिस काम को करके छिपाना पड़े, जिसे करते समय अपनी आत्मा को भय, वेदना या आशंका बनी रहे वही कर्म पाप कर्म है। अध्यात्म की दृष्टि से हम कहेंगे कि ईश्वर को भूल जाना ही पाप है। उसे स्मरण रखना ही पुण्य है। जब जब मनुष्य त्रुटियां करता है तब उसे ईश्वर का स्मरण नहीं रहता और ज्यों ही ईश्वर का स्मरण आता है, वह पाप भूल जाता है। अब पुण्याकांक्षी को ईश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए अर्थात आत्म चिन्तन में सदैव लीन रहना चाहिए। मानव जन्म लेकर अध्यात्म की ओर न जाना ही पाप है क्योंकि मानवजन्म में ही जीव को ईश्वर की ओर ले जाने वाली और संसार में उन्नति कराने वाली बुद्धि का भास होता है अतः मानव जीवन की सार्थकता अध्यात्म पथ पर बढ़ने में ही है।"

"अध्यात्म पथ पर जाने का उपाय बतलाइए।" मुमुक्षु ने पूछा।

"प्रथम शास्त्र विहित कर्मों में फलासक्ति का त्याग करके कर्मयोग का साधन करना चाहिए। उससे दुर्गुण, दुराचार रूप मलदोष का नाश होकर अन्त:करण की शुद्धि होती है। तदनन्तर भगवान के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए, उससे विक्षेप का नाश होता है। इसके बाद आत्मा के यथार्थज्ञान से आवरण का नाश होकर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। वेदान्त सिद्धान्त के इन आचार्यों का यह क्रम बतलाना शास्त्र सम्मत एवं युक्ति युक्त है। इसी प्रकार केवल निष्काम कर्मयोग के साधन से भी अंत:करण की शुद्धि होकर क्रमश: परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और उस परमपद की प्राप्ति हो जाती है। स्वयं भगवान गीता में कहते हैं –

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र्रमिह विद्यते ।
"तस्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।"

"धन्य है! धन्य है।"– मुमुक्षुराम और वहाँ बैठे हुए अन्य साधुगण गदगद कंठ से कह उठे।

धूनी में जलती हुई अग्नि अब मंद पड़ चली थी। आकाश स्वच्छ था और नक्षत्र चमक चमक कर इस ज्ञान वार्ता की साक्षी दे रहे थे। महात्मा और मुमुक्षु दोनों आत्म चिन्तन में निमग्न हो गए थे।

४६

प्रातः स्वामी सच्चिदानन्द से विदा लेकर मुमुक्षु राम अमरनाथ यात्रा पर चल पड़े। पहलगाँव आकर उन्होंने यात्रा के लिए आवश्यक सामान खरीदा और एक कुली साथ ले लिया। अमरनाथ पहलगाँव से लगभग २७ मील पड़ता था। पैदलमार्ग था, चन्दनवाड़ी पार कर वे लिदर नदी के किनारे जाने वाले टेढ़े मेढ़े मार्ग पर जा पहुँचे। मुमुक्षुराम का मन आनन्द और उत्साह से भर गया था। क्यों न भरता? प्रकृति के रम्य क्रीड़ा स्थल कश्मीर का आकर्षण ही ऐसा है। गगनचुम्बी धवल हिम शिखरों से घिरी हुई हरी भरी घाटियाँ स्वर्ग के दृश्य उपस्थित करती हैं। हिमशिलाओं में से निसृत होते हुए जब स्रोतों की कल-कल छल-छल, सरोवरों और झीलों में तैरते हुए भांति भांति के रंग विरंगे विहंगों का मधुर कलरव, वातावरण में एक नैसर्गिक संगीत घोलता रहता है। उन घाटियों में पहुँचते ही ऐसा लगता है, जैसे हम इस भौतिक जगत से परे किसी शान्त मनोहारी लोक में जा पहुँचे हों, जहाँ मनुष्य प्रकृति से एकात्म होकर आत्म-चिन्तन और आत्मदर्शन में मग्न हो उठे। मुमुक्षुराम आत्म विभोर हो उठे।

अब चढ़ाई काफी अधिक हो गई। ठंडक भी बढ़ती जा रही थी। संध्या होते होते जब वे चढाई चढ़कर ऊपर पहुँचे तो सामने स्वेत हिम से ढकी पहाड़ियों के बीच शेषनाग झील लहरा रही थी। डूबते हुए सूरज की रक्तिम आभा ने जैसे दिशाओं में सिंदूर घोल दिया था और शेषनाग की नीलिमा उस लाली को चुरा चुरा कर अपने चारों ओर विखेर रही थी। मुमुक्षुराम चकित से उस मनोहारी दृश्य को देखते रह गए। रात वहीं रुकना था, कुली ने ठहरने की व्यवस्था कर दी, और भी अनेक यात्री अमरनाथ जा रहे थे। प्रभात में शीघ्र ही वे लोग चल पड़े। मुमुक्षुराम के मन का उत्साह बढ़ता ही जाता था। पञ्चतरणी पार कर जब वे अमरनाथ पहुँचे तो यात्रियों का आनन्द और उत्साह जैसे अपनी सीमा पार कर गया। वे भगवान अमरनाथ की जय जयकार से पर्वतों को गुंजाने लगे। गुफा के नीचे निर्मल कांच की तरह स्वच्छ जल वाली बाणगंगा की धारा बह रही थी। उस समय वहाँ आकाश स्वच्छ निरभ्र था, चटक धूप निकली हुई थी, जिसमें चारों ओर की बर्फ चांदी की चादर के समान झिलमिला रही थी।

अमरनाथ की गुफा बड़ी अनुपम थी, उसमें प्रवेश करते ही मुमुक्षुराम के मन में एक असीम शान्ति और

आनन्द का अनुभव हुआ। हिम के प्राकृतपीठ पर स्वनिर्मित धवल महा शिवलिङ्ग की छटा अनुपम थी। इस प्राकृत गुफा में निसर्ग द्वारा ही बनाए गए इस शिवलिङ्ग को देख कर, कौन है जिसके मन में श्रद्धा का सागर नहीं उमड़ने लगेगा। गुफा से बाहर मीलों तक कच्ची बरफ बिछी हुई है, पर इस गुफा में शिव जी का यह पीठ और उस पर स्थापित लिङ्ग पक्की ठोस बरफ के बनते हैं। यह प्रकृति का चमत्कार मात्र ही मानें तो भी ऐसा लगता है कि यदि मनुष्य ने इस संसार के रचयिता भगवान की पूजा अर्चना के लिए अपनी भावना और रुचि के अनुसार उनकी मूर्ति का निर्माण किया तो प्रकृति भी तो ऐसा कर सकती है। निसर्ग ने भी अपने रचयिता ईश्वर का एक अद्भुत विग्रह यहाँ स्थापित कर उनकी अर्चना की है। ऐसे पवित्र और दिव्य विग्रह के दर्शन कर मानव मन धन्य हो जाता है। उसका मन यदि निर्मल और श्रद्धायुक्त हुआ तो सच ही उसे यहाँ ईश्वर का साक्षात्कार होता है। क्षण भर के लिए अपने आप ऐसा लगता है, जैसे उस तेजोमय परात्पर परब्रह्म का सान्निध्य मिल गया हो। मुमुक्षुराम इसी आत्मानुभूति से गद् गद् हो गए। उनका संपूर्ण दुख, समस्त शंकाएँ, सभी आशंकाएँ लुप्त होगईं और उन्हें एक अवर्णनीय, अद्भुत आनन्द का अनुभव हुआ। वे

बड़ी देर तक गुफा में ध्यान मग्न बैठे रहे, तन मन की सुधि ही बिसरा बैठे।

काफी समय निकल गया। अन्य सारे यात्री जा चुके थे। कुली को भय लगा कि कहीं अधिक देर होने से लौटने में पंचतरणी से पूर्व ही रात न हो जाए सो उसने बाहर से मुमुक्षुराम को पुकारा। उनकी ध्यान मुद्रा भग्न हुई। वे अनिच्छा से गुफा से बाहर निकले तो देखा नीचे से एक महात्मा चले आ रहे हैं। ..... आहा, महात्मा निधिध्यासन जी! जिन्हें मुमुक्षुराम की आँखें रास्ते भर खोजती रहीं, अनायास ही सामने से चले आ रहे हैं। मुमुक्षुराम ने आनन्द विभोर होकर उन्हे साष्टांग प्रणाम किया। निधिध्यासन जी ने उन्हें अपने हृदय से लगाते हुए कहा —"ओहो! आज समझ में आया मुमुक्षु जी, कि क्यों भगवान शंकर मुझे यहाँ रोके हुए थे। तीन दिन पूर्व मैं यहाँ आया हूँ पर यहाँ से जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। यद्यपि अपने एक गुरुभाई को मैं श्री नगर छोड़कर आया हूँ।"

"जी हाँ, महात्मा सच्चिदानन्द जी से मेरी भेंट हो चुकी है। उन्हीं से मुझे आपके यहाँ आने की सूचना मिली। मैं रास्ते भर आपको खोजता रहा हूँ।" मुमुक्षु राम ने सहर्ष कहा।

"और कदाचित इसीलिए मैं यहाँ रुका रहा हूँ। जाने को मन ही नहीं कर रहा था। रोज पंचतरणो से यहाँ आता रहा हूँ। अच्छा तुम तनिक ठहरो, हम आए" महात्मा निधिध्यासन जी गुफा में चले गए। अर्चना में उन्हें अधिक समय नहीं लगा। फिर वे साथ साथ पंच तरणी वापिस लौटे। मार्ग में मुमुक्षुराम ने अपने सारे अनुभव महात्मा जी को सुनाए तो वे हर्ष पूर्वक बोले – "मुमुक्षु जी अब आप समझ गए होंगे कि किसी से सुन कर या कहीं से पढ़कर जो ज्ञान हमें मिलता है वह तो यथार्थ का एक वर्णन या हम कहें एक चित्र मात्र है। वास्तविक सत्य का अनुभव तो हमें स्वदर्शन से हो होता है।"

"आप सत्य कहते हैं स्वामी जी!"– मुमुक्षुराम ने कहा –"यह आप ही की कृपा है कि मेरे अन्तर के पट खुले और मैंने बाह्य को जानकर अब अपनी आत्मा में झाँकना प्रारंभ किया है। भगवान की कृपा हुई तो अवश्य ही मुझे आत्मदर्शन होगा।"

"ईश्वर की कृपा आप पर हो चुकी है मुमुक्षु जी! एक बार आपके अन्तः नेत्र खुले हैं तो अब आप बराबर इस मार्ग पर आगे बढ़ते चले जाएँगे।"

"महात्मा सच्चिदानन्द जी कह रहे थे कि हरिद्वार

में अध्यात्म सम्मेलन हो रहा है।"–मुमुक्षुराम ने साभिप्राय कहा ।

"हाँ हाँ !"–महात्मा जी ने कहा –"केवल दो ही दिन तो रह गये हैं। सम्मेलन में अनेक अध्यात्मवेत्ता, ज्ञानवान और विद्वान सज्जन एकत्र होने वाले हैं। सत्संग का एक दुर्लभ अवसर प्राप्त होगा। आपको भी साथ चलना होगा।"

"अहो भाग्य स्वामी जी ।"–मुमुक्षुराम ने प्रसन्न होकर कहा–"मैं तो स्वयं आपसे निवेदन करने जा रहा था।"

महात्मा जी मुस्कुरा दिए।

४७

"स्वर्ग द्वारेण तत तुल्यं गङ्ग द्वारं न संशयः"—पद्यपुराण में हरिद्वार के सम्बन्ध में कही गई इस उक्ति की सत्यता में तनिक भी संशय नहीं। परमपवित्र गंगा नदी यहाँ हिमालय से नीचे भूतल पर उतरती है। राजा भागीरथ के पुण्य प्रताप का साक्षी देने वाला यह महा तीर्थ सत्य ही स्वर्ग के द्वार के समान अनुभव होता है। हरिद्वार से कुछ ही दूरी पर ऋषीकेश है। वहाँ से आगे चलकर मुनि की रेती नामक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ स्वामी शिवानन्दजी का आश्रम है। उसके आगे नौका से गङ्गा पार करने पर स्वर्गाश्रम आता है। स्वर्गाश्रम बड़ा ही रमणीय स्थान है। यहाँ गीताभवन की विशाल इमारत है। गीता भवन तथा परमार्थ निकेतन वास्तव में ज्ञान साधना के क्षेत्र ही हैं, यहाँ सदा साधु महात्माओं, ज्ञान-जिज्ञासुओं और सत्सङ्ग के प्रेमियों का आवागमन बना रहता है।

उन दिनों गीता भवन में बड़ी चहल पहल थी। वैसे तो प्रति वर्ष वहाँ चैत्र से अषाढ़ तक सत्सङ्ग का आयोजन होता था पर इस बार अध्यात्म सम्मेलन का

आयोजन था। बड़े-बड़े साधु-महात्मा, जाने माने अध्यात्म वादो और दर्शनशास्त्री वहाँ पधार रहे थे। मुसुक्षुराभ स्वामी निधिध्यासन जी और महात्मा सच्चिदानन्द के साथ जिस दिन गीता भवन पहुँचे उसी दिन सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। सभापति दण्डकारण्य के एक बहुत जाने माने वयो वृद्ध महात्मा थ। प्रतिदिन एक न एक महात्मा विद्वान का अध्यात्म पर उनके दृष्टिकोण सम्बन्धो भाषण होता था फिर प्रश्नों द्वारा शंका-समाधान किया जाता। मुमुक्षुराम को अध्यात्म के नित्य नए नए और सुलझे हुए दृष्टिकोण सुनने को मिलते, उन्होंने अभी तक जो कुछ स्वानुभव किया था उसका सार स्वरूप उन्हें उन व्याख्यानों में प्रत्यक्ष मिलता जा रहा था। उन्हें यह भो अनुभव हो रहा था कि सबके अपने अपने अलग अनुभव हैं, अभिव्यक्ति की शैलियाँ भो भिन्नभिन्न हैं, पर उनके सिद्धान्त एक ही लक्ष्य को लिए हुए हैं।

सातवें दिन जब महात्मा निधिध्यासन जी का प्रवचन हुआ तो उन्होंने अपने भाषण के अन्त में मुमुक्षुराम का परिचय सम्मेलन में देते हुए कहा —"सेठ मुमुक्षुराम का उल्लेख मैं यहाँ इसलिए कर रहा हूँ कि उन्होंन एक अपने ढंग से ज्ञान और सत्य का दर्शन किया है। उन्होंने इसी उद्देश्य को लेकर प्रत्यक्ष संसार की अनुभूति ली है।

दर्शन को दर्शन इसीलिए कहा जाता है कि वह स्वतः देखने से ही भासता है। वह स्वानुभूति है। मैं चाहूँगा कि मुमुक्षुराम जी अपने ज्ञान दर्शन की स्वानुभूति सम्मेलन को सुनाएँ।"– उपस्थित सज्जनों ने हर्ष ध्वनि की। मुमुक्षुराम को बड़ा संकोच हुआ। महात्माजी ने एक बड़ा उत्तरदायित्व उन पर डाल दिया था। प्रथम तो वे अपने ज्ञानको इतना परिपक्व मानते ही न थे कि वेद-उपनिषदों के ज्ञाता इस गुरू समाज में कुछं बोलने का साहस कर सकेंफिर न उन्हे शास्त्रीय प्रवचन की शैली ही आती थी। ...... पर गुरु तुल्य महात्मा जी की आज्ञा और आग्रह को टाला भी नहीं जा सकता था।

अतः वे ससंकोच मंच पर आगए। उन्होंने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर सम्मेलन को प्रणाम किया और मधुर वाणी में बोले –"उपस्थित गुरुजनों, ज्ञानीजनों तथा सम्माननीय सभापति जी ! मैं एक सामान्य बुद्धि का साधारण सा मनुष्य हूँ। ईश्वर की कृपा से मुझे इस संसार में अद्वितीय भौतिक सफलता मिली। परन्तु अपार धन सम्पदा होते हुए भी मैं सुखी न हो पाया। चारों ओर सुख के भौतिक साधन होते हुए भी मुझे दुख ही दुख मिला और मेरे मन में वास्तविक सुख को जानने की, उसे पाने की जिज्ञासा जागी। मैं आज प्रसन्न हूँ कि उस

अखण्ड आत्मानन्द की एक झलक मुझे मिल गयी है। इसी कारण मैं अपने को धन्य मानता हूँ।"— मुमुक्षुराम ने संक्षेप में अपनी ज्ञानयात्रा के वर्णन को सुना डाला।

तब किसी ने पूछा —"आपको इन सब अनुभवों से क्या शिक्षा मिली ? अधिक स्पष्टता से पूछूँ तो आपने इस सब का सार रूप क्या निष्कर्ष निकाला ?"

"हाँ वही मैं तनिक विस्तार से बतलाऊँगा।"— मुमुक्षु राम ने गंभीरता से कहा —"सत्य ज्ञान की प्राप्ति के साधन रूप मैंने सर्व प्रथम स्वाध्याय को जाना है। स्वाध्याय महापुरुषों के विचारों का मनन और अपने बारे में अनुसंधान को कहते हैं। जो हमें दिखता है और जिसे हम अपने चारों ओर भोगते हैं वह भौतिक जगत स्वानुभूत है, हमें प्रतीत हो रहा है। अतः इसकी वास्तविकता का विश्लेषण करना चाहिए। तदोपरान्त अपने आपका, ज्ञान, ध्यान और अभ्यास के द्वारा प्राप्त करना चाहिए। यह स्वाभाविक ही है कि संसार में मनुष्य मात्र की सहज प्रवृत्ति बहिर्मुखी है और इसी कारण अपने से बाहर की ओर वह सहज ही देखता रहता है। बाह्य परिस्थितियों और पदार्थों में वह इस तरह खो जाता है कि उनसे परे भी अपनी कोई स्थिति है, इसका उसे भान ही नहीं रहता। इस बाह्य जगत से अपने संयोग और

वियोग को ही वह सुख दुःख मान कर चलता है, इसी को ज्ञान की भाषा में माया कहते हैं। इस बहिर्मुख ज्ञान रूप माया को छोड़ कर जब मनुष्य अन्तर्मुख होता है, अपने आप के विषय में अन्वेषण करता है तो उसे वास्तविक ज्ञान होता है। इसे हम आत्म ज्ञान का साधन कह सकते हैं।

"ज्ञान-साधना की अनेक मंजिलें हैं। जब मनुष्य स्वाध्याय में प्रवृत्त होता है तो प्रथम बार उसे ज्ञात होता है कि उसका स्वयं का अस्तित्व इस पंच भौतिक संसार से परे हैं। अब देखें कि यह सुख दुःख क्या है? सारे भौतिक जगत के पदार्थो का उपभोग और अनुभव करने वाला व्यक्ति मनुष्य स्वयं ही तो है। उसे जो भाता है उसी की वह कामना करता है, उसी का वह सेवन करता है। यह भाना ही तो उसका आनन्द है। अब एक व्यक्ति की पसन्द दूसरे व्यक्ति से नहीं मिलती। किसी को जनसमूह में बैठकर हो हल्ला करने में आनन्द मिलता है तो कोई एकान्त स्थल में अकेला बैठकर सुख पाता है। ऐसा केवल अपनी व्यक्तिगत पसन्द के कारण ही होता है न! अतः यह पसन्दगी नापसन्दगी ही मनुष्य के सुख दुःख का दृष्टिकोण बन जाती है। पसन्द की वस्तु को प्राप्ति ही उसका सुख है तथा अभाव ही उसका दुःख

बन जाता है। इसे हम भाव तथा अभाव कहते हैं। जब मनुष्य को भाव तथा अभाव का रहस्य ज्ञात हो जाता है तो उसके सामने अपनी स्वयं की अपरिमित शक्ति का रहस्य खुल जाता है। यह शक्ति है भावनाओं की। यदि मनुष्य ने अपनी भावनाओं पर नियंत्रण पा लिया तो समझो उसने संसार की सम्पूर्ण भौतिकता पर विजय पा ली। भावनाएँ ही तो रुचि–अरुचि और भाव–अभाव उत्पन्न करती हैं। यदि मनुष्य अपनी भावना ऐसी बना ले कि प्रत्येक परिस्थिति में उसे आनन्द की अनुकूलता का भास होने लगे तथा प्रतिकूलता में भी अनुकूलता भासे तो उसे संसार की कोई भी वस्तु अरुचिकर तथा कष्टप्रद नहीं दिखलाई देगी क्योंकि अनिष्ट में भी उसे इष्ट दीखता है। यदि मनुष्य केवल सत्य को ही जाने असत्य को न माने तो उसके जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहेगा। और जहाँ मनुष्य को इस दृष्टि का ज्ञान हुआ, उसका विवेक विकसित होने लगेगा।"

"जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश होने पर हमें संसार के पदार्थ स्पष्ट दिखलाई देते हैं और सूर्य का प्रकाश छिप जाने पर वे लीन हो जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश में हमें वास्तविकता के दर्शन होंगे। जब मनुष्य को यह ज्ञात हो जाएगा कि भावनाएँ बदल लेने से ही दुख सुख

में बदल जाता है तो वह सदैव सुखी रहेगा। दुखी होना तो कोई नहीं चाहता। दुख एक रोग के समान है, यदि रोगी को अपने रोग की औषधि मिल जाए तो फिर वह क्यों रोगी बना रहेगा। इसीलिए मनुष्य दुखों को त्याग सुखों को अपनाता है। जहाँ मनुष्य के भाव सम हुए उसे अपनी आत्मा के दर्शन होंगे।"

"यह आत्मा कैसी है? यह आत्मानुभव से ही ज्ञात होता है। यह सदैव आनन्द स्वरूप, निर्विकार, नित्य, अव्यक्त, और अविनाशी है। इस आत्मा का एक ही लक्षण है और वह है माया से मुक्त होकर परमात्मा से अपना ऐक्य अनुभव करना जैसा कि उल्लेख कर चुका हूँ। माया जीव पर पड़ा हुआ बहिर्मुख प्रवृत्तियों का आवरण है। जब हम इस आवरण को हटाकर अन्तर्मुख हो जाते हैं, तो आत्मा का हमें साक्षात्कार होता है और उसके साक्षात्कार से मनुष्य में दिव्य शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं। आत्म-साक्षात्कार संपन्न व्यक्ति ही महात्मा कहलाता है। महात्मा का अर्थ यह नहीं कि उसकी आत्मा अन्य आत्माओं से बड़ी है। वास्तव में आत्मा तो सब में एक ही है। महात्मा तो उसे इसीलिए कहा जाता है कि उसने अपने आप को पहचान लिया है। फिर वह महात्मा आत्मा के समान ही सत्- चिद्- आनन्द मय हो जाता

है । उसके सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जाते हैं, सारे विकार समाप्त हो जाते हैं, अज्ञान मिट जाता है, अभाव चुक जाते हैं और वह महानुभाव अपनी अनुभूति का आदर करता हुआ क्रमशः ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसे हम मुक्ति कहते हैं । सत्य ज्ञान ही मोक्ष का साधन है और जीव आत्मा का अपने स्वरूप को पहिचान कर परिछिन्नताओं के परे अपरिछिन्न अवस्था को प्राप्त होकर परमात्मा में लीन हो जाना हो मोक्ष है ।"

मुमुक्षुराम ने हाथ जोड़कर अपना भाषण समाप्त किया तो सभाकक्ष तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। महात्मा निधिध्यासनजी ने उठकर मुमुक्षुराम को अपने हृदय से लगा लिया ।

४८

शुभ्र नील में पूर्णिमा का पूर्ण चंद्र खिला हुआ था। नीचे भागीरथी की उर्मियाँ छप छपा छप की ध्वनि करती हुई नृत्य सा कर रही थीं। मन्द-मन्द शीतल पवन के आँचल में मधुर सुवास था। ऊँचो पर्वत श्रेणियों के आंचल में तट पर उनींदा सा खड़ा गीता - भवन शान्ति मन्दिर सा लग रहा था। चारों ओर शान्त नीरवता थी, पर दूर कहीं से हवा के झोंकों की तरह किसी के अलापने का स्वर सुनाई दे रहा था —······

"अरे ओ मुसाफिर !

चलना है दूर, काहे सोवे रे !

चेत अचेत नर !

सोच बावरे, बहुत नींद मत सोवे रे।"

नदी और पहाड़ी में गूँजते यह मधुर इकलौते स्वर जैसे उस नीरवता के भूषण थे। ········· आह कैसी नीरव शान्ति थी ? ····· इस रोते - विलखते, कोलाहल से भरे संसार में कभी कहीं ऐसी भी नीरवता विराजमान होती है, जहाँ मन की सभी दुविधाएँ लुप्त हो जाती हैं और बस रह जाता है मनुष्य, उन्मुक्त अपने आप

से भी अलग, प्रकृति की नीरवता में एक रस हुआ .....
और इसलिए रात के सूनेपन मे जब कोई कुछ गा उठता है तो उसका वह आलाप जैसे उस नीरवता के संगीत का ही ताल बद्ध स्वर होता है। स्वर लहरी चल रही थी...

"काम-क्रोध-मद-लोभ-
में फँसकर उमरिया काहे खोवे रे।
सिर पर माया मोह की गठरी
संग इत तेरे होवै रे॥
अरे ओ मुसाफिर !
चलना है दूर............

मुमुक्षुराम अपने कक्ष की खिड़की के समक्ष बैठे हुए, अपने आप में खोए से, चाँदनी के वैभव को देख रहे थे। वे सोच रहे थे– "ऐसे रम्य वातावरण में रहकर आत्मा परमात्मा का चिन्तन-मनन करना ही जीवन का श्रेष्ठ फल है। मनुष्य व्यर्थ ही संसार की भूल - भुलैया में पड़ा सड़ता रहता है। माया ,मोह और ममता तथा काम, क्रोध, लोभादि दुर्गुणों से मुक्त होकर वह नित्य अपनी अशान्ति में वृद्धि करता है। दुःखों के दल - दल में स्वयं जा फँसता है और फिर हा सुख ! हा शान्ति ! का हाहाकार मचाता है। भला अग्नि शिखाओं से भी कहीं शीतलता मिली है? शान्ति

और सुख तो इसी एकान्त स्थली के वासी हैं। सारी उलझनों से दूर, सारी दुविधाओं से मुक्त, यहाँ मानव मन को अपने आपको देखने - समझने के दो क्षण प्राप्त हो जाते हैं.............." और मुमुक्षु के मन में संकल्प उठा कि वे अब ऐसे ही किसी निर्जन - नीरव स्थल में जाकर भगवद् भजन और आत्मचिन्तन में लीन हो जाएँगे। ......वहाँ बस वे होंगे, उनकी अपनी शान्ति होगी, अपना आनन्द होगा, परमानन्द.........

तभी पीछे से किसी ने उनकी पीठ पर हाथ रखा। मुमुक्षुराम ने चौंक कर देखा महात्मा निधिध्यासन जी खड़े थे। मुमुक्षु ने उठकर प्रणाम किया। वे पास ही आसन पर बैठते हुए बोले – "इतनी रात गई अभी तक सोए नहीं मुमुक्षु जी !"

"हाँ स्वामी जी। रात के इस एकान्त में बड़ा भला लग रहा है। कितनी शान्ति है, कैसा मंगल है ?"......

तभी वायु का एक मधुर झोंका आया और गीत की स्वर लहरियाँ सुनाई दी............

"अरे ओ मुसाफिर
चलना है दूर, काहे सोवे रे।"

"आहा महात्मा जी ने मग्न होकर कहा – कोई भावुक आत्मा गा रहा है। कैसा पद है ? आनन्द.......

परमानन्द·····" वे सुनने लगे--

"रस्ता तो वह दूरि विकट है,
तजि चलन अकेला होवे रे।
संग साथ तेरे कोई न चलेगा-
का कै डगरिया जोवै रे ॥······

दोनों मग्न होकर सुन रहे थे। गीत की स्वर लहरियाँ छन - छन कर आ रही थीं फिर हवा के झोंके के साथ जैसे गीत कहीं खो गया।

"स्वामीजी !" - मुमुक्षु ने गंभीरता से कहा-"मेरे मनमें आज एक अनुपम संकल्प उठा है।"

"सो क्या ?" महात्मा जी ने मधुरता से पूछा।

"अब अपने शेष जीवन में इस ज्वालामय संसार को छोड़कर, ऐसे ही किसी निर्जन - नीरव स्थान में जाकर आत्म-चिन्तन करूँ।"

"अर्थात सन्यास लेने की भावना हुई है?" - महात्मा जी ने स्पष्ट पूछा।

"जी हाँ।"

"पर मुमुक्षु जी! आप ऐसा क्यों करना चाहते हैं? आप पर बहुत से उत्तरदायित्व हैं, परिवार की जिम्मेदारी है। पत्नी, बहिन और पुत्री तीनों का भार तुम पर है।"

"पर स्वामी जी ! स्त्री, बहिन और पुत्री का जीवन सुख से बीते इसकी व्यवस्था तो मैं पहिले से ही कर चुका हूँ।"

"कैसी व्यवस्था ! जीवन - यापन के लिए धन की व्यवस्था न ? पर मुमुक्षु जी धन ही तो इस संसार में सब कुछ नहीं है। उन्हें तुम्हारे धन की नहीं, तुम्हारी आवश्यकता है। उस पुरुषहीन परिवार में अपने पुरुष अभिभावक की आवश्यकता है। हाँ यदि तुम्हारे परिवार में पुत्र या अन्य कोई पुरुष होता तो मैं तुम्हारे विरक्ति के संकल्प की सराहना करता।"

"पर स्वामी जी।" – मुमुक्षु ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा – "संसार में स्त्री–पुत्र, धन–सम्पत्ति इन सबका लोभ–मोह ही तो माया में फँसना है, दुख को आमंत्रण देना है। अब जब अनायास हो इन्हें छोड़ने का अवसर आया है तो छोड़ देने में क्या बुराई है ? मेरी मुक्ति का मार्ग निष्कंटक हो जाएगा।"

"तुम भूले हुए हो मुमुक्षु जी ! मुक्ति का मार्ग क्या है इसे तुम समझ कर भो कदाचित नहीं समझे। तुमने यह तो जान लिया कि संसार दु:खों का घर है। यहाँ सारे दुर्गुणों का निवास है, पर यह मानना गलत है कि इसे त्याग कर ही मनुष्य मुक्त हो सकता है, सुखी हो

सकता है। मनुष्य जन्म पाया है तो कर्मों से छुटकारा नहीं मिल सकता, कर्म तो करना ही पड़ेगा। सारे वेद-उपनिषदों के सार-रूप भगवद् गीता में भी भगवान ने अर्जुन को यही समझाया है कि मनुष्य अपन कर्मों और उत्तरदायित्व का पालन करके ही मुक्ति पा सकता है। उसे पुरुषार्थ करना ही होगा। ये पुरुषार्थ चार हैं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष! इन चारों की सिद्धि पुरुषार्थी ही करता है। उत्तरदायित्वों को छोड़कर, संसार की ज्वालाओं से भागकर मनुष्य सन्यास ले भी ले तो वह संसार से छूट जाएगा? नहीं! क्यों कि जब तक जीवन है, रहना इसी संसार में है, चाहे नगर में लोगों के बीच में रहो चाहे वन के एकान्त में। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ और समस्याएँ तो बनी ही रहेंगी। छुटकारा तभी मिलेगा जब अन्तःकरण की पवित्रता होगी और यह पवित्रता कर्मों को सही प्रकार से करने पर घर रह कर भी मिल सकती है।

"तब!" – मुमुक्षु ने संशय पूर्वक कहा – "मेरी समझ में नहीं आता महात्माजी! आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? एक ओर तो शास्त्र संसार को सारे दुःखों की जड़ और ज्वालामय बतलाते हैं और दूसरी ओर यह ज्ञान?....."

"इसमें विपरीतता कहीं नहीं है मुमुक्षुजी! दुविधा

तुम्हारे समझने में है। परमात्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। मुक्ति के साधन अनेक हैं। पर लक्ष एक है अतः हम किसी एक को सही अथवा गलत नहीं ठहरा सकते।"

"अब मुझे संक्षेप में वे मार्ग स्पष्टतः समझाइए।"

"ठीक है मैं कुछ प्रमुख साधनों को बतलाता हूँ, सम्भवतः उससे तुम्हारा समाधान हो जाएगा। सुनो :-

"निष्काम कर्मयोग :- बिना किसी फल की आसक्ति के कर्म को करता हुआ मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण होकर अपने आप ही परमात्मा के परमपद की प्राप्ति कर लेता है। भगवान गीता में कहते हैं कि:-

"तू निरन्तर आसक्ति रहित होकर कर्त्तव्य कर्म को भली भाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता हैं। जनकादि भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा अन्तः-करण को शुद्धकर परम ज्ञान को प्राप्त हुए थे। - आगे इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया हैं कि इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कोई भी पदार्थ नहीं है। उस ज्ञान को कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप पा लेता है।

"यह भी सत्य है कि जो परमधाम ज्ञान योगियों को मिलता है वही कर्मयोग द्वारा भी प्राप्त होता है। कर्म-

योगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र पा जाता है।

"दूसरा मार्ग है भक्ति मिश्रित कर्मयोग अर्थात जो भी कर्म करे यदि उसमें भगवान की भक्ति का आधार हो तो वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। गीता में भगवान कहते हैं कि – "हे अर्जुन तू जो कर्म करता है, जो खाता है, हवन करता है, दान देता है वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान को अर्पण होते हैं ऐसें सन्यासयोग से युक्त चित्त वाला तू शुभाशुभ फल रूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जाएगा और उन से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा। – आगे चलकर वे कहते हैं :–

"जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है। "ऐसा मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मो को करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त होता है।"

"इसके अतिरिक्त केवल भगवद् भक्ति से ही अनायास ही मनुष्य को मुक्ति मिल जातो है। सत्य कहा जाय तो यह सर्वोत्तम साधन है। भगवान गीता में बारबार कहते हैं – "सम्पूर्ण योगियों में जो श्रद्धावान योगी

मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।" – निस्वार्थ भावना से भक्ति करने वाले व्यक्ति की संसार की माया मोहादि उलझनें स्वतः ही मिट जाती हैं। उन्हें सहज ही तत्वज्ञान प्राप्त होता है। भक्ति के द्वारा वे भगवान के स्वरूप को सहज ही जान लेते हैं अतः सारे योगों में श्रेष्ठ भक्तियोग ही है। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि अनेक भक्त अपनी निष्कपट और अनन्य भक्ति के पद"पर ही परमपदरूप परमात्मा को प्राप्त कर चुके हैं।

"एक अन्य मार्ग भी है जो बड़ा निराला और परम श्रेष्ठ है वह है आत्मज्ञान। केवल आत्मज्ञान से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। परमश्रेष्ठ तत्वज्ञानियों के उपदेशामृत का पान कर पाप रहित होकर जो मनुष्य तद्रूप मन और बुद्धि होकर सच्चिदानन्द परमात्मा में एकीभाव से अपनी स्थिति बनाता है वही तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा परमगति को प्राप्त करता है। जो पुरुष अन्तरात्मा में ही स्थित है, आत्मा में ही रमण करता है तथा जो आत्मा को ही पह-चानता है वही सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकत्व को प्राप्त ज्ञानयोगी है। सर्वव्यापी अनन्तचेतन में एकीभाव से स्थित, सब में सम भाव दृष्टि तथा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को जानने वाला जो व्यक्ति अपने

ज्ञान नेत्रों से आत्म-तत्व को जानता है, वह परब्रह्म को प्राप्त होता है।"

ये सभी साधन भिन्न - भिन्न प्रतीत होते हुए भी, इनका लक्ष्य एक ही है। वास्तव में हम इन्हें मुक्ति मार्ग के विभिन्न सोपानों के रूप में मान सकते हैं। अनेक संत महात्माओं का कथन है कि प्रथम कर्मयोग से अन्त:करण की शुद्धि होती है तथा शुद्ध अन्त:करण उपासना में समाहित होता है। तब फिर समाहित अन्त:करण में ज्ञान होता है। इसलिए मुमुक्षुजी आप विचित्र साधनाओं द्वारा परमपद की प्राप्ति की ओर अग्रसर होइए। आप ज्ञान प्राप्ति अपने घर में निश्चिन्तता के साथ बैठकर भी कर सकते हैं।

मुमुक्षुराम के समक्ष विवेक का प्रकाश दमक उठा। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक कहा - "मैं धन्य हुआ स्वामी जो। ज्ञान की कुन्जो ही मुक्ति का द्वार है। रहस्य समझ में आ जाने पर अब मैं सहर्ष अपने घर वापिस लौटता हूँ।

महात्मा जी मुस्करा दिए। वायु के मधुर झोंके के साथ फिर गोत की मधुर पंक्तियाँ वातावरण में गूँजने लगी :-

ओ मुसाफिर.........
चलना है दूर, काहे सोवै रे।

नदिया गहरी, नाव पुरानी,
कहि विधि पार तू होवै रे।
कहे कबीर सुनो भई साधो,
ब्याज धोखे मूल, मत खोवै रे ॥
ओ मुसाफिर............

दूसरे दिन मुमुक्षुराम महात्मा निधिध्यासनजी और सच्चिदानन्दजी के साथ, नौका में गंगा पार उतर रहे थे।